बुन्देली बसंत



2007

पंजी. क्र. MPHIN-17761/12/1/2002-TC

बुन्देली साहित्य, संस्कृति तथा इतिहास को समर्पित -

बुन्देली बसन्त

अंक ८, वर्ष ८, १७ फरवरी २००७

❄

संरक्षक :

शंकरप्रताप सिंह बुन्देला 'मुन्नाराजा'

राजमहल परिसर, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : (०७६८२) २४१२६०, २४१४२६

❄

संपादक :

डॉ. बहादुर सिंह परमार

एम.आई.जी.-७, न्यू हाउसिंग बोर्ड कॉलोनी,

पन्ना रोड, छतरपुर (म.प्र.) ४७१००१

☎ : ६४२५४७४६६२

❄

सह संपादक

डॉ. के.एल. पटेल

३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : ६४२५८७६७७३

डॉ. हरिसिंह घोष

घोषियाना, संकटमोचन मार्ग, छतरपुर (म.प्र.)

☎ : ६४२५१४२०६६

प्रकाशक :

बुन्देली विकास संस्थान

बसारी, जिला छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८६) २८१२२२

- संपादन एवं प्रबंध पूर्णतया अवैतनिक एवं अव्यावसायिक

- **आवरण चित्र :**
  राम कुमार सोनी,
  ग्वालमगरा, छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२) २४३८३६

- **सहयोग राशि :**
  १००/- (एक सौ रुपये)

- **संगणकीय अक्षर संयाजन :**
  जीतेन्द्र बस्वापट्टनकर, छतरपुर
  ☎ : ०६३०१५६०८१८

- **मुद्रक :**
  जिला सहकारी संघ मुद्रणालय मर्या०,
  छतरपुर (म.प्र.) ☎ : (०७६८२) २४८६८६

- बुन्देली बसन्त में प्रकाशित लेखकों के विचार उनके अपने हैं। उनसे संपादकीय सहमति अनिवार्य नहीं है।

- विवादास्पद मामले केवल छतरपुर न्यायालय के अधीन होंगे।

अनुक्रम

भाषा, साहित्य एवं आलोचना –

- करण भट्ट और उनका रस कल्लोल – *डॉ. गंगाप्रसाद बरसैया* १३
- बुन्देली लोक गीतों में श्रीराम जन्म – *डॉ. हरिमोहन पुरवार* २५
- 'कलश' काव्य–कीर्ति – एक अनुशीलन – *डॉ. रामनारायण शर्मा* २९
- बुंदेली के समर्पित साहित्यकार डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव – *मणि मुकुल* ३१
- विवाह गीत – *संकलन पं. राजकुमार पुजारी* ३६
- वीरांगना अवन्तीबाई : साहित्य के झरोखे से – *डॉ. डी.पी. खरे 'प्रसाद'* ४८
- सीताराम की कहानियां नीकी लगती – *डॉ. (श्रीमती) गायत्री वाजपेयी* ६१
- टीकमगढ़ नगर के विस्मृत संस्कृत रचनाकार – *पं. कपिल देव तैलंग* ६९
- बुन्देली में समास – *डॉ. वरदानी प्रजापति* ७१
- विस्मृत साहित्य शिरोमणि : मुंशी अजमेरी – *पुष्पेन्द्र सिंह पवार* ७५
- लोक सौन्दर्य के गायक मित्र जी – *भगवत रावत* ७७
- बुंदेलखंड के संत कवि अक्षर अनन्य – *डॉ. श्रीमती वंदना जैन* ७९
- बुंदेली कलम के सिपाही – मुहम्मद बजीर – *डॉ. शंकर लाल शुक्ल* ८०
- बुंदेली ख्यालों में अनुभूति सौन्दर्य – *डॉ. श्रीनारायण पाठक* ८५
- ऋषिका लोपामुद्रा – *आचार्य दुर्गाचरण शुक्ला* ९१
- फागकार भुजबल सिंह परिहार – *डॉ. कुन्जीलाल पटेल 'मनोहर'* ९६
- बुंदेली के पर्यायवाची शब्द (२) – *सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'* ९८
- नवल सिंह प्रधान कृत 'उरदू रामायन' – *डॉ. के.बी.एल. पाण्डेय* १०१
- लोक कवि 'ईसुरी' को कुछ सिरफिरों ने लम्पट की संज्ञा दे डाली – *डॉ. एन.आर. चौरसिया* १०७

बुन्देली परम्परा और संस्कृति –

- बुंदेलखण्ड के लोकदर्शन की विशिष्टताएँ – *डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी* ९
- बुन्देलखण्ड के विभिन्न संदर्भो में हाथी – *डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला* १८
- परम्परायें क्यों? – *डॉ. डी.आर. वर्मा* ४२
- प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर पलेरा –*चिन्तामणि वर्मा* ५१
- बदलता लोक – बदलती मानसिकता – *पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'* ७३
- नौगांव की प्रसिद्ध रामलीला के सौ वर्षो का इतिहास – *विनीत खरे* ९३
- रक्षाबंधन : कहानी, प्रथा या यज्ञ – *विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास* ११०

इतिहास एवं पुरातत्त्व –

- चरण पादुका काण्ड के विस्मृत शहीद – *हरिविष्णु अवस्थी* १
- काशी नरेश चेत सिंह को मिला था बुन्देलखण्ड में आश्रय – *उदय शंकर दुबे* ४
- चन्दैरी का पुरावैभव – *डॉ. के.पी. त्रिपाठी* ११
- हिन्दवाने की भवानी – *डॉ. श्याम बिहारी श्रीवास्तव, पीएच.डी.* २२
- वीरांगना झलकारी बाई – *डॉ. (श्रीमती) अंजना अग्रवाल* २४
- भूरागढ़ दुर्ग से जुड़ी हुई ऐतिहासिक स्मृतियाँ – *राधाकृष्ण बुंदेली* ३७
- ओरछा के इतिहास लेखक : दाऊ लक्ष्मण सिंह गौर – *सुधा रावत 'क्षमा'* ३९
- खजुराहो की शाक्त प्रतिमाओं में पार्वती – *प्रो. चित्रलेखा अवस्थी* ४६
- हरदौल चरित – पं. श्री घनश्याम पाण्डेय बिजावर द्वारा विरचित – सौजन्य से : मनमोहन पाण्डेय ५२
- बुंदेलखंड के प्रमुख महल और उनका स्थापत्य – *डॉ. रामप्रकाश गुप्त 'साकेत'* ५६
- परमार रायछौ की प्राचीन पोथी – *डॉ. मोहन लाल गुप्त 'चातक'* ८९
- बुंदेलखंड का प्रथम समाचार पत्र : दैनिक प्रकाश – *डॉ. संतोष भदौरिया* ११२
- बुंदेलखंड की बावड़ियाँ और चौपड़े – *जगदीश प्रसाद रावत* ११४

बुन्देली काव्य –

- काँ लौ कयें – *हरगोविन्द तिवारी* ३
- बुंदेली कविता – *शिव कुमार गुप्त 'सागर'* ८
- उन गाँवन की गलियाँ – *चौ. शीलचन्द्र जैन 'शील'* १०
- कहौ कहां गई? – *बटुक चतुर्वेदी* १७
- भानेजन कौ भात – *रतिभानु तिवारी 'कंज'* २१
- चौकड़ियाँ – *ललित परमार* ३५
- बुन्देली गारी – ...धोका दै गव नेता – *डॉ. विनोद कुमार खरे* ४३
- मोरे मन की हो गई – *साकेत 'सुमन' चतुर्वेदी* ४५
- बड़वाई पाँवनन की – *सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'* ४७
- गीत – *गोविन्द सिंह यदुवंशी* ५५
- चौकड़ियाँ – *भारतेन्दु अरजरिया 'इन्दु'* ५९
- कुटैला कौ कटारा – *भानुप्रताप शुक्ला* ६०
- होरी–होरी कहौ लाला – *वीरेन्द्र सिंह परमार 'वीर'* ६५
- आउत है सुद उन गाँवन की – *डॉ. शंकर लाल शुक्ल* ७०
- बुन्देली गीत – *गोपाल दास रूसिया* ७२
- ऐसी बिदन बिदी मोरे जी खों – *डॉ. लखन लाल खरे* ७४
- गोरा गुलटैं खा गए – *डॉ. कमलेश* ७६
- रजवाड़न कीं बातें – *शंकर दयाल खरे 'शंकर'* ७८
- डिबिया तरें – *मायूस सागरी* ८१
- बुंदेली चौकड़ियाँ – *डॉ. एन.डी. सोनी 'विवेक'* ८४
- मुस्काउत है सूरज – *डॉ. सुश्री शरद सिंह* ९०
- "अब हमें पढ़ाउने भइया" – *डॉ. जवाहर लाल द्विवेदी* ९७
- चौकड़ियाँ – *एल.एम. चौरसिया* ९९
- स्व. पं. गुलाबराय जी रचित – कुछ बुन्देली–फाग गीत प्रस्तुति – *श्रीमती मणिकंचन शमा* १००
- बुंदेली रसोई – *लक्ष्मी प्रसाद गुप्त 'किंकर'* १००
- बुंदेली गीत – *डॉ. अवध किशोर जड़िया, ललपुर, छतरपुर* १००
- एकता – *नवल किशोर सोनी 'मायूस'* १०६
- करिओ न बटवारौ – *डॉ. शिवाजी चौहान 'शिवा'* १०६
- छोटई सो परिवार बसाने – *चन्द्रिका प्रसाद सक्सेना 'कीर्ति'* १०७
- संस्कार गीत – *कुन्ती व्यास* १०८
- दो कविताएँ – *रतनलाल नामदेव 'रत्नेश'* १०९
- चौकड़ियाँ – *गुप्तेश्वर द्वारिका 'गुप्त'* १११

बुन्देली गद्य –

- बुंदेलखंड की लोक कलायें और उनका व्यावसायिक स्वरूप – *डॉ. दुर्गेश दीक्षित* २७
- चतुर दमाद (लोक कथा) – *संकलन : सरोजा 'शिल्पी'* ४४
- कुछ भूली–बिसरी बुँदेली पहेलियाँ – *संकलन : पंकज तिवारी* ५८
- पहेली संसार – *संकलनकर्ता : अम्बिकेश पटेल एवं ऋषिकेश पटेल* ६६
- तपोभूमि बुंदेलखंड – *अशोक चतुर्वेदी* ८२
- बुंदेली लघुकथा – आय तौ हमाव बाप – *निहाल* १११

अन्य –

- सैर गायक भगवान दास कुशवाहा : एक साक्षात्कार – *डॉ. हरिसिंह घोष* ९५
- उनसें भओ जौ बतकाव : पाती–ऐना (दर्पण) की छांव – *वीरेन्द्र शर्मा "कौशिक"* १०३
- पुस्तक समीक्षा–गुरीले बुंदेली संगीत रूपक–"बरखा बसंत"– *समीक्षक : डॉ. श्रीमती विनोद तिवारी* ११६
- बुंदेली उत्सव २००६ का प्रतिवेदन – *योगेन्द्र प्रताप सिंह 'गुड्डु राजा'* ११७
- बुन्देली उत्सव २००७ हेतु समितियाँ ११९
- स्वरलिपियाँ – *डॉ. महेश चन्द्र शांडिल्य, पं. जयराम त्रिवेदी* १२१

संपादकीय —

भौगोलिक रूप से पथरीलौ बुंदेलखंड अन्याय के विरुद्ध सदा से संघर्ष करता रहा है। यहाँ का आम आदमी ठसकीलौ होने के साथ अपनी अस्मिता के लिए मर मिटने वाला है। वह अपना सब कुछ खोकर भी जातीय अस्मिता के लिए विपरीत परिस्थितियों में संघर्षरत रहा है यहां शोषण, सत्ता तथा भेदभाव के प्रति लड़ने की प्रवृत्ति काफी पुरानी है। इतिहास पर जब नजर दौड़ाते हैं तो पाते हैं कि महाभारत काल में चंदेरी के राजा शिशुपाल ने कृष्ण की आधीनता नहीं स्वीकारी थी। बाद में देखें तो कालिंजर तत्कालीन शासकों के लिए अजेय रहा। बुंदेलाओं का प्रादुर्भाव भी अन्याय के खिलाफ लड़ते हुए हुआ। बुंदेला शासकों में जब मुगल सत्ता के प्रति आसक्ति पनपी तो छत्रसाल का आगमन होता है। छत्रसाल के साथ सभी जातियों, धर्मों, वर्णों तथा वर्गों के लोगों ने लड़कर बुंदेलखंड की आन बचाने का प्रयत्न किया। छत्रसाल ने आजीवन युद्ध लड़े और उन्हें जीता। बुंदेलखंड को एक सांस्कृतिक इकाई के रूप में विस्तार दिया। मुगलों के अन्त के साथ देश में अंग्रेजों का सत्ता में आगमन होता है। अंग्रेजों ने बुंदेलखंड में सबसे अधिक विरोध झेला। १८०० में शाहगढ़ के गोपाल सिंह ने अंग्रेजों के विरुद्ध बिगुल बजाया और १८१२ में गर्रोली राज्य की स्थापना की। यहाँ १८०८ से १२ तक विद्रोह हुआ फिर यहाँ के राजाओं को संधियों तथा सनदों के जाल में उलझाया गया किन्तु १८२४ से २६ तक पुनः संघर्ष होता है। सोलह वर्ष तक छुटपुट संघर्ष के बाद बुंदेलखंड में १८४२ में व्यापक विद्रोह अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ होता था। इसमें प्रमुख रूप से मधुकर शाह, नारहाट, गणेश जू नारहाट, जवाहर सिंह चन्द्रपुर, दीवान पारीक्षत सिंह गिरार, दीवान बहादुर सिंह अभाना, गणेश जू गूढ़ा, दरयाव सिंह व पंचम सिंह गूढ़ा, धुरमंगद चन्देरी, हिरदेशाह हीरापुर, डेलनशाह मदनपुर, भूपसिंह घोघरी, रंजोर सिंह सुआतला, शिवराज सिंह देवरी, बृज भूषण पाठक के नाम उल्लेखनीय है। १८४१ में जैतपुर नरेश पारीछत को बुंदेलखंड के स्वाधीनता प्रेमी राजाओं ने अपना मुखिया चुना इसके बाद पारीछत ने वर्मा नदी के किनारे बिलगाँव में अंग्रेजों को पराजित किया बाद में अंग्रेजों ने छल से जैतपुर के गोलंदाज को अपनी ओर मिलाकर राजा पारीछत को हराया। यह वह समय है जब देश के अधिकांश राजाओं ने अंग्रेजों की गुलामी को स्वीकार लिया है लेकिन बुंदेलखंड के अधिकांश लोग इसे नकारते हैं। इतिहासकार १८५७ के मुक्ति संग्राम को पहला स्वतंत्रता संग्राम मानते हैं जबकि उसके पहले बुंदेलखंड में पन्द्रव वर्ष पहले अंग्रेजों से मुक्ति संग्राम लड़ा जा चुका था। इसे स्वीकारा जाना चाहिए।

१८५७ के स्वतंत्रता संग्राम की शुरूआत की बुंदेलखंड से ही होती है। इतिहासकार मेरठ के मंगल पांडे को पहला क्रांतिकारी कहते हैं जबकि उसके एक दिन पहले नौगांव की अंग्रेज छावनी में बगावत होने के प्रमाण मिलते हैं। इस छावनी की १२वीं बंगाल देसी फौज ने बगावत करके अंग्रेजों के खिलाफ लड़ रहे दिवान देसपत बुंदेला के हाथ मिला लिया था। इसके बाद दिमान, देसपत लगातार अंग्रेजों के खिलाफ लड़ते रहे उन्हें षड़यन्त्रपूर्वक मारा गया। १८५७ का रण तो बुंदेलखंड में ही लड़ा जाता है, झांसी, शाहगढ़, सागर, बांदा, रहली, गढ़ाकोटा, वानपुर

तथा रामगढ़ जैसे क्रांतिपुंज थे। शाहगढ़ के बखतबली, वानपुर के राजा मर्दन सिंह, पाटन के गुलाब सिंह दांगी, बांदा का नवाब अली बहादुर, झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई, रामगढ़ की अवन्तीबाई, अजयगढ़ के फरजन्दअली, दबोह के दौलत सिंह कुशवाह, हिंडोरिया के किशोर सिंह तथा भाण्डेर के उमराव सिंह सूबेदार ने अंग्रेजों के खिलाफ एक साथ बिगुल बजाकर कम्पनी शासक की ईंट से ईंट बजा दी, किन्तु अंग्रेजों ने कुछ देशी राज्यों के दोगलेपन से इस विद्रोह को कुचला किन्तु जनता में अपने शासन की भावना तो जागृत हो ही गई थी। बुंदेलखंड में इसके बाद लगातार रह–रहकर अंग्रेजों के खिलाफ आवाजें उठातीं रही। देश को कांग्रेस का नेतृत्व मिलता है। बुंदेलखंड में चंद्रशेखर आजाद, परमानन्द जी जैसे क्रांतिकारी अपनी गतिविधियों को संचालित करते हैं। गांधी जी के राष्ट्रीय परिदृश्य पर आने से उनका प्रभाव आम जनता में दिखाई देता है। जनता अंग्रेजों के खिलाफ लड़ती है। बुंदेलखंड की जनता को दोहरी गुलामी से लड़ना पड़ता है पहली देसी राजाओं की गुलामी, दूसरी अंग्रेजों की। फिर भी संघर्ष जारी रहता हैं करों के बोझ से दबी, शासन के आतंक से परेशान जनता विद्रोहणी बन जाती है और यहां आजादी की लड़ाई छिड़ जाती है, इसी लड़ाई में चरणपादुका स्थल में अंग्रेज सभा पर गोली चलवाते हैं, जिससे भगदड़ मचती है और छह लोग शहीद होते हैं। इस तरह हम पाते हैं बुंदेलखंड में मुक्ति की कामना के लिए लम्बा संघर्ष चला और पन्द्रह अगस्त १९४७ को हम आजाद हुए। आज भी समाज में अन्याय, अनाचार तथा शोषण व्याप्त हैं हम सबको आर्थिक, सामाजिक शोषण के खिलाफ आन्दोलन चलाने की आवश्यकता है। शोषण के प्रतिकार हेतु शिक्षित होना जरूरी है जिसके सामूहिक प्रयास किये जा रहे हैं, इसमें हम सब जागरूक लोग हाथ बंटायें।

आज २००७ में हम १८५७ की क्रांति की १५०वीं वर्षगांठ मना रहे हैं इस समय हमें आवश्यकता है कि 'आजादी की लड़ाई में बुंदेलखंड की भूमिका' का पुनरावलोकन हो, इतिहास की उन बातों को हम सामने लायें, जो अभी नहीं आई हैं। इसके साथ–साथ बुंदेलखंड की भूमिका को स्थापित करने हेतु लक्ष्यबद्ध काम करें। हमें आज खोजने की आवश्यकता है उन महापुरुषों के जीवन चरित्रों को जो हमें प्रेरणा दे सकें। साहित्य के क्षेत्र में भी उस लोक साहित्य को सहे जाने और विश्लेषित करने की आवश्यकता है जिसमें लोकमन सही मायनों में प्रतिबिम्बित हुआ है। युग का यथार्थ रचनाओं में झलकता है, हमें उसे परीक्षित करके नए तथ्य खोजना चाहिए जिससे नई पीढ़ी को परिचित करा सके।। इस अवसर पर हमारा विनम्र अनुरोध उन सभी सुधीजनों से है जो इस देश और जनता की बेहतरी के लिए काम कर रहे हैं कि बिखरी पड़ी पांडुलिपियों तथा पुरातत्व की सामग्री को भी सहेजने का काम करें जिससे हम अतीत से सबक ले भविष्य की राह तय कर सकें।

'बुंदेली बसन्त' के इस अंक में हमने बुंदेलखंड अंचल के इतिहास, पुरातत्व के साथ यहाँ की लोक चेतना को सँजोने का प्रयत्न किया है। इसमें कहां तक सफल रहे हैं? इसका फैसला तो आपको ही करना है। आप अपने अभिमत से अवश्य अवगत करायें।

☐

बहादुरसिंह परमार

चिट्ठी मिली अपुन की



शिवराज सिंह चौहान
मुख्यमंत्री

मध्यप्रदेश शासन
भोपाल–४६२००४
२४ जनवरी, २००७

संदेश

मुझे जानकर प्रसन्नता हुयी कि बुंदेलखंड विकाससंस्थान छतरपुर द्वारा ''बुंदेली उत्सव'' का आयोजन और पत्रिका बुंदेली बसन्त का प्रकाशन किया जा रहा है।

लोक संस्कारों, पर्वों और परम्पराओं से समृद्ध बुंदेलखंड मध्यप्रदेश का गौरव है। इस अंचल की ऐतिहासिक, पुरातात्विक और साहित्यिक विरासतों को संरक्षित करने और लोगों के सामने लाने के लिए ग्राम बसारी में विगत दस वर्षों से आयोजित इस समारोह की जनमानस में गहरी पैठ है और लोग बड़े उत्साह के साथ इस आयोजन में सहभागी होते हैं।

संस्थान द्वारा प्रकाशित पत्रिका ''बुंदेली बसन्त'' में बुंदेली साहित्य और शोधपत्रों के प्रकाशन से बुंदेलखंड की समृद्ध परम्पराएं और महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्रकाश में आयेंगी।

आयोजन की सफलता के लिए शुभकामनाओं सहित।

– शिवराज सिंह चौहान

नूतनविहार कॉलोनी, टीकमगढ़ (म.प्र.)

बुंदेली उत्सव के अवसर पर प्रकाशित बुंदेली बसन्त २००६ को पढ़कर प्रसन्नता हुयी कि इसमें बुंदेलखण्ड के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक पक्ष को उजागर करने का काम किया गया है। इसका कलेवर आकर्षक है, यह संग्रहणीय है। समिति के पदाधिकारियों की लगन और निष्ठा से कार्यक्रम दिन दूना नयी उचाइयों पर पहुँच रहा है जो जीवन्तता का परिचायक है।

– सुरेन्द्र नाथ श्रीवास्तव, से.नि. ग्रंथपाल,

निराला नगर, भोपाल

बुंदेली बसन्त २००६ अंक को पढ़कर लगा कि साहित्य की जड़ें लोक अंचलों में ही अवस्थित हैं। जिनसे जीवन रस प्राप्त करके साहित्य नयी ऊचाइयों को प्राप्त कर रहा है। यह अंक लोकानुभवों और बुंदेलखंड का सच्चा प्रतिबिम्ब है।

– डॉ. विजय बहादुर सिंह, भोपाल

गढ़ीमलहरा, छतरपुर

जो नाम बसारी है, बसारी ही रहेगा।
बदलाव आया देश में, वह यहाँ भी आएगा।
जो ग्राम है कहा जाता, अब नगर कहाएगा।
जो ग्राम बसारी है, नगर बसारी कहाएगा।
गैलारा, गाड़ीवाला, बसवाला, डरता था नाम से।
रुक कर वही अब यहाँ पर, बसेरा बनाएगा।
जब एक नहीं दो नहीं, कई मेले लगेंगे।
जिनमें हि मन बहलानें, हर कोई आएगा।
कभी खेल के, कुश्ती के, कभी चित्रकला के।
संगीत और साहित्य, मन को लुभाएगा।
चौसठ कलाएँ देश की जो भूली पड़ी हैं।
उनको नगर बसारी, सब को सिखाएगा।।
थीं देश की कलाएँ, राजाओं पर आश्रित।
राजा जो बसारी का, अब उनको संजाएगा।।
बुंदेली बोली रीतिनीति अपनाई जाएगी।
बुंदेलखंडी गौरव 'काशी' लखाएगा।।

– काशी प्रसाद महतों, स्वतंत्रता सेनानी,

डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर

बुंदेली बसन्त का नया अंक प्राप्त हुआ। इसके लेखों को पढ़कर मैं अभीभूत हूँ। इसमें जहां एक ओर बुंदेली लोककाव्य की समकालीन रचना धर्मिता को स्थान दिया गया है, वहीं पारम्परिक लोककथाओं का संकलन महत्वपूर्ण है। बुंदेली में साक्षात्कार जैसी विधा को छापकर आपने इसे समृद्ध किया है। बुंदेलखंड के इतिहास एवं पुरातत्व के अनेक छिपे हुए पहलुओं पर प्रकाशित शोधालेख महत्वपूर्ण हैं जो स्वतंत्रता संग्राम में बुंदेलखंड के योगदान को रेखांकित करते हैं।

– डॉ. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी,
रीडर, हिन्दी विभाग

सुरेश लॉज के पास, पन्ना

बुंदेली बसन्त को पढ़कर लगा कि बुंदेली की रचनाधर्मिता लगातार नयी गति प्राप्त कर रही है। इस अंचल में लेखक लगातार आम आदमी के दुखदर्दों को अपनी कलम से रचकर समाज को नयी दिशा दे रहा है। इसका प्रकाशन करके बुंदेली विकास संस्थान महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इसके लिए सभी पदाधिकारियों को हार्दिक बधाई।

– डॉ. अश्विनी कुमार दुबे, साहित्यकार

कंचनपुरा, निवाड़ी, टीकमगढ़

लोक–संस्कृति की, आदित्य सी उई अपूर्व,
वही प्रभाकीर्तधार, अम्बर अनन्त है।।
कला परम्परा की प्रमान, पहिचान चारु,
चंद्रिका सी छिटकी अपूर्व दिग दिगन्त है।।
आन, वान, शान सहित या में 'बुँदेली' कौ –
गौरव गुनगान भूरि भूरि कें भनन्त है।।
'उत्सव बसारी की' पत्रिका दुलारी या!
लोक–हृदयहारी 'बुंदेली–बसन्त' है।।

– भानुप्रताप शुक्ला

ललन जू का पुरवा (खोंप), निवारी, छतरपुर म.प्र.

अपुन के द्वारा संपादित पत्रिका बुंदेली बसंत पढ़वे कौ औसर मिलो, मन कौ मयूर जैसें जेठई में उल्लास से भर गओ, एक से एक उमदा और नौने लेख, कवितायें, और जानकारी पढ़ के बुंदेली की गरिमा और वैभव सें परिचित भओ, भरे जेठ की उमस में तन मन गंगाजू की फुहारन में डूबौ डूबौ सौ लगन लगो, काने परहै कि इतनौ सार्थक प्रयास अपुन जैसे प्रज्ञावान महान् व्यक्तित्व के नामी गिरामी प्रबुद्ध जनई कर सकत, सो अपुन हां हम अनेकन साधुवाद दैत।। जौ जान कें औरई खुशी भई के बुंदेली साहित्य के सिरजनकर्ता कितनी लगन से अपने पुन्य कार्य में लगे और दिन रात बुंदेली भाषा के विकास के लानें नये नये प्रयोग कर रये।

आदरणीय दाऊ जू, उनकी सरसुती कौ लोहा सोई हम मानैत जौन जे जानें कां–कां सें इतने रोचक और मनोरंजक तथ्य ढूढ़ ढूंढ़ कै मिलाये और बुंदेली बसंत कौ श्रृंगार नई नवेली सौ कर दओ, इन सब सरसुती के बेटन हां हम सोई प्रणाम और जुहार भेजैत, हओ सांचऊ, सरसुती की विटियन नें सोई ई पत्रिका में अपनौ भरौ पूरौ सहजोग दओ सो उनें भी हम नतमस्तक होइत और आशा करैत के बुंदेली साहित्य हां जीवंत और प्रगति पथ पै अग्रसर करवे के लानैं जे यशस्वी जन हर पल हर घरी जागरूक बने रैहे।

दाऊ जू, कानै परहै के डॉ. कुंजीलाल पटेल 'मनोहर जू' कौ आलेख 'बुंदेली फागों में लोक विश्वास' एक सशक्त बुंदेली चित्रण है, पटेल जू अपने लेख के लानैं जाने कां से इतनी अच्छी फागें ढूढ़ लियाये ऐसे महनीय श्रम के लानें वे धन्यवाद के अधिकारी हैं।

दाऊ जू, आज सें पच्चीस साल पैंला की याद मन में ताजी हो गई जब जाड़े की संजा में कौड़े पै पैठ कें डॉ. दुर्गेश दीक्षित जू की बुंदेली कहानी सुने करते ते रेडियो छतरपुर की ग्राम सभा में, तब दाऊ जी खुश होत ते, जिज्जी खुश होततीं और हम सब लरका बच्चा, आज अपुन की 'बुंदेली बसंत' में डॉ. दीक्षित जू की कहानी 'मन कौ मैल' मन के अंदर तक अपनौ असर छोड़त गई, पै बाऊजी की कमी अखरी और जिज्जी की सोई। एक समाचार में पढ़ो तो के दीक्षित जू हां एक बड़े सम्मान सें नवाजो गओ और उनकौ साहित्य कऊँ लरकन की किताबन में पाठ्यक्रम के रूप में शामिल करो गओ, जा बात भौतऊ साजी जान पड़ी, भगवान करें उनकौ जस दुनियां के कौने कौने में फैल जाय। झाई–सी सै झांसी कैसे बनी पतौ चलो डॉ. श्रीमती अंजना अग्रवाल कौ नौनों सौ वृतान्त पढ़कें उतई "माथे की शोभा मुदन्ना दिवारी" पं. राजकुमार पुजारी नें सुंदर कविता लिखी, साकेत सुमन चतुर्वेदी की "कितै हिरा गये।" सोई कम नईं आंकी जा सकत, काये सें के ई में वियोग की पीड़ा कौ बतकाव हतो, जो हिरदय के अन्तर सें उमगो लगो, डॉ. शिवाजी चौहान जाने पहचाने लगे, इनै तो बुंदेली कौ अमर गायक कओ जा सकत अपने ख्यालन के माध्यम से इननें बड़े लोक कल्याणकारी संदेश जनता के बीच प्रस्तुत करे और बुंदेली हां उन्नत करवे में कौनऊ कसर न छोड़ी, इनकी चंग की गूंज मेला जल बिहारन में मऊ, हरपालपुर, गुरसरांय, गरौठा, झांसी और को जानै समूचे बुंदेलखंड में इनकी मधुर ख्याल गायकी के संगै खनकत रई। एक जमाने में इनकौ समाज सुधार वालौ खयाल रेडियो पै खूब चलो तो के "दोंदरा दै रओ दुष्ट दहेज करौ भईया जा कौ वंदेज" के फिर "हंसी खुशी सें साब सासरे खूब मजे सें रइयो, नैन पुतरिया सौन चिरईया कुल न दाग लगइयो।"

गांव करारा गंज में कक्षा ६,७,८ में हमाये प्रधानाध्यापक रये श्री महेशचंद्र अग्रवाल जू नें अपनी कविता में का खूब तौ लिख दओ "बच जाते रजऊ तनिक गम्म खाउते.... ऊधव गोपी संवाद जगदीश चंद्र सिंघल जू की उमदा प्रस्तुति कई जा सकत, जे एक प्रवीण शास्त्रीय गायक सोई कहाउत, हरपालपुर के आसपास पक्के राग–रागिनीं कौ गवैया जां तक है इन जैसौ न हुइयै। व्यंग कवि चतुरेश जी के सार्थक संस्मरण तथा परिचय आदरणीय व्यास जू ने प्रस्तुत करे, बड़े सुखद और आनन्ददायी लगे।

आतंकवाद जैसे सबइ खां खटकत सो 'मायूस' जी हां भी खटको, कोऊ ने जा बात सांची कई के कवि समाज के अस्वीकृत व्यवस्थापक होत करत मायूस की समाज की चिन्ता न करत होते तौ "बंद करौ आतंकवाद" जैसी कविता कैसें लिख पाउते, एक बेर हम भैया नारायन सिंह के संगै इनके घरै अपनी किताब के लानें आशीर्वचन लिखवाबे गये ते, तबई इनसें मिलबौ हो पाओ तो, बड़े मिलनसार और साजे स्वभाव के आदमी लगे, इनकी सहृदयता और स्नेह देख के हिन्दी के एक बड़े कवि कौ उद्गार याद आओ तो के "कवि की कविता सें अच्छी मानव की मानवता कहाउत, जा कऊं मिलै तौ संभाल कें रखी जाय।"

कर्मशील और महान लोगन के प्रति सब कोऊ पलक पांवड़े बिछाउत, इतै जात, धर्म, सम्प्रदाय कछू नई छू जात, श्री नरेन्द्र कुमार जैन जू ने, दीवान बहादुर गोपाल सिंह गरोली कौ कितनौ रोचक चित्रण अपनी लेखनी सें करो के पोर पोर में रोमांच भर गओ, इतनी ऐतिहासिक जानकारी के लाने हम उनें बहुत सम्मान भेजैत, बल्देवगढ़ चंदेलों और बुंदेलों कौ ऐतहासिक गढ़ रओ ई की सटीक जानकारी डॉ. के.पी. त्रिपाठी जू ने बड़े अद्भुत ढंग से दई उनके ज्ञान की हम दाद दैत।

अंत में जौ लिखैत के माननें परै के बुंदेली की बंदना में कोऊ जनन नें कऊ कसर न छोड़ी और अपुन नें कितनी निपुणता सें एक एक मोती, कई जाय के नगै नग पैरा कें, पो कै, कैसौ नौनों हार, जो कि बुंदेली बसंत के रूप में अपनी चमक दमक विखेर रओ, तैयार कर दओ

– ललित सिंह परमार

जलियाँवाला काण्ड के बुन्देलखण्डी संस्करण की ७५वीं वर्षी पर विशेष –

चरण पादुका काण्ड के विस्मृत शहीद

– **हरिविष्णु अवस्थी**

महात्मा गांधी द्वारा ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आहूत असहयोग आन्दोलन सन् १९३० ई. में अपने चरम पर था। तत्कालीन 'संयुक्त प्रान्त आगरा व अवध' (वर्तमान उत्तर प्रदेश) की सीमाओं से आबद्ध बुंदेलखण्ड नामक भू–भाग में अनेक छोटी–बड़ी देशी रियासतें विद्यमान थी, जिनके निरंकुश शासकों के शोषण उत्पीड़न से जनता त्राहि–त्राहि कर रही थी।

गाँधी जी द्वारा संचालित आन्दोलनों की बयार धीरे–धीरे इन देशी रियासतों में भी प्रवेश करने लगी थी। संयुक्त प्रान्त के हमीरपुर, जालौन एवं झांसी जिलों की सीमाएँ बुन्देलखण्ड के छतरपुर राज्य की सीमाओं से मिली हुई थी। इस राज्य की प्रजा भूमि कर (लगान) के अतिरिक्त चरु, हरोका, मड़वा, कारत, मड़वाशादी, महुटा, गुलयावन, स्थाई झिरी, चमड़याकर, नजराना, राड चुकौता, पिता के मरने पर चौथ आदि अनेक प्रकार के करों के बोझ से दबी हुई थी। कर वसूली निर्दयतापूर्वक जनता से की जाती थी, किन्तु अधिकारियों के अमानुषिक अत्याचारों के कारण किसी में भी विरोध करने का साहस नहीं था।

छतरपुर राज्य की सीमा से लगे हमीरपुर जिले के टहनगा निवासी अपने क्षेत्र में आजादी की अलख जगा रहे हैं। छतरपुर राज्य की शोषित, उत्पीड़ित जनता की आवाज उनके कानों तक गुप–चुप रूप से पहुंच रही थी। अस्तु उन्होंने अपना क्षेत्र छोड़ कर छतरपुर राज्य में जन जागरण कर उन्हें राजाशाही के अत्याचारों से मुक्ति दिलाने का संकल्प किया और अगस्त १९३० ई. से राजाशाही के विरुद्ध जनमानस बनाने के कार्य में जुट गये। धीरे–धीरे लोग उनसे जुड़ने लगे और इस प्रकार राज्य में कर–विरोधी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ।

राज्य के मजरा, सिजवाहा, उरबारा, ननौरा आदि गाँवों में कर–विरोधी जन आन्दोलन चलाने के फलस्वरूप रामसहाय तिवारी को गिरफ्तार कर लिया गया। रगोली के ठाकुर हीरासिंह एवं भुजबल सिंह ने तिवारी की गिरफ्तारी अवधि में कर विरोधी आन्दोलन की कमान संभाली। शीघ्र ही इस आन्दोलन ने राजनगर, चंदला, लुगासी (स्टेट) तक अपने पैर पसार लिये।

पंडित सुखदेव एवं कु. जगतसिंह डहर्रा के नेतृत्व में राजनगर में आन्दोलन कर रही जनता पर लाठी चार्ज हुआ। जिसमें अनेक पुरुषों के अतिरिक्त एक महिला भी घायल हुई। महाराजपुर में आयोजित एक सभा में मजिस्ट्रेट के आने से जनता भड़क उठी और उनकी कार पर पत्थर बरसाने लगी। किसी प्रकार वह बच कर भाग निकले। इस घटना में शामिल लोगों के विरुद्ध मुकदमा चलाकर उन्हें दण्डित किया गया। राजनगर के निकट खजुआ ग्राम में लगान बंदी के विरुद्ध गोली चालन की घटना घटित हुई।

अक्टूबर माह के अंतिम दिनों में बेनीगंज बांध के पास कु. हीरासिंह की अध्यक्षता में एक सभा हुई। जिसमें अस्सी हजार लोग उपस्थित थे। मुख्य वक्ता के रूप में श्री रामसहाय तिवारी ने राजशाही द्वारा दमन के अनेक अमानुषिक अत्याचारों की घटनाओं का उल्लेख करते हुये कहा कि मेरी भी 'हन प्यारी' एवं 'दिल बिगार' जूतों से पिटाई की गई। आन्दोलनकारियों में इन दमन एवं क्रूरतापूर्ण घटनाओं को सुनकर उत्तेजना बढ़ गई और 'कर विरोधी' आन्दोलन के स्वर और प्रबल होते गए।

जन आन्दोलन को निरंतर मिल रहे जन समर्थन से राजा एवं राज्य के नौकरशाह चिंतित एवं चौकन्ने रहने लगे। तत्कालीन छतरपुर नरेश विश्वनाथ सिंह के पॉलिटिकल एजेन्ट नौगांव मि. फिशर से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध थे उन्होंने जन आन्दोलन को दबाने हेतु मि. फिशर से सहयोग मांगा। आन्दोलन के दमन की रीति–नीति पर विचार–विमर्श चलता रहा।

३० अक्टूबर १९३० ई. को दशहरा के दिन चरण–पादुका सिंहपुर में आयोजित एक विशाल सभा आयोजित हुई। जिसमें लगभग एक लाख लोगों ने भाग लिया। इस सभा में पॉलिटिकल एजेन्ट मि. फिशर का संदेश प्राप्त हुआ कि वह जन समस्याओं के निराकरण हेतु उत्सुक हैं तथा सम्बन्ध में जन प्रतिनिधियों से चर्चा करना चाहते हैं। उन्होंने जन प्रतिनिधियों को बताया कि ४ जनवरी १९३१ को गवर्नर जनरल के इन्दौर स्थित एजेन्ट नौगांव आयेंगे। तब आप आकर उनसे भेंट कर सकते हैं।

मि. फिशर के इस प्रस्ताव पर विचार–विमर्श हेतु रगोली ग्राम में जन प्रतिनिधियों की एक बैठक सम्पन्न हुई। जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया कि पहले अपनी मांगों के सम्बन्ध में महाराजा छतरपुर से भेंट की जाये। यदि राजा के द्वारा नकारात्मक रवैया अपनाया जाये तो इसके बाद मि. फिशर से भेंट की जाये।

छतरपुर नरेश से भेंट तिथि व समय निर्धारण हेतु श्री रामसहाय तिवारी ने श्री श्याम सुन्दर भट्ट तहसीलदार के साथ जनता के हिमायती तथा रियासत के तत्कालीन दीवान मिश्रबंधु पं. सुखदेव बिहारी मिश्र से भेंट की। महाराजा से भेंट किये जाने सम्बन्धी जानकारी जैसे मि. फिशर को मिली वह आग बबूला हो गया। परिणामस्वरूप इसी दिन सुखदेव बिहारी मिश्र, दीवान को छतरपुर छोड़कर जाने का आदेश दे दिया गया और श्याम सुन्दर भट्ट तहसीलदार को निलंबित कर दिया गया।

लौड़ी के गनेश चमार की कर जमा करने से मना करने पर इतनी पिटाई की गई कि उसकी मृत्यु हो गई। घूर मनोरिया की आमसभा से लौटते हुए आन्दोलनकारियों को जब इसकी जानकारी मिली तो वह गनेश चमार को शव यात्रा को एक जलूस के रूप में राजाशाही में विरुद्ध नारेबाजी करते हुए मरघट से ले गए। वहाँ उसके दाह संस्कार पश्चात् एक शोक सभा आयोजित हुई तथा

शासन द्वारा गनेश की नृशंसता पूर्वक की गई हत्या की निंदा की गई। दिनांक १८–१२–१९३० को राज्य द्वारा जन आन्दोलन गोलीकांड में गोकुल प्रसाद शुक्ल बेढ़री, कड़ोरा लुहार बेढ़री शहीद हुए।

मि. फिशर द्वारा निर्धारित तिथि ४ जनवरी १९३१ ई. को २००० आन्दोलनकारियों के साथ जनप्रतिनिधि नौगांव जाकर गवर्नर जनरल के एजेन्ट एवं पॉलिटिकल एजेन्ट मि. फिशर से मिले। जिसका कोई परिणाम नहीं निकला। आन्दोलनकारियों को धमकियां दी गई और कर जमा न करने पर स्थिति में उसके दुष्परिणामों हेतु तैयार रहने की चेतावनी दी गई। श्री रामसहाय तिवारी ने मि. फिशर के इस अप्रत्याशित व्यवहार को देखकर उसे गोली ने उड़ाने का निश्चय कर लिया किन्तु उनका प्रयास असफल रहा और इन्हें पिस्तौल सहित गिरफ्तार कर नौगांव जेल में डाल दिया गया।

श्री रामसहाय तिवारी की गिरफ्तारी ने आग में घी डालने जैसा कार्य किया। फलस्वरूप कर विरोधी आन्दोलन ने और गति पकड़ ली। जन प्रतिनिधियों ने एक राय होकर 'मकर संक्रांति के अवसर पर उरमिल नदी के तट पर स्थित सिंहपुर के चरण पादुका नामक तीर्थ में दिनांक १४ जनवरी १९३१ ई. को राज्य भर से आन्दोलनकारियों की एक विशाल सभा करने का निर्णय लिया। इसकी सूचना पूरे राज्य में प्रसारित की गई।'

छतरपुर नरेश ने पॉलिटिकल एजेन्ट मि. फिशर से मिलकर भविष्य में आन्दोलन के और अधिक उग्र रूप लेने तथा उससे उत्पन्न होने वाले संकट की संभावनाओं पर चर्चा कर आगे की रणनीति तैयार की। मि. फिशर ने इन्दौर से कोल–भील पलटन को बुला भेजा जो तीस लारियों में सवार होकर नौगांव आ गई। राज्य की पुलिस एवं मिलेट्री को भी तैयार रहने को कह दिया गया। दिनांक १३ जनवरी के रात में ही कोल–भील पलटन एवं राज्य की पुलिस ने चरण पादुका में डेरा डाल लिया।

पूर्व निश्चित कार्यक्रमानुसार दिनांक १४ जनवरी १९३१ को स्नान पूजन से निवृत हो प्रातः ९ बजे आन्दोलनकारी सभा स्थल पर एकत्र होने लगे। लगभग एक लाख आन्दोलनकारी एकत्र हो गए। श्री सरजू दौआ की अध्यक्षता में सभा की कार्यवाही प्रारंभ हुई। श्री लल्लूराम शर्मा का भाषण चल रहा था, इसी बीच इन्दौर से आई कोल–भील पलटन एवं राज्य की पुलिस, मिलेट्री ने बिना किसी चेतावनी के मशीन गनों एवं राइफल्स से गोली चलाना शुरू कर दिया। गोलियों की धांय धांय की आवाजों गूँज उठी। लोगों में भगदड़ मच गई।

"The people attending the meeting were ruthlessly fired upon with machine-guns and rifles. The firing resulted in the death of 21 persons and injury of 26. Amoungst those who died were Seth Sunder Lal Baroha, Chiru kurmi of Pipat, Halkai Ahir of Bandhiala, Dharamdas of Khirwa and Ram Lal of Guna Burwa."

विचारणीय है कि उपरोक्तानुसार २१ लोगों का शहीद होना बताया गया है जिनमें केवल ५ शहीदों के नामों का उल्लेख है। श्री नरेन्द्र जैन ने निम्नलिखित विवरण अनुसार ६ शहीदों के नामों का उल्लेख किया है। यथा – १. सेठ सुन्दरलाल वैश्य गिलोहा, २. धर्मदास मातों, ३. रामलाल मातों, ४.. हल्के कुर्मी, ५. रामलाल कुर्मी, ६. रघुराज सिंह, तथा घायलों की संख्या २६ बताये जाने का उल्लेख किया है।

स्वतंत्रता संग्राम सेनानी महाशय गोकुल प्रसाद ने लिखा है कि – मरने वालों की ठीक संख्या का आज तक पता नहीं। सरकारी घोषणा के अनुसार ६ मरे, ३४ घायल। इसके बाद मृत व्यक्तियों के घरों को लूटा गया। कुर्की हुई। मकान खोदकर फेंक दिये गये। राज्य में चारों ओर श्मशान जैसा सन्नाटा छा गया।

महाशय गोकुल प्रसाद, रामप्रसाद एवं जगन्नाथ स्वर्णकार द्वारा विन्ध्यवाणी के शहीद अंक गाँधी जयंती १९४८ में निम्नलिखित विवरण अनुसार ४ शहीदों का संक्षिप्त विवरण दिया गया है –

१. **अमर शहीद सुन्दर लाल सेठ जी –** आपका जन्म छतरपुर राज्य के बरोहा नामक ग्राम में हुआ था। आपके पिता श्री जानकी प्रसाद जी वैश्य एक साधारण गृहस्थ थे। साधारण ग्रामीण बालक की भांति सुन्दरलाल का पालन पोषण हुआ। घरू कारबार के लिए जितना अनिवार्य था, उतनी शिक्षा – यही तीन–चार दरजे तक इस बालक को मिली। इसके बाद व्याई–बंजी के धन्धे में लगा दिये गये। चौबीस वर्ष की उम्र, अपेक्षाकृत अधिक विद्या वृद्धि। सुन्दर लाल नई हवा में बह गये और छतरपुर में जब आन्दोलन हुआ तो उसमें कूद पड़े।

१४ जनवरी १९३१ को प्रातःकाल जब चरणपादुका पर विरोध सभा होने वाली थी तो सुन्दर लाल का विशाल दल वहां भी गया। यद्यपि दुर्घटना की पूरी अशंका थी तथापित इस निडर तरुण ने बड़े उत्साह से स्नान तथा चरण–चिह्नों की पूजा कर सभा में भाग लिया। गोली को उस बहादुर ने सीने पर झेला। चौबीस वर्ष के स्वस्थ सुन्दर लाल का गाड़ा लाल रक्त स्वतंत्रता देवी के चरण चिह्नों पर चढ़ गया।

चरण पादुका पर जिस समय गोलियों की बौछार हो रही थी और लोग हड़बड़ा कर भाग रहे थे, उस वक्त गिलोहां ग्राम के निवासी कुछ बहादुर लोग सुन्दर लाल की लाश को लेकर वहां से भागे और महोबा के काँग्रेस के दफ्तर में पहुंचा दी। वहां लाश का मुआइना भी करा दिया। उन बहादुरों ने बाद में इसका फल भी भुगता। रियासत के अधिकारियों ने महोबा की पुलिस की सहायता से उनको गिरफ्तार करा दिया और राज्य में लाकर बुरी तरह मारपीट की। और इन लोगों तथा सेठ सुन्दरलाल जी की सारी सम्पत्ति पुलिस व फौज ने लूट ली।

सुन्दर लाल जी अपने पीछे वृद्धा माता, असहाय पत्नी तथा अनाथ एक वर्ष के बालक को छोड़ गये थे। इन तीनों प्राणियों को बाद में पुलिस फौज द्वारा राक्षसी यातना झेलना पड़ी। आज भी वे किसी भांति अपने जीवन का बोझ ढो रहे हैं।

२. **वीर चिररू –** आप पिपट के निवासी थे। वहीं एक कुर्मी

जाति के निर्धन किसान के घर में जन्म हुआ। गरीबी ने बचपन में भी खेलना–खाना जानने नहीं दिया। शुरू से ही खेत पर काम करना पड़ा। जबानी में लोगों से गांधी जी के आन्दोलन की बातें सुन–सुनकर इस ओर झुकाव हुआ। रोज ही सरकारी कर्मचारियों के नित नये अत्याचार देखे। एक नई दिशा की ओर मन चला जाता। तब से सभाओं में शामिल होने लगे।

चरण पादुका की सभा के दिन आपने उत्साह से सारे गांव को इकट्ठा किया और साथ लिवा गये और लौट कर नहीं आ सके। अभी उस दिन पं. रामसहाय जी तिवारी जब आपके घर श्रद्धांजलि अर्पण करने गये तो मकान की जगह खंडहर ही शेष बचा था। घर में एक मात्र माँ थी। सो पुत्र शोक में अन्धी हो गई। मकान गिर गया। अपनी लड़की की ससुराल में किसी तरह दिन बिता रही है।

३. शहीद हलकाई – आपका जन्म राजनगर परगने के बंधिया ग्राम में हीरालाल अहीर के घर में हुआ था। घर में दरिद्रता का अखण्ड राज्य पिता साझे की खेती करते थे। सिर पर महाजन का भारी कर्जा था। जिसको वे कभी चुका न सके। छः वर्ष की उम्र में ही हल्काई को बछेरू चराने का काम करना पड़ा। चौदह वर्ष तक वही करते रहै। जब माँ का देहान्त हुआ तो घर का भी सभी काम साथ में करते। बाद में पिता भी न रहे। महाजन ने मकान भी बिकवा दिया। ऐसे वे घरबार को अपनी लड़की कौन व्याहता? पत्तों की टपरिया बनाकर उसी में रहने लगे। अकेले थे। पेट के लिए ढोर चराते और बाँसुरी बजा कर मस्त रहते।

चरणपादुका के मेला में गये थे। सभा की बात सुनी तो उसमें शामिल हुए। फलस्वरूप सामन्तशाही की गोलियों के निशाना बने। आप बड़े निडर साहसी और परोपकारी थे।

४. शहीद धरमदास – तहसील राजनगर का खिरवा गांव आपकी जन्मभूमि थी। जाति के कुर्मी थे। पिता मंगलदास डारुवा का मुख्य व्यवसाय खेती और पशुपालन था। घी का पर्याप्त उत्पादन होता था। धरमदास जी कभी पाठशाला न गये। चारागाह ही उनकी शिक्षा क्षेत्र थे। बड़े होने पर जब ख्याल आया तो किसी तरह अक्षर ज्ञान प्राप्त कर लिया। युक्त प्रान्त के हमीरपुर जिले में उन दिनों काँग्रेस का बड़ा जोर था। वहाँ से आपको भी प्रेरणा मिली। इधर तिवारी जी ने राज्य में कार्य शुरू किया। आप इस कार्य में बराबर भाग लेते रहे।

मकर संक्रान्ति को चरण पादुका की सभा में आप सदलबल गये थे। वही गोली खाकर वीर गति को प्राप्त हुए। आपके वृद्ध, रोगी और अशक्त माता–पिता आज भी जीवित हैं, जिनको केवल आपकी पत्नी का ही सहारा है। परन्तु उस अनाथ विधवा का सहारा क्या है, सो भगवान जाने।''

उपरोक्त चार शहीदों के अतिरिक्त अन्य दो शहीदों १. रामलाल एवं २. रघुराज सिंह के नामों का छतरपुर जिला गजेटियर के पृष्ठ ३६२–३६ पर दी गई स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों की सूची में भी कहीं नाम का उल्लेख नहीं है।

सिंहपुर में उरमिल नदी के तट पर स्थित पाषाण शिला पर अंकित चरण चिन्ह के कारण चरण–पादुका नाम से विख्यात पुरातन तीर्थ स्थल पर १४ जनवरी १९३१ ई. को गोलियाँ खाकर बलिदान देने वाले अमर शहीदों के पवित्र रक्त ने इस पुरातन तीर्थ को और अधिक महिमा मण्डित कर दिया।

यहाँ मकर संक्रांति के अवसर पर प्रतिवर्ष लगने वाले मेले में उपस्थित जन समूह जहाँ एक ओर उर्मिल नदी में स्नान कर सूर्य एवं चरण पादुका का वंदन करता है, वहीं दूसरी ओर वह इन अमर शहीदों की स्मृति में निर्मित शहीद स्मारक के समक्ष उपस्थित होकर नत मस्तक होना नहीं भूलता।

शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले। बतन पै मरने वालों का यही बाँकी निशा होगा।

– अवस्थी चौक, किले का मैदान, टीकमगढ़

संदर्भ ग्रंथ –

१. विंध्यवाणी साप्ताहिक टीकमगढ, सम्पादक – प्रेम नारायण खरे वर्ष १, अंक १, गांधी जयन्ती, १९४८, पृ. १४–१७

२. छतरपुर जिला गजेटियर – प्रका० जिला गजेटियर विभाग, भोपाल वर्ष १९८२, पृ. ६६–६८

३. बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक विरासत – डॉ. के.पी. त्रिपाठी, प्रकाशक – समय प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष २००० पृ. १८१

४. बुन्देलखण्ड का वृहद इतिहास, लेखक – डॉ. के.पी. त्रिपाठी, प्रकाशक, पं. ललित नारायण त्रिपाठी, भारत भवन टीकमगढ़, पृ. १८१

५. सरस्वती सदन शताब्दी स्मारिका २००६, प्रका. सरस्वती सदन पुस्तकालय पब्लिक ट्रस्ट, छतरपुर – लेख – स्वतंत्रता संग्राम में छतरपुर की भूमिका – श्री नरेन्द्र जैन, पृ. ७३

□

काँ लौ कयें

– हरगोविन्द तिवारी

एक अचम्भौ हमने देखो, मन में लग गई आग।
मन में लगी मनई में बर रई, सबई लगा रये लाग।।
खींचातानी भारी हो रई, हो रई भारी भागमभाग।
भगत–भगत भगौने नेता, चमका रये हैं खोटौ भाग।।
काल करत ते चाम चुराई, थामें आज राज की बाग।
जबसें इननें राज समारो, बिगरो सारे देश कौ राग।।
देश की जनता हा–हा कर रई, डस रये है अस्तीन के नाग।
नईयां कौनऊँ आज बचैया, सबई चाट रये कोरी पाग।
हंस बिचारे खाक छान रये, मोती चुन रये करिया काग।
करिया कौवा खूब लगा रये भारत माँ खों करिया दाग।।
भारत माँ के लाल प्यारे काँ लौ कयें रे अब तो जाग।।

– तिवारी टाइपिंग इंस्टीट्यूट, शाहगढ़

□

काशी नरेश चेत सिंह को मिला था बुन्देलखण्ड में आश्रय

– उदय शंकर दुबे

बुंदेलखंड की धरती जहाँ ऋषि–मुनियों की तपस्या स्थली रही है वहीं वह आपद्–ग्रस्त लोगों के लिये आश्रयस्थली भी थी। इसी कारण से रहीम जैसे अनुभवी कवि को इस धरती के प्रति कहना पड़ा – "चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश। जा पर विपदा परत है सो आवत यही देश।" रहीम का यह कथन अक्षरशः सत्य है। अठारहवीं शती में काशी नरेश चेत सिंह को बुंदेलखंड में ही आश्रय प्राप्त हुआ था।

सन् १७७० ई. में काशी के राजा बलवंत सिंह का स्वर्गवास हो गया। उन्हें कोई पुत्र न था। विवाहिता रानी गुलाब कुंवर से एक कन्या थी जिसका विवाह, तिरहुत में सिरसा के जमींदार दुर्विजय सिंह से हुआ था।[१] दुर्विजय सिंह को एक पुत्र था जिसका नाम मनीष नारायण सिंह था। बलवंत सिंह की रखेलिन से दो पुत्र चेत सिंह और सुजान सिंह थे। किन्तु इन दोनों का राज्य पर कोई अधिकार नहीं था, राजा बलवंत सिंह अपने भतीजे मानियार सिंह को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने को इच्छुक थे। ये तीनों ही अपने को बलवंत सिंह का उत्तराधिकारी समझते थे।[२] मनियार सिंह जब बलवंत सिंह की अंतिम क्रिया करने के लिये मणिकर्णिका घाट गये हुये थे, उसी समय चेतसिंह सहयोगी औसान सिंह ने रामनगर के किले पर पहरा बैठाकर खजाना पर अधिकार कर चेतसिंह को गद्दी पर बैठा दिया। जब मनियार सिंह को यह सूचना मिली तो वे प्राण रक्षा के लिये नेपाल भाग गये।[३] गद्दी पर बैठने से पूर्व ही चेतसिंह ने अवध के नवाब शुजाउद्दौला को अपनी गद्दीनशीनी के लिये बाईस लाख रुपये और माल गुजारी में ढाई लाख रुपये बढ़ाकर देना स्वीकार कर लिया था। नवाब के रामनगर आने पर उन्होंने पैंतालीस तरह की पोशाकें, दो किश्ती जवाहरात, पंद्रह घोड़े और पांच हाथी नजर किये।

सन् १७७३ ई. में गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स नबाब वजीर से वार्ता करने के लिये काशी आया किंतु नवाब से मिलने के लिये उसे लखनऊ जाना पड़ा। नवाब ने चेतसिंह को कोई सनद नहीं दी थी। चेत सिंह ने काशी में होस्टिंग्स से मिलकर नवाब से सनद दिलवाने की प्रार्थना की थी। वारेन हेस्टिंग्स के कहने पर नवाब ने चेतसिंह को एक इस्तमरारी सनद दे दिया।[४] सन् १७७४ ई. में नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र आसफउद्दौला अवध का नवाब वजीर हुआ। उसी समय वजीर का ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ नया बन्दोबस्त हुआ, जिसके द्वारा कंपनी राजा चेतसिंह के सब इलाकों की मालिक हुई। चेतसिंह ने कंपनी का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया और कंपनी को साढ़े बाईस लाख रुपये वार्षिक देने का वचन दिया। सन् १७७८ ई. में जब कंपनी का फ्रांसीसियों, मराठों और हैदरअली से युद्ध छिड़ गया तो हेस्टिंग्स ने साढ़े बाईस लाख रुपये के साधारण कर के अतिरिक्त पांच लाख रुपये लड़ाई के चन्दे के रूप में बनारस के राजा से मांगा। चेतसिंह ने प्रतिवाद तो किया पर कुछ समय बाद रुपया दे दिया।[५] सन् १९८० में उसे कंपनी को २००० घुड़सवार देने को कहा गया, परंतु उसके विरोध करने पर घटाकर एक हजार कर दिया किंतु हेस्टिंग्य ने कोई उत्तर नहीं दिया क्योंकि उसने राजा से पचास लाख रुपये वसूल करने का संकल्प कर लिया था। राजा को दण्ड देने के लिये हेस्टिंग्य स्वयं बनारस को चला। बक्सर में चेतसिंह से उसकी भेंट हुई। वहां उसने अपने को क्षमा कर देने की प्रार्थना की, परन्तु हेस्टिंगस ने कोई ध्यान नहीं दिया। वह सीधे १४ अगस्त १७८१ ई. को बनारस पहुंच कर माधोदास के बाग में डेरा डाला और चेतसिंह से पचास लाख रुपये जुर्माना वसूल करने का कार्यक्रम बनाना शुरू किया। किसी ने हेस्टिंग्स को यह सूचना दी कि चेतसिंह अपने लतीफपुर, विजैगढ़ आदि किलों में लड़ाई का सामान बटोर रहा है और उसने अपनी फौज की संख्या पूर्वापेक्षा बहुत बढ़ाई है, वह कंपनी के दुश्मन महाराष्ट्र वगैरह के साथ मिले थे और खुद भी कंपनी के विपक्ष होकर अस्त्र धारण का मतलब किया था, परन्तु उसके सावकाश के लिए ठहरा था। क्योंकि उसका अभिप्राय यह था कि जिस समय फरांशीस या महाराष्ट्र कंपनी पर चढ़ाई करे तो उस समय वह भी दूसरी तरफ से अंग्रेजों पर आक्रमण करके अपना मानस पूरा करे।[६] इसे सुनकर टेस्टिंग्स आग–बबूला हो उठा और १५ अगस्त १७८१ ई. को बनारस के रेजीडेंट मार्कहेम की चेतसिंह को कैद करने के शिवाला स्थित उनकी कोठी पर भेजा। हेस्टिंग्स ने मार्कहेम जो पत्र दिया था वह इस प्रकार है –

रेजीडेंट बनारस के

साहिब,

. मेरा यह हुकुम है कि आप कल सुबह को अपने पहरे के साथ राजा चेत सिंह के मकान पर जाइये और उसे कैद कीजिए। आप उन्हें समझा दीजियेगा कि यह आप मेरे हुकुम से करते हैं, और उन्हें मानना चाहिए अगर न माने तो आप वहां ठहरियेगा। मेजर पपहेम साहिब की फौज के दो कंपनी सिपाही आपकी मदद के लिये मेरे हुकुम मोताबिक वहां पहुंचेंगे। राजा को कैद करके मेरा दूसरा हुकुम जब तक न आवे अपने हवाले उन्हें रखियेगा।"

बनारस १५वीं अगस्त सन १७८१ ईस्वी

दस्तखत

हेस्टिंग्स नेरेटिव आव दी इन्सरेक्सन एट बनारस –पन्ना २०वां

इससे स्पष्ट है कि हेस्टिंग्स राजा को कैदकर उनसे रुपया वसूल करने का दृढ निश्चय कर लिया था। चेतसिंह ने अधीनता स्वीकार कर ली किंतु उनके सिपाही अपनी ही राजधानी में अपने स्वामी की बेइज्जती बरदाश्त न कर सके। रामनगर के किले से

उनके हथियार बंद सैनिक गंगा पार करके शिवाला धार स्थित राजमहल पर आ गये और विद्रोह कर और कंपनी के सैनिकों तथा अफसरों को मार डाला। मनियार सिंह जैसे योद्धा ने चेत सिंह को सलाह दिया कि माधौदास के लाग में जाकर हेस्टिंग्स को गिरफ्तार करें क्योंकि उस समय वहां गवर्नर जनरल के पास ज्यादा फौज नहीं थी किन्तु राजा ने उसे पसंद नहीं किया।[९] तेजसिंह ने मनियार सिंह का प्रस्ताव न मानकर भारी भूल की। इसका कारण यह है कि उन्होंने कभी युद्ध का मुख नहीं देखा था। राजमहल की चहार दिवारी के अन्दर ही रहे तथा षड़यंत्र करके धन के नाम पर अधिकार कर लिया था। यहीं से उनके भाग्य सितारे पर राहु–केतु लग गये और उन्हें सदैव के लिये काशी को छोड़ना पड़ा। वे बख्शी सदानंद लाला की राय से रामनगर भागे। उस समय गंगा बहुत बढ़ी थी। शिवाले घाट के महल की खिड़की के नीचे गंगा का पानी पहुंचा था। वहां किश्ती मौजूद रही। राजा ने खिड़की में पगड़ी बोधकर उसे पकड़कर किश्ती पर आ गये तथा गंगापार कर रामनगर के किले में पहुंच गये।[८]

रामनगर किले में सुरक्षित खजाना को चेतसिंह ऊँटों और हाथियों पर लदवाकर मय अपने रनिवास के सहित लतीफपुर किले में चले गये हेस्टिंग्स के आदेश से अंग्रेजों की सेना ने रामनगर किले पर चढ़ाई की किन्तु उसे हारकर भागना पड़ा। इसका बनारस पर भारी प्रभाव पड़ा। चेतसिंह के आदमियों ने माधौसिंह के बाग पर आक्रमण कर हेस्टिंग्स को बंदी बनाने की योजना बनाई। इसकी खबर पाते ही हेस्टिंग्स ने रात में ही बनारस छोड़कर चुनार के किले में जाकर शरण ली। उस समय उसके पास मात्र तीन हजार रुपये और कुछ सैनिक थे। चुनार का किला सामरिक दृष्टि से बहुत सुरक्षित था यदि चेतसिंह ने चुनार के किले में पहले ही आकर शरण ले लिया होता तो हेस्टिंग्स को सुरक्षा के लिये कहीं भी जगह न मिलती। चुनार का किला उन्हीं के अधिकार में था।

हेस्टिंग्स के चुनार के किले में पहुंचने की खबर जब अन्य स्थानों के अंग्रेज अधिकारियों को मिली तो चारों ओर से अंग्रेजी सेना चुनार पहुँच गई। मेजर राबर्ट ने पतीते के किले पर कब्जा कर लिया। यह खबर पाते ही चेतसिंह लतीफपुर किले को छोड़कर विजयगढ़ चले गये। विजयगढ़ का किला चंदेल राजाओं द्वारा बनवाया गया था। यह ऊँची पहाड़ी पर बना था और सुरक्षित था। चेतसिंह इस किले में भी नहीं रुके। उन्होंने कई लाख चांदी के सिक्के किले के अंदर बने कुएँ में डलवा दिया तथा बहुत सी संपत्ति, जवाहरात, लक्ष्मी नारायण की मूर्ति हाथी व ऊँटों पर लादकर विश्वस्त आदमियों को लेकर रीवा की ओर भागे तथा पूरे रनिवास को किले में ही छोड़ दिया। इधर कंपनी की सेना मेजर पम हेम के साथ लतीफपुर से विजयगढ़ पहुँच गई। मेजर पम हेम ने चेत सिंह की माँ पन्ना तथा अन्य औरतों का बड़ा अपमान किया। उसने सभी स्त्रियों के शरीर पर से आभूषण उतार लिया, बेश कीमती कपड़ों से भरे संदूकों को छीन लिया। इसका कारण हेस्टिंग्स द्वारा लिखा गया पत्र था "रानी की बेतलाशी लिये अगर छोड़ दोगे तो मेरी, विवेचना में आता है कि वे तुम सबको ठग के बहुत सा माल ले जावेंगी।[९] आभूषण बेश कीमती कपड़ों के अतिरिक्त अंग्रेजों को किले कुएँ के अंदर से तेईस लाख सत्ताईस हजार आठ सौ तेरह रुपये मिले। सेना के सिपाहियों ने सोने–चांदी के बर्तन, बहुत से जवाहरात तथा अन्य सामानों की लूट की।

चेतसिंह का बुंदेलखंड में प्रवेश –

विजयगढ़ (मिर्जापुर) से चेतसिंह रीवां की ओर भागे। रीवा राज्य से उन्हें कोई विशेष सुविधा नहीं मिल पाई अतः वे सीधे पन्ना चले गये "रास्ते में उनकी बहुत सी संपत्ति लुट गयी और जिस इलाके से भागे वहां वालों को रिश्वत भी देनी पड़ी।" पन्ना के राजा सरमेद सिंह ने काशी नरेश चेतसिंह की बड़ी आवभगत की। बुंदेला राजा ने उन्हें किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होने दी। पन्ना से चेतसिंह छतरपुर, बरुआ सागर, झांसी होते हुए दतिया पहुंचे। इस समय दतिया की गद्दी पर शत्रुजीत आसीन थे।[१०] उन्होंने काशीनरेश का आदर सत्कार करने में कोई कमी नहीं की। अपनी कठिन परिस्थिति में "चेतसिंह ने माधौराव, सिंधिया के पास अपने एक विश्वासी दूत को भेजकर उनके सामने एक बड़ी फौज के साथ अंग्रेजों से लड़ने का प्रस्ताव रखा और खुद भी सिंधिया से दतिया के पास नवम्बर सन् १७८१ ई. में जा मिले।[११] चेतसिहं को यह पता नहीं था कि सिंधिया ने अंग्रेजों के साथ सुलह कर लिया है नवम्बर १७८१ में ही सिंधिंया ने कर्नल म्योर के साथ नरवर में संधि पर हस्ताक्षर किया था हेस्टिंग्स से सुलह चाहते थे और इस संबंध में सिंधिया से कंपनी की सुलह का समाचार सुनकर उन्हे बडी प्रसन्नता हुई सिंधिया ने इस सुलह के बाद पेशवा के साथ अंग्रेजों की सुलह जल्दी ही करा देने का वादा किया गया।" सिंधिया को चेतसिंह की दैलत का पता था इसीलिए उसने उनकी बड़ी अवभगत की। "नाना फड़नवीस के वकील लाला सेवकराम कलकत्ते में रहते थे। इनका हेस्टिंग्स के साथ बराबर बनारस आना–जाना होता रहा। अपनी इन यात्राओं का वर्णन वे बराबर नाना के पास भेजते थे।"[१२] उनके एक पत्र से चेतसिंह और सिंधिया के परस्पर मिलने की जानकारी होती है – "बनारस श्रावण वदी १० को पहुँचकर उसने चेतसिंह के साथ बेईमानी बरती और ईश्वरेच्छा तत्काल दुर्दशाग्रस्त होकर रात्रि के समय सात कोस चुनार के किले में भागना पड़ा। .... चेतसिंह घबराकर पचास हाथी और दो सौ ऊँटों पर रुपये और मुहर लाद कर भागा उसने एक वकील नाना साहब और दो वकील महादजी शिंदे और अहल्या बाई के पास भेजे। .... पौष कृष्ण १३ को खबर मिली कि चेतसिंह महादजी के पास पहुंच गये हैं। सिंधिया ने तीन कोस आगे अपने दीवान को भेजकर उनकी आवभगत की और उनकी कुशल पूछकर पोशाक और जवाहरात भेंटकर लश्कर के ठहरने का प्रबन्ध किया और उनको ढाढस बंधाया।"[१३] लाला सेवकराम को मिली खबर अधिक प्रामाणिक लगती है।

कर्नल म्योर के ५ और ६ दिसम्बर के पत्र से ज्ञात होता है कि 'चेतसिंह ने महादजी सिंधिया से शिवाजी और अम्बाजी को

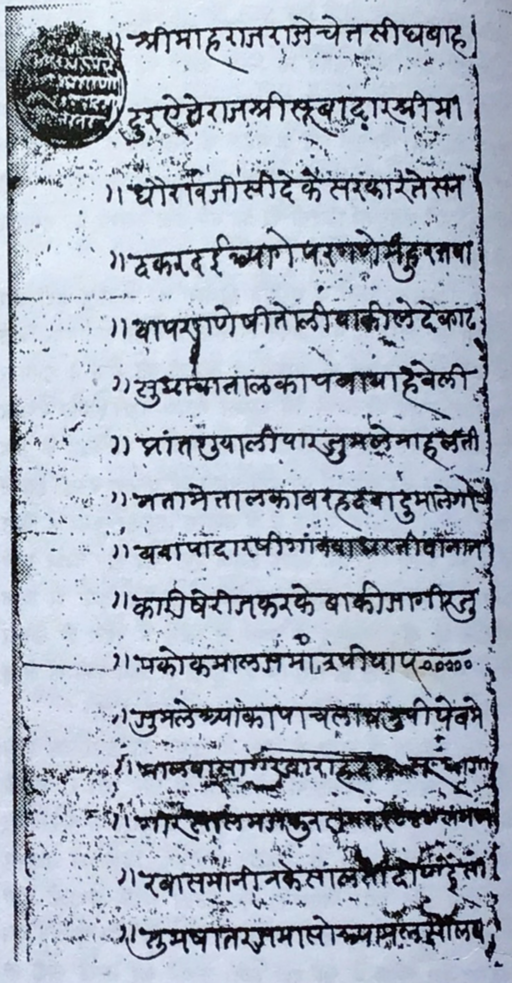
बनारस पर धावा बोलने की आज्ञा चाही। जब सिंधिया ने यह बात मान ली तब राजा ने उनकी सेना की बाकी तनख्वाह और भविष्य में राजा के साथ देने वाली सेना की तनख्वाह देने का वादा किया। म्योर को यह भी पता चला कि सिंधिया की नागा फौजें चेतसिंह के साथ हो ली थीं। ६ दिसम्बर के सिंधिया के एक पत्र से म्योर को ज्ञात हुआ कि वे राजा चेतसिंह की सिफारिश करना चाहते थे।''[१४] वारेन हेस्टिंग्स बार–बार एंडरसन को पत्र लिखकर सिंधिया से वार्ता करने पर जोर देता रहा। सिंधिया ने २३ जनवरी १७८२ ई. को एंडरसन से भेंट करना स्वीकार किया इस भेंट में सिंधिया ने चेतसिंह की प्रार्थनाओं को न मानने का वादा किया। एंडरसन को हेस्टिंग्स ने यह भी आदेश दिया कि वह चेतसिंह के पड़ाव से हट जाने पर सिंधिया से मिलने की शर्त पर अधिक जोर न दे।[१५] इसका कारण यह था कि हेस्टिंग्स किसी प्रकार जल्दी से जल्दी सिंधिया के माध्यम से पेशवा के साथ संधि करना चाहता था और हुआ भी यही। सिंधिया की मदद से, अंग्रेजों ने पेशवा के साथ मिलकर दिसम्बर, सन् १७८२ ई. में सालवी की संधि कर ली। किंतु चेतसिंह के मामले में सिंधिया कुछ न कर सके इसलिये उन्होंने अन्य प्रकार से काशी नरेश का परितोष करने का निश्चय किया।

सिंधिया द्वारा चेतसिंह को प्रदान की गई जागीर –

चेतसिंह ने अपनी ओर से सिंधिया को ग्यारह लाख के हीरे–जवाहरात के अतिरिक्त काशी में बने सिल्क के वेशकीमती कपड़े उपहारस्वरूप भेंट किये थे। धार्मिक नगरी काशी के राजा का मान–सम्मान करने को सिंधिया हृदय से चाहते थे, किन्तु अंग्रेजों ने चेतसिंह के विषय में सिंधिया के किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। उधर वे स्वयं अंग्रेजों से संधि कर चुके थे और पेशवा से भी संधि करा चुके थे। अतः उन्होनें चेतसिंह को दस लाख की जागीर देने की पेश–कश की। एंडरसन अपने २० मई १७८३ के एक पत्र में लिखता है कि ''सिंधिया ने चेतसिंह को दस लाख सालाना आमदनी की एक जागीर जिसमें भिण्ड और कछवागढ़ भी शामिल थे, देने का निश्चय कर लिया था। १० जून १७८३ ई. के एक दूसरे पत्र में एंडरसन फिर लिखता है कि ''नवाब वजीर की रियासत के पास होने से चेतसिंह ने भिण्ड लेना कबूल नहीं किया और उसकी जगह सिंध नदी के पास विजयगढ़ लेना चाहा। इसी बीच में सिंधिया ने जागीर घटाकर पांच लाख की कर दी और असल में तो उस जागीर की आमदनी दो या तीन लाख से अधिक नहीं थी।''[१६] एंडरसन की इस बात की पुष्टि, सिंधिया द्वारा चेतसिंह को प्रदान किये गये अधिकार पत्र से होती है, सिंधिया ने संवत् १८४० वि. (सन् १७८३ ई.) में चेतसिंह को पांच लाख सालाना आमदनी की जागीर का प्रमाण पत्र जारी किया था। मूल अभिलेख इस प्रकार हैं –[१७]

मुहर

श्री माहराज राजे चेत सींघ बाहदुर ऐते राजश्री सूबादार श्री माधौराय जी सींदे के सरकार ते सनद कर दई आगे परगणे भहुरतवा वा परगणे बीतोली वा करिबे देवगढ़, सुधा वा तालका पवाया हवेली प्रांत गुवालीयार जुमले माहल तीन तामे तालका वरहद वा दुमाले गांव वा पादराघी गांव वा धरती वा नानकारी बेरिज करके बाकी जागीर तुमको कमाल जमा रुपीया ५००००० जुमले आंका पांच लाख रुपये वमे माल क सागर वा राहदीर सूधा जागीर साल मजकूर संवत् १८४० सन् .... रबासमानीन रही उस्सानी के साल सो दीया है सो तुम बातर जमा सो आमल साल ब साल करनौ मीती सावन वादि १ संमत १८४०।।


।।श्री माहराज राजे चेत सीघ बाह
दुर ऐते राजश्री सूबादार श्रीमा
।।धोराव जी सींदे के सरकार ते सन
।।द कर दई आगे परगणे भुहरतवा
।।वा परगणे बीतोली वा करीबे देवगढ़
।।सुधा वा तालका पवाया हवेली
।।प्रांत गुवालीयार जुमले माहल ती
।।न तामे तालका वरहद वा दुमाले गां
।।वा पादरघी गांव वा धरती वा नान
।।कारी बेरीज करके बाकी जागीर तु
।।मको कमाल जमा रुपीया ५०००००
।।जुमले आंका पांच लाख रुपीये वमे
।।[illegible]
।।[illegible]
।।रबासमानीन के साल सो दीया है
।।तुम बातर जमा सो आमल साल ब

(श्री माधौराव सिंधिया द्वारा काशीराज चेतसिंह को दी गयी सनद)

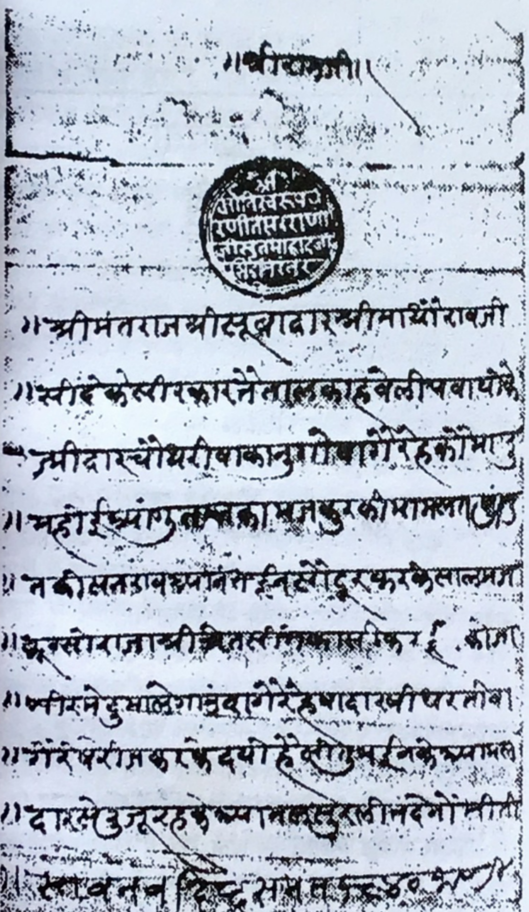
इस सनद से स्पष्ट है कि सिंधिया ने चेतसिंह को पाँच लाख रुपये की जागीर सौंप दी थी। यही नहीं पहली सनद जारी करने के ठीक पांच दिन बाद सिंधिया ने तालका हवेली पवाया के जमींदार, चौधरी और कानून गो आदि राज्य के अधिकारियों को एक सनद जारी कर आदेश दिया कि वे किसनराव अनंत को इस क्षेत्र से अलग कर राजा श्री चेतसिंह काशी को सौंप दे क्योंकि मैंने उन्हें दुमाले गांव वगैरह की धरती पादार्थ के रूप में जागीर में

दी है – [१७]

॥ श्री राम जी॥

मुहर

'श्रीमंतराज श्री सूबादार श्री माधौराव जी सींदे के सीरकार तै तालका हवेली पवाया कै जमीदार चौधरी व कानुनगो वगैरह कौ मालुम होई आंगु तालका मजकुर की मामलत पंडत कीसन राव अनंत ईनसौ दूर करके साल मजकूर सो राजा श्री चेतसींग कासी का इनको जागीर में दुमाले गांउ वगैरह पादारधी धरती वा गैरे बैरीज करके दयो है सो तुम इनको आमलदार से रुजू रहके आमल सुरलीत देनों प्रीती सावन वदि ६ समत १८४०॥


॥श्रीमंतराजश्रीसूबादारश्रीमाधौरावजी
॥सींदेकेसीरकारनेतालकाहवेलीपवायाके
॥दयोहे

(श्री माधौराव सिंधिया द्वारा काशीराज चेत सिंह के पक्ष में जारी परवाना)

उस काल में जहाँ वारेन हेस्टिंग्स की शक्ति के सामने देशी रियासत के राजा भयाक्रांत थे और विद्रोही काशीराज को शरण देना भी अंग्रेजों से शत्रुता मोल लेना था उस परिस्थिति में भी सिंधिया ने उन्हें अपने यहाँ आश्रय दिया और उनके जीवन निर्वाह के लिये पांच लाख की जागीर सौंप दी। समय को देखते हुये चेतसिंह को इसी जागीर से संतोष करना पड़ा और वे ग्वालियर से आगरा चले गये। वे आगरा में हवेली का निर्माण कराकर रहने लगे। आगरा में आज भी उनके नाम से चेतसिंह की गली प्रसिद्ध है। उन्होंने सिंधिया द्वारा प्रदत्त जागीर का कार्यभार अपने छोटे भाई को सौंप दिया और स्वयं धार्मिक कार्यों में लग गये। बनारस से उनका सदैव के लिये नाता टूट गया। इतना ही नहीं काशी के उनके धर्मगुरु, पुरोहित और पंडितों का साथ भी छूट गया। उन्होंने धार्मिक कृत्य संपन्न कराने हेतु बुंदेलखण्ड सेवढ़ा के तत्कालीन धार्मिक अनुष्ठानकर्ता पंडित गरए झारखरिया को चुना। इसी पंडित घराना को दतिया के राजा शत्रुजीत, इन्द्रजीत और पारीछत ने भी अपना गुरु माना था। राजा इन्द्रजीत, शत्रुजीत और पारीछत द्वारा पं. श्री हीरानंद झारखरिया को समय–समय पर कई दान पत्र, सनदें दी गई थी। [१८] श्री हीरानंद झारखरिया द्वारा संवत् १८४९ वि. में पं. गरए के नाम लिखा एक पत्र भी उपलब्ध है – दतिया के राजाओं द्वारा दी गई सनदों से यह पता चलता है कि उस समय इस परिवार को दतिया राज्य में बहुत सम्मान प्राप्त था।

काशीराज चेतसिंह ने कार्तिक पूर्णिमा के पर्व पर मथुरा की तीर्थ यात्रा की। काशी में इस पर्व की बड़ी महत्ता है। लोग गंगा में स्नान कर ब्राम्हणों को दान देते हैं। मंदिरों में जाकर भजन पूजन करते हैं। इसी परम्परा का निर्वाह चेतसिंह ने किया। उन्होंने यमुना में स्नान कर, सेवढ़ा के वेदमूर्त पं. झारखरिया गरए को भगवान के भोग निमित्त प्रतिदिन चार आना का दान दिया। यह उनका उपलब्ध एक मात्र दान पत्र है। – [१९]

॥ श्री॥

स्वस्ति श्री मन्महाराजाधिराज श्री कासीराज राज बहादुर श्री नृप चेतसिंघ देव के सरकार सैं दानपत्र कर दीना वेदमूर्त पं. श्री झारखरिया गरए कौ श्री ठाकुर बिहारी जू के भोग कौ कस्बा मौ चबूतरा मैं रोज आना चार ।) आना को सो तुम हमेसा पायो जैहौ पुस्तान पुस्त जा रोज सौं कोऊ हमारा संतान वा जिसकी तरफ जगा होइगी सो कोई मुजाम न होइगा वास्ते भोग के कर दीना है सो तुम हमेसा भोग लगाउत रहौ और सरकार कौ आसीरवाद हमेसा देत रहौ जा बोल प्रमान सनद हमेसा पली जैहै हिन्दू वा मुसलमान जो धर्म ईसुर षुदा में ग्यान हू है सो मुजामि न हू है कासिक सुदि १५ संवत् १८४८ मुकाम मथुरा हुकुम हजूर परवानगी बाबू सुजात सिंघ जी दाखिल दफतर मुस्तौफी दाखिल हाल सनद में चबूतरा में रोजाना चार आना मिलै हैं॥

एक अन्य सनद में ज्ञात होता है कि खेतसिंह ने पं. झारखडिया हीरानंद को संवत् १८६१ वीं (सन् १८०४ ई.) के पूर्व किसी समय परगना खितौली के मौजा बेरिया में पचीस बीघा जमीन पादारध दी थी जिस पर जाटों ने कब्जा कर लिया था। पं. झारखरिया गरए के निवेदन पर लोकेन्द्र कीरत सिंह ने उन्हें सनद दी जिससे उस गांव के जमींदार ने भूमि वापस की। [२०]

।श्री॥

स्वाद अक्षर,

मुहर

लोकिन्दर बहादुर कीरत सिंह दलेर जंग सनद करि दीनी

सिधि श्री महाराजाधिराज की राजा सवाइ श्री राजा कीरत सिंघ लोकइन्द्र बहादुर दलेर जंग जू देव की सिरकार सै परगने षितौली तालुका झै मौ. बेरिया के जिमीदार हाल वा इस्तक बाल कौ मालूम होइ आगै पं. श्री झारखरिया हीरानन्द कौ पादारष की जिमी बीघा २५ जागा सिंवाई मौ. मजकूर में हमेस ते चली आइ है सो हाल पं. झारखरिया गरऐ जू कौ सिरकार सौ बहाल करि दइ व मुअब सनद श्री काशीराज राजा बहादुर श्री नृप चेतसिंह उर की सिरकार की समझि कै करार करि दये सो सदामति पावै जाइ कोउ कबहु तकरार न करे प्र. दीमान उर २५ जिमी बीघा मिती कातिक सुदि १५ संवतु १८६१ मुकाम गोहद दा. दफ्तर दीमानी जिमी बीघा पचीसा''

राजा कीरतसिंह परगना सितौली के गांवों पर कब्जा जमा लिया था। यदि पं. गरए के पास चेतसिंह द्वारा दी गई सनद न होती तो उसकी जमीन वापस न मिलती। कीरतसिंह ने ईमानदारी के साथ भूमि वापस करा दी। इस पत्र से तत्कालीन परिस्थिति का पता चलता है कि किस प्रकार एक दूसरे की जमीन पर अधिकार कर लेते थे।

चेतसिंह सन् १७८१ से सन् १७८३ ई. तक बुन्देलखंड की धरती पर ही जीवन बिताया सिंधिया से जागीर प्राप्त होने पर उन्होंने बुंदेलखंड के पंडितों के भूमि दान में दी। उनकी सनद की भाषा भी बुंदेलखंडी है। बुंदेलखण्ड से आगरा चले जाने पर उनका अधिकतर समय अपने इष्टदेव श्री लक्ष्मी नारायण की आराधना और कविता करने में बीता। उन्होंने संवत् १८४० वि. (सन् १९८३ ई.) में लक्ष्मी नारायण विनोद [१८] ग्रंथ की रचना की। उनके द्वारा लिखे गये अन्य ग्रंथों का पता नहीं चलता।

संवत् १८६९ वि. (सन् १८१० ई.) में काशीराज चेतसिंह का स्वर्गवास हो गया। उनकी काशी से बघेलखंड, बुन्देलखंड, ब्रजमण्डल क्षेत्र तक की यात्रा समाप्ति के बाद भी अंग्रेजों ने काशी में उनके वार्षिक श्राद्ध तक न होने दिया। बुंदेलखंड को यह श्रेय है कि अपनी धरती पर देश की धार्मिक और सांस्कृतिक नगरी काशी के राजा को आश्रय दिया।

– ग्राम करेरुआ, पो. खमरिया, मिर्जापुर

संदर्भ ग्रंथ –

१. भारतीय राजदर्पण – निरंजन मुखर्जी, पृष्ठ १६, सन् १८७५ ई.
२. वही, पृ. १८ ३. वही, पृ. १९
४. वही. पृ. २० ५. वही. पृ. २७
६. वही, पृ. ३८–३९
७. काशी का इतिहास – डॉ. मोतीचंद, पृ. २८२–२८३, हिन्दी ग्रंथ रत्नाकर, प्रा. लि. हीराबाग – बंबई ४, सन् १९६२ ई.
८. वही, पृ. २८३ ९. भारतीय राजदर्पण, पृ. ५४
१०. दतिया दर्शन – सं. हरिमोहन लाल श्रीवास्तव, पृ. १२–१३, प्रकाशक – राधाचरण गोस्वामी, दतिया अधिवेशन, विन्ध्य प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन।
११. काशी का इतिहास, पृ. २८८
१२. वही. पृ. २९०
१३. वही पृ. २९०
१४. वही, पृ. २८८–८९
१५. वही, पृ. १८९
१६. वही, पृ. २८९
१७. माधौराव सिंधिया द्वारा प्रदत मूल अभिलेख की प्रति श्री सुनील डे बंगाली टोला, वाराणसी के संग्रह में सुरक्षित छायाप्रति हेतु लेखक उनका आभारी है।
१८. दतिया जिले में पत्र पाण्डुलिपियों का सर्वेक्षण डॉ. कामिनी, डॉ. अवध बिहारी डॉ. सीताकिशोर, पृ. ८५, ८६, ८८, ९५, प्रकाशक, आराधना ब्रदर्स, १२४/१५२ सी. गोविन्द नगर, कानपुर–६, सन् १९९० ई.
१९. वही, पृ. ९१
२०. वही, पृ. ९८

□

बुंदेली कविता

– शिव कुमार गुप्त 'सागर'

नानक मीरा–सूर–कबीरा तुलसी औ रसखान।
सबकौ मालिक एक बता गए, सबरे चतुर सुजान।।
धरती मैया विलख–विलख कें, रो रई दै दै टेरें।
जात वाद औ प्रान्तवाद के पंडा–ऊखों–घेरें।।
जी जांगा के लानें, लरका वारे दैरय कूका।
नेंक मताई सें तौ पूछौ–जी के करनें टूंका।।
कोऊ बंगाली–मद्रासी–कोऊ इतै गुजराती।
भारत माँ के लाल कितै हौ, आन जुरा दो छाती।।
सबसें प्यारौ–सबसें न्यारौ – अपनों हिन्दुस्तान।
नानक मीरा–सूर–कबीरा, तुलसी औ रसखान।।
घर की फूटइ सें हम भइया, सदियन दास बनें रय।
संगीनन के मों हम तांई, सालन–साल, तनें रय।।
उत्तर–पर्वर्ततराज दै रये – रात–दिना कौ पेरौ।
तुरतई टूट परौ बैरी पै – तन कई मिलवै ऐरौ।।
पश्चिम में श्री सोमनाथ जू दै रय हमें संदेशौ।
घर में फूट मिटालौ – नईतर फिर सें लगत अंदेशौ।।
भलां दाव पै लग न पावें – गीता औ रामान।
नानक–मीरा–सूर–कबीरा, तुलसी और रसखान।।
जैसें काया न हुइयै तौ मरम कितै सें हुइयै।
वैसेंई अगर देश न रव तौ धरम कितै सें हुइयै।
भारत माँ के लांय–सपूतन ने कुर्बानी दइती।
लाखन मूढ़न खों होमों – तब जा सुतन्नता लइती।।
डेढ़ पसुरिया के गांधी ने, जब हुँकार भरी ती।
चली अहिंसा की आंधी, गोरन की गुर्ज गिरी ती।।
विरथां न जा पावै गांधी बब्बा कौ बलदान।
नानक मीरा सूर कबीरा तुलसी औ रसखान।।
सबकौ मालिक एक बता गय, सबरे चतुर सुजान।।

– मेन मार्केट, निवाड़ी, जिला टीकमगढ़ □

बुंदेलखण्ड के लोकदर्शन की विशिष्टताएँ

— डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी

मनुष्य जिस परिवेश में जन्म लेता है, उसमें समाहित मनुष्य, पशु–पक्षी, धरती और जल, पेड़–पौधे तथा अन्य वस्तुएँ मिलकर ही लोक कहलाती हैं। उसमें अपने आप को समायोजित करने सम्बन्धी मनुष्य के विचार जब सामूहिक हो जाते हैं तब विचारों का यही संपुंजन लोक चेतना कहलाता है।

व्यक्तिगत विचारों के द्वन्द और संघर्षण के फलस्वरूप विवेक और नैतिकता की कसौटी पर खरे उतरे जिन सामंजस्यपूर्ण विचारों का विकास होता है, उनसे समाज की एक संसृष्ट (सामूहिक) मानसिकता बनती है। इसमें परा (पारलौकिक) तथा अपरा (लौकिक) के पारस्परिक सम्बन्ध का चिन्तन भी सम्मिलित होता है वही लोकदर्शन है। इसी से स्वस्थ एवं सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने की शैली का निर्माण होता है।

लोकदर्शन का व्यावहारिक स्वरूप ही लोक संस्कृति है। इसका सैद्धान्तिक पक्ष एवं नियामक तत्व लोक दर्शन होता है। लोकदर्शन में उदात्तता या अनुदात्यता सम्बन्धी जो भी परिवर्तन होते हैं, वे तदनुरूप लोक संस्कृति को परिभाषित करते हैं।

वस्तुतः लोक चेतना, लोक दर्शन तथा लोकसंस्कृति लोक चिन्तन के ही तीन आयाम है। मोटे तौर पर इन्हें समानार्थी ही समझा जाता है। लोक–दर्शन और लोक संस्कृति गतिशील होती है। आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक बदलते हुए परिवेश के दबावों में लोकदर्शन (लोगों की संसृष्ट मानसिकता) खण्डित और विकृत हो सकता है। तदनुसार लोक संस्कृति भी प्रभावित होने लगती है। उसके उदात्त मूल्य कमजोर या नष्ट हो जाते हैं तो उनसे सम्बन्धित व्यावहारिक कार्यकलाप भी खोखले हो जाते हैं।

बुंदेलखण्ड के लोक–दर्शन का वैशिष्ट यह है कि इसकी मूल भावना स्वस्तिमयी है; यद्यपि भारत की अन्य लोक–संस्कृतियों में भी न्यूनाधिक यह वैशिष्ट है, परन्तु बुन्देली लोकदर्शन में इसके साथ कुछ और भी विशेष हैं, जिसके दर्शन बुंदेली संस्कृति में पग–पग पर होते हैं। यथा —

बुंदेलखंड में कभी शक्ति पूजा की प्रधानता रही हो, यह इतिहास के गहन शोध का विषय है, परन्तु वर्तमान समय में बुंदेली समाज के धार्मिक कार्यकलापों पर विचार करने ऐसा माना जा सकता है। स्वस्ति भावना के उदाहरण प्रस्तुत करने से पूर्व शक्तिपूजा सम्बन्धी बात करना चाहूँगा, क्योंकि बुन्देली लोकदर्शन की यह अतिविशिष्टता प्रतीत होती है।

जिस तरह नवदुर्गा में व्रत और उपासना में जिस प्रतिबद्धता और तन्मयता के नौदिन की अवधि में दर्शन होते है, वह दूसरे व्रतों में दुर्लभ है। केवल कार्तिक स्नान ही एक अपवाद है। यह परवर्ती संसर्ग का फल हो सकता है। नवदुर्गा में ही कुमारी कन्याओं द्वारा नौरता खेलने के रूप में गौरी पूजन का कलामय खेल बुंदेलखंड में ही शक्ति पूजा की एक विशिष्ट परम्परा है, जो और कहीं तो क्या सम्पूर्ण बुंदेलखंड में, बुंदेलखण्ड के इस हृदय स्थल को छोड़कर कहीं नहीं है। जहाँ–जहाँ इसका प्रचलन है भी वहाँ भी इसके स्वरूप में किंचित भिन्नता पाई जाती है।

एक विशेषता और भी है जो कि शक्ति–पूजा की भावना का प्रभाव प्रतीत होती है। बुंदेलखण्ड क्षेत्र में ही बहिन–बेटियाँ सदा पूज्य मानी जाती हैं। उनके ब्याज से बहनोई और दामाद भी पूज्य माने जाते हैं। पितामह, पिता, काका, उनसे आयु में वृद्ध भाई और इसी क्रम में दादी, माता, काकी, भाभी और नाना–नानी, फुआ–फूफा आदि सभी द्वारा भी उक्त रिश्तों सम्बन्धी लड़कियों के पैर छुए जाते हैं। यह चलन बुंदेलखण्ड की विशेषता है। यह चलन देश के अन्य भागों में नहीं है। बंगाल, जहाँ शक्तिपूजा की प्रधानता है। छोटी–छोटी कन्याओं को आदरवाची सम्बोधन के लिये उनके नाम के आगे माँ, शब्द जोड़कर पुकारा जाता है, वहाँ भी बहिन–बेटियों के पैर छूने का चलन नहीं है।

बुंदेलखण्ड में कन्या किसी भी जाति की हो, उसके पैर छू जाने को पाप माना जाता है। किसी भी जाति की कन्या के विवाह में तन, मन, धन जो भी संभव हो, से सहायता करना पुण्य कार्य माना जाता है।

पुत्रियों, अपने से छोटी बहिनों की ससुराल में भोजन न करने की प्रथा तो आज भी है। यद्यपि आज वह खण्डित हो रही है तो भी उसका बहुलांश में अस्तित्व है। एक जमाना था जब लोग उस गाँव का पानी भी नहीं पीते थे जहाँ पुत्री व्याही हो।

इसके अतिरिक्त बुंदेलखण्ड में सुप्रसिद्ध शक्तिपीठों की स्थिति से भी इस बात के संकेत मिलते हैं। बुंदेलखंड में कुछ प्राचीन शक्तिपीठों का परिचय इस प्रकार है — विन्ध्यवासिनी (मिर्जापुर, बल्देवगढ़ जि. टीकमगढ़), शारदा (मैहर, जबलपुर, मदनमहल के पीछे), गिद्धवासिनी (गढ़कुण्डार जि. टीकमगढ़), सिंहवाहिनी (बाँदा), बाघराजन (सागर, टीकमगढ़), जागेश्वरी देवी (चन्देरी जिला गुना), रतनगढ़ की माता (जि. दतिया), अबार की माता (जि. छतरपुर), रानगिर (जिला सागर), पीताम्बरा पीठ (दतिया), इस पीठ की स्थापना बीसवीं शताब्दी के लगभग मध्य में हुई है। यह तांत्रिक शक्तिपीठ है। इसकी स्थापना एक विलक्षण एवं विचक्षण सिद्ध सन्यासी द्वारा की गई है। इन उदाहरणों से सिद्ध है कि बुंदेलखंड की लोक चेतना में शक्ति–श्रद्धा गहरे तक समायी है।

इसके अतिरिक्त बुंदेली समाज के अनेक कार्यकलापों में स्वस्तियन की एक पुरातन भावना के दर्शन होते हैं। देखने में ये बहुत छोटी लगती हैं लेकिन वे बुंदेली लोकदर्शन का प्राचीनतम इतिहास उजागर करती हैं। यथा —

व्रत त्यौहारों के पूजन में कहीं जाने वाली कौनिया (कहानी)

के अंत में प्रणाम करते हुए कहा जाता है कि "हे महादे बब्बा, हे गौरा रानी, हे मइया, हे लक्ष्मी मइया, हे गनेस जू (कथा के प्रसंगानुसार देवी देवता को सम्बोधित कर कहा जाता है (एक और विशेष बात है – ये देवी देवता तो पौराणिक होते हैं किन्तु उनके चरित्र लौकिक होते हैं। जैसे अमुक के दिन फेरे ऐसई सबके दिन फेरियो, जैसी कृपा अमुक पै करी ऊसई सब पै करियो। जहाँ ध्यान देने की बात है कि सम्बन्धी देवी–देवता से दिन फेरने या कृपा करने की कामना सबके लिए की जाती है, केवल अपने लिए नहीं।

संध्या समय दिया (दीपक) उजयारबौ कहा जाता है, बारना या जलाना नहीं। पँजारबौ या मिलकाबौ भी कहीं–कहीं कहा जाता है, उसमें भी प्रकाश प्रवर्द्धन की भावना है। दीपक उजयारने के बाद ज्योति स्वरूप भगवान को प्रणाम करते समय हे संजा माई सबकौ भली करियो, संगै हमाऔ भलौ करियो कहा जाता है।

दीपक बुझाने के लिए भी ठण्डा करना, शान्त करना या बड़ाना कहा जाता है। इसी प्रकार प्रातःकाल दातून, कुल्ला–मुखारी के बाद भी कहा जाता है – हे सूर्यनारायण स्वामी सबखों रोग दोख (दोष) सें दूर राखियो। सूर्य जीवन और आरोग्य के देवता हैं। इसलिए उनसे सबके लिए, केवल अपने लिए नहीं, आरोग्य की कामना की जाती है।

जब कोई व्यक्ति या समूह तीर्थ यात्रा को जाता है तो उसे पुष्प मालाएं पहना कर गाजे–बाजे के साथ सम्मानपूर्वक विदा किया जाता है। उसके शुभ संकल्प की पूर्ति में सहयोग या उसके पुण्य में, किंचित ही सही, भागीदार बनने के लिए अपनी श्रद्धा और सामर्थ्य के अनुसार उसको नकद राशि भी भेंट की जाती है।

इसी तरह जब कोई फूल सिराने (अस्थि विसर्जन) के लिए प्रयागराज जाता है तो लोग अस्थियों पर कुछ द्रव्य चढ़ाते हैं। इससे मृतक के प्रति सम्मान और फूल लेकर जाने वाले को प्रयागराज में पुण्यतोया गंगा मैया के दर्शन, परसन, मज्जन और उसके पवित्र जल के पान से जो पुण्य मिलेगा उसमें किंचित भागीदारी का भाव भी हो सकता है।

बुंदेलखंड के लोकदर्शन की स्वस्तिमयी विशिष्टता के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत कर बुंदेली लोक की परा तथा अपरा सम्बन्धी भावधारा से प्रभावित लोक परम्परा का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया गया है। उसका अनेक सामाजिक कार्यकलापों में अनुभव किया जा सकता है।

जैसा पहले कहा जा चुका है कि अनेक दबाबों के कारण लोकदर्शन में बदलाव हो सकता है, और उससे लोक संस्कृति भी प्रभावित हो सकती है।

वर्तमान समय में देवी आस्था जो नारी सम्मान के रूप में प्रतिम्बित होती थी वह लगभग समाप्त हो रही है। आज नारी सर्वाधिक प्रताड़ित हो रही है। उसका अपहरण होता है उसके साथ बलात्कार होता है। उसी को दहेज की बलिवेदी पर चढ़ाया जाता है।

व्यक्तिवादी आर्थिक सोच और शीघ्र बड़े आदमी (धनवान) बन जाने की आपाधापी में समस्त नैतिक मूल्यों का क्षरण हो रहा है। सामाजिक संबंध एवं समन्वय के सूत्र ढीले पड़ रहे हैं परिणामस्वरूप चोरी, डकैती, लूट, अपहरण, हत्या आदि समाज को अशान्त और भयग्रस्त बनाये रखने के मुख्य कारण बन गये हैं। पहले अन्न को देव तुल्य मान्यता थी, अब शत्रुता निभाने के लिए खलिहानों में रखी फसलों को आग लगाना एक सामान्य तरीका हो गया है। गाँव–गाँव में फैलती इस विषबेल के बीच से लेकर खाद–पानी की पूर्ति तथा कथित पंचायती राज्य के चुनावों से हो रही इससे सामाजिक समन्वय और दायित्व बोध छिन्न भिन्न हो जाता है। शेष रहा है अहंकार शत्रुता और गुटबाजी।

सामाजिक स्वस्ति अर्थात् लोककल्याण और लोकमंगल की भावना निज कल्याण में सिमट गयी है। संस्कार खोखले हो गये हैं। इस भयावह स्थिति में त्राण पाने का एक ही उपाय है – "हम सुधरेंगे जग सुधरेगा।"

– पुरानी नजाई, टीकमगढ़ म.प्र. ☐

उन गाँवन की गलियाँ

– चौ. शीलचन्द्र जैन 'शील'

देखीं कितउँ कभउँ काँ तुमनें, उन गाँउन कीं गलियाँ।
भलियन सें नैनन की ललियाँ, जाँ करती रंगरलियाँ।।
बड़े सकारे से किसान, अपने खेतन खों डगरें।
बँदरा, बेंदा दोऊ बैलन, की डोरन खों पकरें।।
चले जात पैरायें मोंरी, बौरेला गलगलियाँ।। देखी....।।
तिरियाँ उठीं सकारें कर रईं, घर कौ टाल टकोरौ।
जुटीं झारवे खों सब अपनों–अपनों फरकौ दोरौ।
चलीं समेटन लतरी गोवर, सारन खों लै डलियां। देखी....।।
माते जू के बड़े कुवा खों जा रईं हैं इठलातीं।
खेप धरें गागर की कम्मर चउवर हो हो जातीं।
छनक मनइयाँ धरें गगरियाँ, घुंघटन नचें उगरियाँ। देखी..।।
जिन गलियन गोपाल खेलरये, दै दै कें किलकारी।
जिनके गालन पै गउवन कौ, दूद दयें छवि न्यारी।।
रामधुवाई चुपर कें खारये, फुलकन पै अमकलियाँ। देखी....।।
मुखिया जू की वाखर के सामें दिख रइ बिरवाई।
ओई जगा पै बड़ी नीम के नेंचें बनीं अथाई।।
पाँजर रजउ पूजवे दुर्गा, जा रईं गाउत कजलियाँ।देखी..।।
खेत लगे घर की छानी सें, दिखा रये हरयारे।
सैरन में दयें बास, करोंदन, के वे विरवा वारे।।
परकोटन में लटकें मुनगा, अमलतास की फलियाँ। देखी....।।
सर्कस और सिनेमा नौटंकी में वे का जानें।
मन भरवे खों राई रावला, इतनइं उनखों चानें।
कोउ कोउ वांदें ढुलक नगरिया, कोउ गड्ड अर बिलियाँ। देखी...।।
शहरों सें तौ हमखों साँचउं, ऐंसई गाँव पुसानें।
रामइ राम धुवाइ 'शील' खों उतईं जनम भर रानें।।
ताजे पानी, हवा, दूद घी, की जाँ बउतीं नलियाँ।। देखी....।।

– बस स्टैण्ड, धुवारा, छतरपुर ☐

चन्देरी का पुरावैभव

— डॉ. के.पी. त्रिपाठी

चन्देरी नगर बुंदेलखंड का प्राचीन पौराणिक कालीन नगर रहा है, जो बुंदेलखण्ड के दक्षिणी पश्चिमी भाग में २५.५ उत्तरी अक्षांश एवं ७८.१२ पूर्वी देशान्तर पर स्थित है। यह नगर विन्ध्य पर्वत के शैल शिखरों, उत्तुंग मनोरम पहाड़ियों के मध्य में स्थित है। इस नगर का वर्णन मत्स्यपुराण एवं श्रीमद् भगवत् पुराण में मिलता है। चंदेरी का प्राचीन नाम चंद्रपुरी था जिसको अपभ्रंश में चंदेरी कहा जाने लगा है। सुरम्यधाटियों, वादियों एवं पहाड़–पहाड़ियों के मध्य चन्द्राकार बसी यह चंदेरी नगरी बड़ी आकर्षक मनमोहक एवं अप्सरा लोक सी लगती है।

पौराणिक युग में चंद्रपुरी (चंदेरी) का शासक शिशुपाल था जो चेदिवंश का था तथा मथुरा के श्री कृष्ण का मौसेरा भाई था, परन्तु श्री कृष्ण की यशकीर्ति प्रसार से वह उनका शत्रु भी बन गया था। एक बार इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों ने श्रीकृष्ण के सम्मान का आयोजन किया, जिसका विरोध शिशुपाल ने किया तथा सामान्य जन मानते हुये उन्हें अपमानित करने के निमित्त अपने चेदि राज्य बुंदेलखंड में मुकुट आकार की छब्बेदार जूतियाँ बनवा कर लोगों को पहिनने को निर्देशित किया था। शिशुपाल नहीं चाहता था कि कृष्ण को राजाओं के समान मुकुट पहना कर सम्मानित किया जाय। इस बैर विरोध के चलते श्री कृष्ण ने युद्ध में भाई शिशुपाल का सुदर्शन चक्र से सिर काट कर मार डाला था। वैसे मथुरा एवं चन्द्रपुरी दोनों पौराणिक युगीन अस्तित्व में आये नगर रहे है। मथुरा में कालिन्दी नदी है तो चन्द्रपुरी में बेत्रवती और उर्बशी (ओर) नदियाँ है।

यदि कोई कहीं इन्द्रलोक है और वहां इन्द्र की अप्सरा उर्बशी रहा करती थी तो वह चन्द्रपुरी ही थी। जिसके पश्चिमी पार्श्व में उर्बशी के नाम पर उर्बशी नदी प्रवाहित थी, है और रहेगी। उर्बशी इसी उर्बशी नदी में स्नान मज्जन किया करती थी। बेत्रवती दक्षिणी पूर्वी भाग से प्रभावित है जिसे बरुण देव की पत्नी माना जाता था। इस आधार पर क्या चन्द्रपुरी ही देवपुरी–इन्द्रपुरी मानी जा सकती है? अबंतिका, नालंदा, मगध राजगिरि और तक्षशिला को जाने वाले मार्ग चन्द्रपुरी से ही निकलते थे। चन्द्रपुरी राज्य के धौर्रा की गुफाओं में, जराशंध के युद्ध के समय भागकर, छिपजाने के कारण ही श्रीकृष्ण रणछोड़ कृष्ण कहलाने लगे थे। जराशंध और श्रीकृष्ण का महासमर चन्द्रपुरी के मैदान में ही हुआ था। पुराणयुगीन वैभवपूर्ण चन्द्रपुरी तो कालचक्र के प्रभाव–बदलाव से जमींदोज होकर भग्नावशेषों खंडहरों एवं बिन घंटा नगाड़े वाले सिंहासन खड़े दिवाले ही देखे जाते है। ऐतिहासिक तौर पर आज चन्द्रपुरी को बूढ़ी चन्देरी कहा जाता है जो वर्तमान चन्देरी से कुछ दूरी पर पिछोर मार्ग के बायीं ओर की पहाड़ियों एवं उर्वशी (ओर) नदी परिक्षेत्र में स्थित थी।

चंदैरी कभी यहाँ थी तो कभी वहाँ बसो। आज जो खंडहर दिखते है, वह चंदेलों, सल्तनतकालीन सुल्तानों एवं बुंदेला राजाओं की स्थापत्य कला, संस्कृति और जनहितकारी वैभवपूर्ण कार्यों की स्मृति दिलाते हैं। जो पुरावशेष दर्शनीय उपलब्ध है, वह प्रतिहारों चंदेलों सल्तनकालीन सुल्तानों, मांडू के मेहमूद खिलजी के दीवान मेदनीराय और १५२८ ई. से १६४२ ई. तक मुगल बादशाहों के सूबेदारों १६४२ ई. से १८११ तक बुंदेलों, १८११ ई. से १८४२ तक सिंधिया, १८४२ ई. से १८७० तक अंग्रेजों एवं १८६० ई. से १९४७ ई. तक सिंधिया के शासन काल के हैं।

आयने अकबरी में उल्लेख है कि चंदेरी एक प्रमुख नगर है जहाँ का व्यापारिक कारोबार बढ़ा–चढ़ा था। दूर–दूर से व्यापारी यहाँ माल खरीदने एवं बेचने आते थे। यहाँ व्यापारियों के ठहरने के लिये ३६० सराय थी। ३६४ बाजार थे। १२०० मस्जिदें और १२०० बाबड़ियाँ लोगों एवं चन्देरी वासियों की जलापूर्ति के लिये थी। चंदेरी यद्यपि शुद्ध रूप से बुंदेलखंड में है, परन्तु सुन्दर सुरक्षित और मनोरम होने से मालवा की राजधानी भी रही थी। मध्यकाल में चन्देरी वस्त्र उद्योग का केन्द्र था। जहाँ सामान्य जन के पहिनने वाले वस्त्रों से लेकर राजा रानियों, बेगमों नवाबों और धनाड्य रहीसों के सोने चांदी के तारों की कढ़ाई युक्त मँहगे वस्त्रों की बुनाई होती थी। वस्त्र उद्योग नष्ट सा होने पर भी वर्तमान में आज चन्देरी में ४००० (चार हजार) हथ करघे चल रहे है।

चंदेरी नगर रेल मार्ग पर नहीं है। यह रेलवे स्टेशन ललितपुर से ४० किलोमीटर पश्चिम में है। गुना रेलवे स्टेशन से ११५ किलोमीटर है। ग्वालियर से १३० कि.मी., झांसी से ११० किलोमीटर एवं ओरछा से १४३ किलोमीटर की दूरी पर है। चन्द्रपुरी पौराणिक नगरी एवं वर्तमान चंदेरी नगर ५० किलोमीटर के घेरे में युग–युग में बनती रही, बिगड़ती रही, स्थान बदल–बदल कर नये रूप में बसती रही है। पर्यटकों, घुमक्कड़ों, सैलानियों एवं प्रकृति सौन्दर्य प्रेमियों को चंदेरी पहुँचकर निम्न प्रमुख ऐतिहासिक स्थल देखना चाहिये –

१. **कीर्ति दुर्ग –** चंदेरी का कीर्ति दुर्ग एक विशाल पहाड़ पर निर्मित है। पहाड़ पूर्व दिशा बेतवा (राजघाट) के पास से दक्षिण पूर्व को मुड़ता है। इसी मोड़ की पूर्वी तलहटी की ओर कीर्ति दुर्ग निर्मित है इसका निर्माण १०वीं, ११वीं शदी में महाराजा कीर्तिपाल द्वारा कराया गया था। किला परकोटा लगभग ५ किलोमीटर लम्बा है परकोटा के अन्दर सुल्तानों एवं बुंदेला के बनवाये भवन महल है। इनमें खंडा महल, हवा महल, गिलउआ तालाब, खिलजी मस्जिद, जौहर महल एवं हजरत अब्दुल रहमान नार नूली बाबा का मकबरा विशेष दर्शनीय स्थापत्य हैं। यह वही किला है जिसमें मेदनी राय रहता था। बाबर ने १५२८ ई. में कीर्तिगढ़ पर आक्रमण कर मेदनी राय को परास्त कर चंदेरी को अपने अधिकार में ले लिया था। मेदनी राय की रानियों ने जौहर महल में अपने को बचाते हुए जौहर कर लिया था। जौहर महल (किला दरवाजा) के पास बुंदेलों ने किले की रक्षा के लिये जी तोड़ संघर्ष किया था,

और प्राण न्यौछावर कर दिये थे, जिनका खून ऊपर से नीचे किला दरवाजा में से बह निकला था। इसीलिये उस दरबाजा को खूनी दरवाजा कहा जाने लगा था। कीर्ति गढ़ दुर्ग को देखने के लिये लगभग २५० फुट ऊँचा पहाड़ चढ़ना होता है। खूनी दरवाजा से ही कीर्ति दुर्ग (कीर्तिगढ़) पर जाया जाता है।

२. **जागेश्वरी देवी** – जागेश्वरी देवी मंदिर समूचे बुंदेलखंड क्षेत्र में एक शक्तिपीठ है जो किला कीर्तिगढ़ की पूर्वी तलहटी में एक गुफा मंदिर में है। यहाँ का दृश्य बड़ा मनोरम है। निरंतर झर झर झिरता झरना मनमोहक है। मंदिर तक पहुँचने के लिये समतल भूमि से मंदिर तक आने जाने के लिये पक्की सीढ़ियाँ बनी हुयी है। यह सीढ़ी मार्ग जनता के लिये था। जबकि राजपरिवार किला से नीचे उतर कर जागेश्वरी देवी के दर्शनों को आते जाते थे। यह जागेश्वरी देवी मंदिर भी प्रतिहार राजा कीर्तिपाल के समय ग्यारहवीं शदी का है यहाँ एक विशाल चट्टान में जागेश्वरी देवी का मुख ही है, पूर्ण विग्रह नहीं है। ऐसी किवंदति है कि देवी जी की मुखरूपी प्रतिमा स्वतःचट्टान में प्रकट हुयी थी। यहाँ देवी जी के दर्शनों को दूर दूर से दर्शनार्थी आते हैं।

३. **दिल्ली दरवाजा** – यह दिल्ली दरवाजा उत्तर दिशा को दिल्ली की ओर नगर परकोटा में दिलावर खाँ की सूबेदारी के समय बना था। दिल्ली की दिशा की ओर होने से इसे दिल्ली दरवाजा कहा गया है।

४. **सिंहपुर महल** – सिंहपुर महल चंदेरी के बुन्देला राजा देवीसिंह ने सन् १६५६ ई. में विन्ध्य शैल शिखरों के मध्य बनवाया था। इसी महल के समीप सिंहपुर सुन्दर सरोवर है। यह महल बुन्देला वास्तुशिल्प का प्रादर्श है महल तीन खंड का है। मध्य में वर्गाकार चौक है।

वर्तमान में इस सिंहपुर महल को संग्रहालय बना दिया गया है। जिससे क्षेत्र की पौराणिक युग से मध्यकाल तक कि यत्र तत्र बिखरी पड़ी मूर्तियों को संग्रहीत किया गया है।

५. **बादल महल दरवाजा** – यह दरवाजा नगर के दक्षिणी भाग में जामा मस्जिद के समीप नगर कोट में बना हुआ है। यहीं एक महल था जिसे मेहमान महल कहा जाता था, परन्तु महल अब नहीं है। यह दरवाजा गगन चुम्बी विशाल दो मीनारों को जोड़ते हुये बनाया गया है। इसका वास्तु अद्भुत है। ऐसा भी कहा जाता है कि इस दरवाजे पर बैठकर संगीतकार वाद्य वादक बैठ कर शाही मेहमानों का संगीत एवं वाद्य युक्त ढंग से स्वागत किया करते थे। कालांतर में बादक महल से बादल महल कहा जाने लगा।

चंदेरी नगर में प्रवेश के लिये बादल महल दरवाजा, दिल्ली दरवाजा, ढोलिया दरवाजा, कटी घाटी दरवाजा, खूनी दरवाजा, पिछोर दरवाजा, जोहरी दरवाजा, सराय दरवाजा, खिड़की दरवाजा, पाखान (पखन) दरवाजा तो अभी भी दृष्टव्य है और फूलबाग दरवाजा, मैदान गली दरवाजा, सिंहपुर महल दरवाजा, रेतवाग दरवाजा एवं विनातीत का दरवाजा विलुप्त हो गये हैं। सबसे महत्वपूर्ण दर्शनीय दरवाजा कटी घाटी दरवाजा है जो बुंदेलखंड एवं मालवा को जोड़ता है। यह दरवाजा २०० फीट लम्बा एवं ८० फुट ऊँचा पहाड़ काटकर एक चट्टान में बना हुआ है। यह दरवाजा मालवा के सूबेदार, ग्यासुद्दीन खिलजी के स्वागत में जिम्मन खाँ ने सन् १४९५ ई. में बनवाया था।

६. **बेहजत खाँ तालाब, बाबर कटान एवं रामनगर महल** – सन् १५१० ई. में चंदेरी के सूबेदार बेहजदखाँ ने अपने नाम पर एक तालाब चंदैरी के खंडार गिरि पहाड़ के दक्षिणी पार्श्व में बनवाया था। इसी सरोबर के पास रामनगर सड़क पर शिकारगाह के रूप में सुन्दर महल बनवाया था।

सन् १५२८ ई. में मुगल सम्राट बाबर ने मेदनीराय से बदला लेने के लिये चन्दैरी पर आक्रमण किया था। चंदैरी नगर, किले तक सेना तोपखाना पहुँचना कठिन था, क्योंकि चन्दैरी से ४ किलोमीटर की दूरी पर दक्षिणी पार्श्व को प्राकृतिक पहाड़ खंडार गिरि परकोटा के रूप में आड़ा खड़ा था। २७–१–१५२८ को बाबर ने बेहजद तालाब के पास पड़ाव डालकर एक ही रात में पहाड़ को कटवा कर कीर्ति दुर्ग पर आक्रमण कर दिया था। मेदनी राय पराजित हुआ, रानियों ने अपने सतीत्व की रक्षा हेतु जौहर महल में जौहर कर लिया था।

७. **कुश्क महल** – यह कुश्क महल (कस्रे हफ्त मंजिल) चन्दैरी से ४ किलोमीटर की दूरी पर ईसागढ़ रोड पर है। यह महल ११६ फुट के वर्गाकार हैं प्रत्येक खंड १५ फीट ऊँचा, ४ खंडी है। दीवालों की चौड़ाई १० फुट है। हर मंजिल में छः दरवाजे हैं। दरवाजे बाहर के २६ फुट चौड़े हैं एवं ४५ फुट ऊँचे हैं। कमरे वर्गाकार हैं। ऊपर चढ़ने के लिये दो ओर से सीढ़ियाँ हैं। यह कुश्क महल एक अजूबा है। इस महल के निर्माण का पत्थर जिन स्थलों से निकाल कर काम में लाया गया था, वहां दो बड़ी झीलें–सुल्तानियाँ तालाब एवं मलूखाँ तालाब नाम से जाने जाते हैं।

इस अजूबा कुश्क महल का निर्माण मालवा के सूबेदार मेहमूद शाह खिलजी ने सन् १४४५ ई. में जौनपुर विजय की यादगार में कराया था।

चंदैरी में समय समय पर पीने के पानी एवं निस्तारी पानी की मुकाम्मिल कराई जाती रही है। दो नदियाँ वेत्रवती एवं उर्वसी तो इसके आजू बाजू प्रवाहित रही ही है। कृत्रिम रूप से भी जल प्रबंधन कार्य सल्तनत काल, मुगलकाल एवं बुन्देला शासन काल में भारी मात्रा में किये गये थे। यहाँ के तालाबों में बेहाजात तालाब, लोहरा तालाब, परशुराम तालाब, सुल्तानियाँ तालाब, नयातालाब, हौज खास तालाब सिंहपुर तालाब, कीर्तिसागर तालाब, ताकबंदी तालाब गिलउआ तालाब, मलूखां तालाब, हौज कुचलहा हौज चिमनवाँ प्रमुख तालाब हैं।

प्राचीन कुंआ, बावड़ियों में बत्तीस बावड़ी चंदाई बावड़ी, लाल बावड़ी, राजा की बावड़ी, मूँसा की बावड़ी, चकला बांवड़ी, छोटी बत्तीसी बावडी एवं फूल बाग बावड़ी प्रसिद्ध है, प्राचीन है। चंदैरी के चारों ओर १०वीं, ११वीं शदी के जैन मंदिर तीर्थ क्षेत्र पुण्य रूप में है। किला पहाड़ी पर नगर से संलग्न भगवान बेंकटेश्वर का मंदिर दर्शनीय है चंदैरी बुंदेलखंड का पौराणिक पुरातन स्थान है। बुंदेलखंड एवं मालवा के मध्य का गेट हैं ५० कि. मी. घेरे में फैली बनी–बिगड़ी बनी। महत्वपूर्ण व्यापारिक नगरी थी। वर्तमान में वस्त्र उद्योग के चलते ही जुगजुगा रही है।

– भारत भवन, पुरानी टेहरी, टीकमगढ़ □

करण भट्ट और उनका रस कल्लोल

– डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया

रीतिकालीन काव्य प्रमुखतः श्रृंगार प्रधान काव्य है। रीतिकालीन कवियों के काव्य को आज श्रृंगार प्रधानता के कारण नैतिकतावादी हेय दृष्टि से देखते एवं नाना प्रकार से आलोचना करते हैं, किन्तु जैसा भाव सौंदर्य, कल्पना का मौलिक संसार और शास्त्रीय ग्रंथों की सर्जना के साथ ही भाषा–शैली का जैसा अनूठा प्रयोग रीतिकालीन कवियों ने किया वैसा हिन्दी साहित्येतिहास के अन्य कालखंडों में बहुत कम देखने को मिलता है। श्रृंगार को रसराज यों ही नहीं कहा गया। उसमें व्यक्ति को प्राणरस प्रदान करने की अद्‌भुत क्षमता है। संभवतः इसीलिए कहा गया है कि वाणी का सार तो श्रृंगार ही है – "वाणी को सार बखान्यों सिंगार।" इस सिंगार की विविध मनोदशाओं–स्थितियों का तत्कालीन कवियों ने खुलकर बड़ी ही सूक्ष्मता से चित्रण किया है। भाव, भाषा, शिल्प, कल्पना और शास्त्र की दृष्टि से वह साहित्य हिन्दी की अमूल्य निधि है। तत्कालीन कवियों का सही मूल्यांकन उस युग की स्थितियों–परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में करने पर ही हो सकता है। आज के बदलते परिवेश में मूल्यांकन करने पर निराशा होना अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता।

उस युग के राजा–रजवाड़ों से जुड़े राज्याश्रित अनेक कवियों का पूरा परिचय आज भी हिन्दी जगत को नहीं है। अनेक अज्ञात, अल्पज्ञात कवियों की कृतियां आज भी सामने नहीं आ पाई। यह आश्चर्य की बात है कि आज से सौ – डेढ़ सौ वर्ष पूर्व जितनी रीतिकालीन काव्य कृतियां छपकर सामने आयी उतनी उसके बाद देखने को नहीं मिली। जबकि आज प्रकाशन के साधनों की भरमार हैं नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, भारत जीवन प्रेस, काशी तथा श्री वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई का योगदान इस दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिन्होंने सैकड़ों ग्रंथों का प्रकाशन किया और लोगों को इस दिशा में प्रेरित भी किया। बुंदेलखंड के अनेक कवि आज भी बड़ी संख्या में अन पहचाने हैं। करण भट्ट उन्हीं में से एक हैं जिनका उल्लेख तो हिन्दी साहित्येतिहास ग्रंथों में मिलता है पर उनका पूरा जीवन परिचय आज भी अज्ञात है, वे अनेक वर्षों तक पन्ना राज्य के राज्याश्रित कवि रहे हैं।

भला हो शिवसिंह सेंगर का जिन्होंने सर्वप्रथम अपने ग्रंथ शिवसिंह सरोज में करण कवि को स्थान देकर संक्षिप्त परिचय दिया, जिसका प्रथम प्रकाशन सन् १८७८ ई. में हुआ था।[१] भ्रांतिवश उन्होंने यद्यपि करण भट्ट को आगे दूसरा कवि करण ब्राह्मण मानकर अलग से उल्लेख किया है[२], किन्तु वस्तुतः ये दोनों एक ही हैं। सेंगर जी ने उनका परिचय देते हुए कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया है – १. ये पन्ना निवासी थे, २. इन्होंने साहित्य चंद्रिका नाम से बिहारी सतसई की टीका लिखी थी। ३. यह टीका उन्होंने पन्ना नरेश हृदय साहि की आज्ञा से लिखी थी जो संवत् १७८८ से संवत् १७९६ वि. तक पन्ना के राजा रहे। ४. बाद में ये हृदयसाहि के पुत्र सभा सिंह के आश्रित रहे जिनका राज्यकाल सं. १७९६ से सं. १८०९ वि. तक रहा। बाद में सभासिंह के पुत्र हिन्दूपति सं. १८१३ से सं. १८३४ वि. तक राजा हुए। ५. वे सं. १७९४ कवि की रचना का प्रारंभिक काल और सं. १८१७ वि. अंतिम काल मानते हैं। ६. यह भी करण भट्ट में सं. १७९४ वि. बिहारी सतसई की टीका लिखी। ७. इनके पिता का नाम वंशीधर था। ८. इन्होंने इनकी दूसरी कृति रस कल्लोल का भी उल्लेख किया है। ९. इनकी समस्यापूर्ति 'बदन कंपायो दाबि रसना दसन सों', से प्रसन्न होकर सभा सिंह ने इनका पर्याप्त सम्मान किया।[३] करन भट्ट को वंशीधरात्मज बताते हुए उन्होंने इनके सात दोहे और पांच कवित्त उदाहरणार्थ उघृत किये हैं।[४]

सरोज सर्वेक्षणकार डॉ. किशोरी लाल गुप्त ने भी इस बात की पुष्टि की है कि करन भट्ट और कर्न ब्राह्मण बुंदेलखंडी दोनों एक हैं साथ ही शिवसिंह सेंगर की भ्रांतियों का भी प्रमाणों के साथ निराकरण किया है।[५] मिश्र बंधु विनोद में भी इनकी उपर्युक्त दो कृतियों का उल्लेख करते हुए जन्मकाल १७९४ और कविताकाल १८२४ माना है तथा करन भट्ट को महाराजा सभा सिंह, अमानसिंह व हिन्दूपति के आश्रित बताया गया है।[६] हिन्दी के साहित्येतिहास ग्रंथों में बाद में प्रायः वही तथ्य दोहराये गए हैं जो शिवसिंह सरोज में हैं ऐसा लगता है कि बाद के इतिहासकारों ने करण भट्ट संबंधी जानकारी एकत्र करने का प्रयास नहीं किया और कुछ ने तो उनकी कृतियों तक को नहीं पलटा। यदि ऐसा न होता तो कई नयी भ्रांतियों को जन्म नहीं मिलता। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने तो अधिकांश बातें सरोजकार की ही ली हैं, पर उन्होंने करण भट्ट को षटकुल काव्यकुलों के अन्तर्गत पांडेय बताया है जो पन्ना नरेश महाराज हिन्दूपत की सभा में रहते थे।[७] उन्होंने इनका रचनाकाल संवत् १८६० माना है। शुक्ल जी के मतानुसार करण भट्ट ने साहित्य रस और रस कल्लोल नामक ग्रंथ लिखे हैं। साहित्य रस को उन्होंने लक्षणा, व्यंजना, ध्वनिभेद, रसभेद गुण–दोष आदि का काव्य बताया है। उनके मतानुसार यह उत्तम रीतिग्रंथ है तथा इनकी कविता सरस और मनोहर है उन्होंनें 'कंटकित होत गात विपिन समाज देखि.... एरे घन बैरी, अब काहे गरजतु है' छंद का उदाहरण भी दिया है।[८] सरोज सर्वेक्षणकार के मतानुसार पंडित रामचन्द्र शुक्ल जिस दोहे के आधार पर करण भट्ट को काव्यकुब्ज ब्राह्मण मानते हैं, वह रस कल्लोल में दिया गया है जो इस प्रकार है–

षटकुल पांडे पहितिया भारद्वाजी बंस।
गुननिधि पाइ निहाल के बन्दौ जगत प्रसंस।।

यह दोहा करण भट्ट के गुरु निहाल से संबंधित है। डॉ. गुप्त के अनुसार निहाल करण भट्ट के गुरु थे उन्हीं के चरणों की

वन्दना की गई है। इन्हीं निहाल गुरु के लिए षटकुल पांडे पहितिया भारद्वाजी वंश कहा गया है। जब कि करण भट्ट थे।[९] रीतिकाल के अधिकारी विद्वान डॉ. रामानंद शर्मा ने अपनी सम्पादित पुस्तक करण भट्ट कृत 'रस कल्लोल' में इस बारे में विस्तार से प्रकाश डालते हुए लिखा है कि 'सर्वप्रथम मिश्रबंधुओं ने और उन्हीं के अनुकरण पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और डॉ. भागीरथ मिश्र ने इन्हें भारद्वाज वंशीय पांडेय षटकुल कान्यकुब्ज ब्राह्मण माना है। इन विद्वानों का यह उल्लेख 'रस कल्लोल' के दोहे के आधार पर है। लेकिन इस दोहे में तो वे (करण भट्ट) अपने साहित्यिक गुरु निहाल की चरण–वन्दना कर रहे हैं। फलतः भारद्वाज वंशीय षटकुल–कान्यकुब्ज ब्राह्मण निहाल थे, न कि करण भट्ट। कवि के तो नाम के पीछे ही भट्टलिखा है, फिर वे पांडेय कैसे हो सकते हैं?'[१०]

करण भट्ट के संबंध दूसरी बड़ी भ्रांति उनके जन्म और मृत्युकाल को लेकर है। मिश्र बंधुओं ने जन्मकाल संवत १७९४ माना है[११] जबकि रामचन्द्र शुक्ल संवत् १८६०[१२] और डॉ. भागीरथ मिश्र संवत् १८५६[१३] मानते हैं। 'बुंदेल वैभव' के रचयिता श्री गौरीशंकर द्विवेदी भी इनसे सहमत हैं।[१४] करण कवि ने साहित्य चंद्रिका नाम से बिहारी सतसई की जो टीका लिखी थी उसका रचनाकाल सं. १७९४ हैं तत्सम्बंधी दोहा इस प्रकार है –

सुमिरत नाहिं कवि करन कर, सह साहित्य सहेत।
सुकवि बिहारी सतसई विरचित तिलक समेत।
वेद खंड गिरि चन्द्रगनि भाद्र पंचमी कृष्ण।
गुरुवासर टीका करन, पूरयो ग्रंी कृतष्ण।

वेद–४, खंड–९, गिरि–७, चन्द्र–१ = सं. १७९४ भाद्र कृष्ण पंचमी गुरुवार को यह टीका पूरी हुई। डॉ. रामानंद शर्मा के अनुसार "इनकी प्रथम कृति साहित्य चंद्रिका का रचनाकाल सं. १७९४ है और संवत् १८३४ के बाद इनके जीवन अथवा रचना का कोई प्रमाण आज तक उपलब्ध नहीं है। यदि ये इसके पश्चात् जीवित रहते तो हिन्दूपति सिंह के तीनों पुत्रों सरमेद सिंह, अनिरुद्ध सिंह और धौंकल सिंह का उल्लेख अवश्य करते। 'रस कल्लोल' के छत्रसाल बुंदेला के निधन के अतिरिक्त उनके पुत्र हृदय साहि (शासनकाल संवत् १७८८–९६) उनके पुत्र सभा साहि (संवत् १७९६–१८०९) तथा उनके पुत्र अमानसिंह (संवत् १८०९–१३) तथा हिन्दूपति सिंह (संवत् १८१३–३४) तक का ही उल्लेख है। इसका आशय यही है कि एक तो यह रचना 'रसकल्लोल' संवत् १८३४ से पूर्ववर्ती है या तो करण भट्ट इसके बाद जीवित नहीं रहे अथवा अन्यत्र चले गये। परलोक गमन भी असंभव नहीं। फलतः उनका रचनाकाल संवत् १७९४ से १८३४ तक ४० साल का माना जा सकता है।'[१५] डॉ. शर्मा का अनुमान है कि कवि करण भट्ट यदि बिहारी सतसई की टीका करते समय ३० वर्ष के रहे होंगे तो उनका जन्मकाल संवत् १७६५ के आसपास और मृत्युकाल संवत् १८३४ के लगभग माना जा सकता है।

करन कवि का उल्लेख कृतियों में चार रूपों में मिलता है – करन, करण, कर्ण तथा कर्न। मुख–सुख और रचना–प्रयोग के कारण भी ऐसा हो जाता है। वैसे उनका सही नामकरण ही था। ये जाति के भट्ट ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम वंशीधर था। इसका उल्लेख उन्होंने स्वयं किया है। रस कल्लोल के अंत में वे लिखते है – 'इति श्री वंशीधरात्मज कवि करण भट्ट विरचिते रस कल्लोले रस ध्वनि व्यंमादि निरूपणं नाम सम्पूर्णम्।।'[१६] इनका जन्मस्थान प्रामाणिक रूप से तो अज्ञात है, वैसे मिश्रबंधुओं ने कन्नौज, असनी या मेगासों अनुमानित किया है। वे लिखते हैं "यह महाशय पांडेय थे, अतः इनका निवास स्थान कन्नौज असनी या मेगासों का होना संभव है, क्योंकि यह अपने को खटकुल अर्थात् ऊँचे काव्यकुब्ज कहते हैं और ऐसे पाण्डेय कनौजियों के मुख्य स्थान ये ही हैं।'[१७] डा. शर्मा के मतानुसार 'ये असनी (जनपद फतेहपुर) के मूल निवासी थे। फतेहपुर जनपद के विवरणात्मक ग्रंथ अनुवाक से स्पष्ट है ... करण भट्ट भी आजीविका की खोज में बुन्देलखंड स्थित पन्ना के प्रसिद्ध राजवंश–बुंदेलवंश में गए थे लेकिन वे मूलतः असनी के थे जो कान्यकुब्ज ब्राह्मणों का प्रसिद्ध गढ़ माना जाता है।'[१८]

सरोजकार के अनुसार 'इन्होंने :'साहित्य चन्द्रिका' नाम ग्रंथ बिहारी सतसई की टीका श्री बुन्देल वंशावतंस राजा सभा सिंह, हृदय साहि पन्ना नरेश की आज्ञानुसार बनाया है।... एक दिना राजा सभा सिंह पन्ना नरेश की सभा में गए.... बड़े–बड़े मोतिन की लसत नथूनी नाक' यह कवित्त पढ़यो। राजा बहुत प्रसन्न ह्वै, बहुत दान सम्मान कियो।'[१९] टिपपणी में लिखते हैं – "हृदय साहि (राज्यकाल १७८८–१७९६ वि.), सभा सिंह (राज्यकाल १७९६–१८०९ वि.) के पिता थे। सभासिंह के पुत्र राजा हिन्दूपति (राज्यकाल १८१३–३४ वि.) थे।[२०] मिश्र बंधुओं के अनुसार करन ने छत्रसाल का नाम लिखा है उसमें छताछितिपाल की मृत्यु पर शोक प्रकट किया गया है। यह हिन्दूपति पन्ना नरेश के यहाँ थे। हिन्दूपति महाराजा छत्रसाल के पुत्र थे।[२१]

पंडित रामचन्द्र शुक्ल इन्हें छत्रसाल के वंशधर पन्ना नरेश महाराज हिन्दूपति की सभा के कवि कहते हैं।[२२] जबकि गौरीशंकर द्विवेदी उनके आश्रयदाताओं में पन्ना नरेश महाराजा सभासिंह, अमानसिंह और हिन्दूपति के नाम गिनाते हैं।[२३] डॉ. रामानंद शर्मा लिखते हैं कि बुंदेलावंश के आश्रय में ये कब तक रहे, इस तथ्य की सूचना देने वाला कोई प्रमाण नहीं है। 'रस कल्लोल' में इन्होंने छत्रसाल बुंदेला का दुखत निधन ही नहीं हृदयसाहि, सभा साह, अमानसिंह और हिन्दूपति सिंह का भी उल्लेख किया है। हिन्दूपति सिंह को बाद के किसी नाम का उल्लेख नहीं मिलात। अतएव स्पष्ट है कि ये हृदयसाहि से हिन्दूपति सिंह के समय तक इस राजवंश के आश्रय में रहे।[२४] महाराज छत्रसाल के निधन से संबंधित छन्द इस प्रकार है जिसमें उनकी महानता का मार्मिक चित्रण किया गया है।

भौरनि को कंज, राजहंसनि को मानसक,
चंद्रमा चकोरन को, कहनि बितै गयो।
द्विजनि को काम तरु, कान्ह ब्रजमंडल को,
जलद पपीहन को, काहू नै रितै लयो।

दीपनि को दीप, हरि हार दिगबालनि को,
कोकनि को बासरेस, देखत अथै गयो।
छता छितिपाल छितिमंडल उदार धीर,
धरा को अधार जो सुमेरु धौं कितै गयो।[२५]

अमानसिंह और हिन्दूपति सिंह का उल्लेख इन पंक्तियों में स्पष्ट है–

सच्चा सिंह अमानरन, सच्चा जस के हेत।
तच्चा तीखन तेज रवि, दच्चा भूपनि देत।
जस अमान दिसि–दिसि पसरि दुरदिन पीछे जरि।
करति उजेरी धरनि छवि, मेचक देति पछारि।
खल खंडन मंडन धरनि, उद्धत उदित उदंड।
दल–मंडन, दारुन समर, हिन्दुराज भुजदंड। [२६]

करण भट्ट के तीन ग्रंथों का उल्लेख मिलता है – १. साहित्य चन्द्रिका (बिहारी सतसई की टीका) २. साहित्य रस और ३. रस कल्लोल। 'रस कल्लोल' ने ही कवि को कीर्तिवान बनाया है। साहित्य चन्द्रिका के बारे में कवि ने लिखा है –

सुमिरत नाहिं कवि करन कर, सह साहित्य समेत।
सुकबि बिहारी सतसई, बिरचित तिलक समेत।।

जैसा कि पूर्व में ही बताया जा चुका है कि इसकी रचना संवत् १७९४ में हुई थी। विद्वान इसे गंभीर साहितियक कृति न मानकर गद्य–पद्य दोनों में यथाशक्ति भावबोध कराने वाली रचना मानते हैं। डॉ. शर्मा ने दो दोहों का टीका सहित उदाहरण इस प्रकार दिया है

मूल दोहा – मेरी भव बाधा, हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परत, स्याम हरित दुति होइ।।१।।

टीका – हे राधा बाधा हरहु, भव–संभव लखि दीन।
सर्वोपरि सुनियत तुमहिं, बाधा हरन प्रवीन।
छन अंतर में स्याम प्रिय, बिरह विकल जब होत।
पुनि तुव तन झाँई परत, नव तन बढ़त उदोत।
त्रिभुवन पति बाधा हरन, मो बाधा हर सोइ।
सुख बाधा पूरहिं हृदय, दृढ़ प्रतीत अस होइ।
भाव यहाँ निर्वेद है, जान्यो जगत अपार।
अर्थ समर्थन तै भयो, काव्य लिंग–लंकार।

मूल दोहा – जौं लौं लखौं न कुल प्रथा, तौलौं ठिक ठहराइ।
देखे आवत देखही, क्यों हू रह्यो न जाइ। (६९०)

टीका –इहाँ लज्जा औत्सुक्य की सधि, ताते भाव संधिय तहाँ
बिराजत नाम ऐतेइ प्रभु तिहि ठौर ताते मुख्य अरु लज्जा
औत्सुक्य कौ परस्पर अनुपकार तातै अन्योन्य अलंकार।
नाइका की उक्ति सखी प्रति तातै परकीया नाइका।
विशषेक्ति व्यांगी तै क्रम ध्वनि। देखै देत आवत है
ताते विरोधाभास, लाटानुप्रास, सुद्धा आरोपा कार्जकारन संबंध तै।"

करण भट्ट की जिस दूसरी कृति का 'साहित्य रस' के रूप उल्लेख शिवसिंह सेंगर नें किया है उसी की पुनरावृत्ति परवर्ती कई विद्वानों ने की है। जबकि इस नाम की कोई कृति आज तक उपलब्ध ही नहीं हुई। इसके बारे मे जो थोड़ा बहुत उद्धरण दिये गए है वे सब 'रस कल्लोल' के ही अंश हैं।

'रस कल्लोल' कवि की महत्वपूर्ण कृति है जिसमें काव्य के पांचों अंगों की विवेचना की गई है। मिश्र बंधुओं ने इसमें २५२ छंदों का उल्लेख करते हुए कहा है कि यह रस–भेद, ध्वनि–भेद, गुण, लक्षणा आदि वर्णित है। वे इसे ब्रजभाषा का प्रशंसनीय ग्रंथ मानते हैं जो ललित एवं श्रुति मधुर है जिसमें काव्य का सामग्री का विशाल वर्णन है। [२७] डॉ. शर्मा द्वारा सम्पादित रस कलोल में २८४ छंद हैं जिनमें ५ कवित्त, एक बरवै के अतिरिक्त सभी दोहे हैं। कवि ने अपनी इस कृति के मूल विषय का प्रारंभ में ही उल्लेख किया है –

रस धुनि गुन अरु लक्षना, कवित–भेद मति–लोल।
बोल–बोध हितकर सदा, कीन्हीं रस कल्लोल।
तिलक ग्रंथ में पांच वस्तु बरनन है। [२८]

प्रारंभ में गणेश, सरस्वती, शंकर और गुरु की वंदना की गई है फिर विषय कथन किया गया है। पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने इसे 'उत्तम रीति ग्रंथ' मानते हुए 'कविता को सरस मनोहर' और कवि को 'सुविज्ञ' कवि कहा है। [२९] इस कृति का रचनाकाल संवत् १८२० विद्वानों ने अनुमानित लिया है।

जैसा कि उपर्युक्त दोहे से स्पष्ट है इस कृति में रस, ध्वनि, गुण, लक्षणा और काव्यभेद का विवेचन किया गया है। सरलता और सरसता को कवि ने ध्यान में बराबर रखा है इसीलिए इसे 'बाल–बोध–हित' कहा है। लक्षणों के साथ उदाहरण भी दिये गए है। कहीं–कहीं केवल उदाहरणों से काम चलाया गया है। संस्कृत और रीतिशास्त्र के पूर्ववर्ती आचार्यों का आधार भी कवि ने लिया है किन्तु यत्र–तत्र उनकी मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। कई बार उन्होंने पूर्ववर्तियों की मान्यताओं में परिवर्तन भी किया है। इन बिन्दुओं पर यदि विवेचन किया जाए तो पर्याप्त विस्तार हो जाएगा। अतः उनके काव्य सौष्ठव पर संक्षिप्त चर्चा करना ही समीचीन होगा ताकि उनके चिन्तन, दृष्टिकोण और प्रदेय से परिचय हो सकें।

जहाँ तक कवित्व का प्रश्न है सभी विद्वानों ने करण भट्ट की सराहना की है जैसा कि पूर्व में ही इंगित किया जा चुका है। विभिन्न भावदशाओं का वे जिस प्रकार चित्रण करते हैं उसे पढ़कर कई बार बिहारी, रत्नाकर आदि की याद ताजा हो जाती है। उदाहरणार्थ यह दोहा देखिये –

अवलोकति फिरि–फिरि मिलति,
मिलि–मिलि बिहंसति जात।
भौंह विविध भाइन भरत, सौंह परस्पर खात।

इसी संदर्भ में बिहारी के 'बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय। सौंह करै भौंहन हँसै देन कहै नटि जाय।'' अथवा ''कहत नटत रीझत रीझत मिलत खिलत लजियात। भरे मौन में करत हैं नैनन ही से बात'' दोहे याद आ जाते हैं। वर्ण मैत्री और शब्द मैत्री के प्रयोग में करण भट्ट अत्यन्त दक्ष है ऐसे उदाहरण कहीं भी देखे जा सकते हैं। इसी प्रकार ये पंक्तियां 'हां ते भली नाहीं कहाँ ते सीखि आई हो। छंद का स्मरण करा देती हैं –

मणि–मंदिर सुंदरि खरी, तँह आये नंद–नंद।
मुख नाहीं, बाँही गहत, मन–माँही आनंद।

कवि ने श्रृंगार के अन्तर्गत आने वाली सभी भावदशाओं का चित्रण किया है – चाहे वह संयोग श्रृंगार की हों या वियोग श्रृंगार की। रस विवेचन की चर्चा करते हुए वे लिखते हैं –

भाव विभाव अनुभाव ए, संचारी सुखदाइ।
भरत–सूत्र मत कहत हौं, रस के सकल सहाइ।
भावादिक ये होत हैं, नौहूँ रस के हेत।
ताही तें परगट इन्हें, पहिले ही कहि देत।
रस सिंगार हास्यरु करुन, रौद्र वीर ए जानि।
कहि भयान वीभत्स अरु, अद्भुत शांत बखानि।
रति हाँसी अरु सोक पुनि, क्रोध मोद मय ग्लानि।
अचरज अरु निर्बदए, थाई भाव बखानि।

जाहिर है सभी रसों, रस–दशाओं, भाव–भंगिमाओं का उन्होंने विवेचन किया है जिसमें भरत जैसे पूर्ववर्ती आचार्यों का आधार लिया गया है। करण भट्ट ने कई बार जयदेव का अनुसरण अधिक किया है। वियोगिनी की दारुण दशा का एक चित्र देखिए–

बोले ते न बोलै, दृग खोलै, अनिमेष रहै,
कैतो समझायो चित चाउ न धरति है।
पीरी छवि छाई तन सीरी परिआई ज्यों–जयों,
जगति जुन्हाई त्यों–त्यों ज्वाल सी जरति है॥
भूल्यो खान–पान तन बसन सुगंध गेह,
ताहू पै करन कलकंठ नीर रति है।
जान्यो जात जीव–जीव मानत प्रतीत याते,
नाम के सुनत नैंक–चौंक सी परति है॥

विभिन्न भावदशाओं और सौंदर्य के चित्रण में कवियों के लिए प्रकृति प्रमुख आधार रही है। नायक–नायिका अथवा अन्य मनोदशाओं की अभिव्यक्ति जितनी सहजता से प्रकृति के माध्यम से संभव है, उतनी अन्य से नहीं। प्रकृति मनुष्य के सबसे निकट है, अतः उसे आत्मसात करने में तनिक भी कठिनाई नहीं होती। काव्य–सौष्ठव को बढ़ाने में प्रकृति की प्रमुख भूमिका रही हैं करण भट्ट ने भी प्रकृति का भरपूर उपयोग किया है। उद्दीपन के सन्दर्भ में दिये गए एक छंद का उदाहरण कितना सार्थक है –

कंटकित होत गात, विपिन समाज देखे,
हरी हरी भूमि हेरे हियो लरजतु है।
निपट चबाई भाई बंधु जे बसत गाँउ,
दाउ परे जानि कै न कोऊ बरजतु है॥
ऐते पै 'करन' धुनि परत मयूरनि की
चातक पुकारि तेह ताप सरजतु है।
अरजो न मानी, तू न गरजो चलति बेर,
ए रे घन! बैरी अब काहे गरजतु है॥

कवि ने हर एक के पहले लक्षण दिये है और फिर उदाहरण – जैसे मद का लक्षण और उदाहरण –

मद लक्षण – जँह मतवारी सी तरुनि, जीवन के मद होइ।
मद ताही सों कहत हैं, कवि–कोविद सब कोइ।
यथा – यौवन छाक छकी रहत, मद के मद उमदाति।
मुहुँ पायो जब ते तरुनि, तब ते कही न जाति।

करण भट्ट का शब्द चयन बड़ा सटीक और भावानुकूल अर्थगर्भित है। मुख्य रूप से उन्होंने तत्सम शब्दावली का प्रयोग किया है, पर तद्भीव शब्दों के प्रयोग से उहोंनें परहेज नहीं किया – तीखन, अयान, देहि, बिथा, सौति, जुन्हाई आदि सैकड़ों शब्द इसी श्रेणी के हैं। देशज शब्द भी पर्याप्त मात्रा में हैं कहने का आशय यही है कि उन्होंने सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है। यहाँ तक कि दरद, अरजी, गरूर, दरयाव जैसे अरबी–फारसी शब्द भी उनकी कविता में मिलते हैं। वैसे वे ब्रजभाषा के कवि हैं। अनुप्रासात्मक, ध्वन्यात्मक शब्दावली के प्रयोग में करण भट्ट अत्यन्त निपुण हैं जैसे सिखै–सिखै पचि–पचि मरति, करि–करि मरति इलाज। पियमुख सनसुख होत हाँ, करै विमुख यह लाज। अनुप्रास, श्लेष, यमक, उपमा, रूपक, अन्योक्ति आदि अनेक अलंकारों का प्रयोग कवि ने चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं। अपितु भाव–प्रसंगानुकूल किया है इनके प्रयोग से भाव–सौंदर्य और काव्य–रस में नयी क्रांति का बोध होता है। यही स्थिति कहावतों–मुहावरों के प्रयोग के संबंध में भी कहा जा सकता है। जहां तक छंदों की बात है – करण भट्ट ने मुख्यतः दोहा छंद का ही प्रयोग किया हैं कुछ कवित्त और बरवै भी हैं।

रस के अन्तर्गत 'भाव विभाव अनुभाव ए संचारी सुखदाई' का लक्षण उदाहरणों के साथ विवेचन करने के बाद कवि करण ने ध्वनि का निरूपण किया है – वे लिखते है –

मूल लक्षणा है जहाँ गूढ़ व्यंगि परधान।
अर्थ न काहू–अर्थ को, सो ध्वनि जानहु जान।
सो ध्वनि भेद मिली रहति, क्यांवन भेद प्रकाश।
कछुक भेद पुनि रूपते, बरनत सुमति बिलास।
अविवक्षित है एक पुनि, एक विपक्षित होइ।
दोऊ बहु–बहु भाँति है, जानि लीजियो सोइ॥

कवित्त–भेद और काव्य–लक्षण और शब्द–विवेचन की चर्चा करते हुए वे लिखते है –

कवित्त भेद – कवित्त किये कवि होत है, कवि जोइ करै कवित्त।
अर्थ सुमिल पद कवित सों, जानि लीजियो मित्त।
मृद–वितपति अभ्यास जल, सक्ति–बीज संग होइ।
समय पाय उपजत ललित, कवित–तरोवर कोई।
काव्य–लक्षण– दोष रहित, लक्षन सहित, अलंकार–गुन वृत्ति।
रीति–लक्षना व्यंजना, रसमय कवित्त प्रवृत्ति।
शब्द विवेचन– जो सुनिये सो सब्द है, बरनत जुग आकार।
धुनि अरु बरन विभाग करि, समुझत बुद्धि उदार।
तिलक–शब्द दोई प्रकारे, एक धुनियात्मक, एक वरणात्मक।

इनका क्रमशः विस्तृत विवेचन किया गया है कई बार कवि ने अपनी मौलिकता का भी उपयोग किया है। केवल परम्परा का

विश्लेषण मात्र नहीं है यद्यपि उनकी मौलिकताओं को लेकर भी अलग–अलग मत हो सकते हैं। गुण–विवेचन करते हुए वे लिखते है–

ओज'रु मधुर प्रसाद पुनि, समता अरु सुकुमार।
अर्थव्यक्ति अस्लेष पुनि, कौंति समाधि उदार।
जदपि गनाए गुन दसौं, तीनहिं अंतर होत।
याते ओज प्रसाद अरु, मधुर कहत कवि गोत।

करण भट्ट ने यद्यपि काव्य शास्त्रीय ग्रंथ लिखकर अपने को आचार्य श्रेणी में प्रतिष्ठित किया है, किन्तु विद्वान उनके आचार्यत्व पर कई प्रश्न–चिन्ह लगाते है। एक तो वे सर्वांग निरूपक आचार्य नहीं हैं दूसरे विविधांग निरूपक आचार्य होकर भी उनमें अनेक त्रुटियां हैं। वे कभी भरत का आधार लेते हैं और कभी जयदेव या भानुदत्त का। करण भट्ट के 'रस कल्लोल' का विस्तृत विवेचन करते हुए डॉ. रामानंद शर्मा ने निष्कर्षतः उन्हें काव्यसौष्ठव की दृष्टि से श्रेष्ठ और असाधारण किन्तु उनके आचार्यत्व को उतना प्रशंसनीय नहीं माना। वे लिखते हैं "काव्य सौष्ठव की दृष्टि से करण भट्ट का काव्य निश्चय ही असाधारण है। जहाँ उनकी रस–भाव योजना सरस एवं मार्मिक है, वहीं भावानुकूल ललित पदावली, गुण–सम्पन्न एवं प्रवाहमय भाषा, वस्तु से अंतरंग संबंध रखने वाली रुचिर अलंकार योजना तथा निर्दोष छन्द–योजना भी कम नहीं है। भाव और भाषा का ऐसा अहमहमिकापूर्वक एवं मणिकांचन योग रीतिकाव्य के कम ही कवियों में दिखाई देता है। निश्चय ही वे सफल, सरस, सिद्धहस्त एवं असाधारण कवि हैं।[३०] इनका विषय निर्धारण पूर्णतः परम्परा विनिर्मुक्त और मौलिक है। उन्होंने रीतिकालीन परिपाटी से हटकर सोचा है, यह प्रशंसनीय हैं जहाँ रस विवेचन को नायिका–भेद से असम्पृक्त कर दिया गया था, वहाँ उन्होंने उसे ध्वनि के साथ मिलाया है, जो निश्चय ही मौलिक है।[३१] उन्होने लक्षण निरूपण में यथावश्यक गंभीरता नहीं दिखाई है, यह सत्य है लेकिन श्रृंगारिकता या नायिका भेद रचने में तो उनकी तनिक भी रुचि नहीं रही है। निश्चय ही उनका आचार्य कर्म, उनके कवि कर्म की अपेक्षा कम गंभीर है।... करण का कवि–कर्म जितना सराहनीय है, आचार्य कर्म उतना प्रशंसनीय नहीं है। लेकिन रीतिकालीन रचना सरणि से भिन्न पथ अपनाने के कारण उनकी मौलिकता असंदिग्ध है।"[३२]

– १२ एम.आई.जी., चौबे कॉलोनी, छतरपुर

संदर्भ –

१. शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर – पृ. ६५८
२. वही, पृ. ६५९
३. वही, पृ. ६५९
४. वही, पृ. ४७ से ५० तक
५. सरोज सर्वेक्षण – डॉ. किशोरी लाल गुप्त, पृ. १६७–६९
६. मिश्र बंधु विनोद भाग १–२, मिश्र बंधु, पृ. ४६७
७. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल, पृ. २८१
८. वही, पृ. २८२
९. सरोज सर्वेक्षण – डॉ. किशोरी लाल गुप्त – पृ. २६८
१०. करण भट्ट कृत रस कल्लोल – सम्पादक डॉ. रामानन्द शर्मा – पृ. ३५–३६
११. मिश्र बंधु विनोद – मिश्र बंधु, भाग १–२, पृ. ४६७
१२. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल – पृ.
१३. हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास – डॉ. भगीरथ मिश्र, पृ. १२७
१४. बुंदेल वैभव – भाग दो – गौरीशंकर द्विवेदी, पृ. ४६५
१५. करण भट्ट कृत रसकल्लोल – सम्पादक – डॉ. रामानंद शर्मा – पृ. ३६
१६. रस कल्लोल – करण भट्ट – संपादक – डॉ. रामानंद शर्मा– पृ. १२२
१७. शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर – भाग १–२, पृ. ५२२
१८. रस कल्लोल – सम्पादक डॉ. रामानन्द शर्मा, पृ. ४०
१९. शिवसिंह सरोज – शिवसिंह सेंगर, पृ. ६५९
२०. वही, पृ. ६५९
२१. मिश्रबंधु विनोद, मिश्रबंधु, पृ. ५२२
२२. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल, पृ. २८१
२३. बुंदेल वैभव – भाग–दो, गौरीशंकर द्विवेदी – पृ. ४६५
२४. रस कल्लोल – सम्पादक, डॉ. रामानन्द शर्मा – पृ. ४२
२५. रस कल्लोल – सम्पादक, डॉ. रामानन्द शर्मा – पृ. ९३–९४
२६. वही, पृ. ५२
२७. मिश्र बंधु विनोद – मिश्र बंधु, पृ. ५२२–२३
२८. रस कल्लोल – करण भट्ट – छंद ५
२९. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल, पृ. २८२
३०. करण कवि कृत 'रस कल्लोल' – सम्पादक, डॉ. रामानंद शर्मा, पृ. ६६
३१. वही, पृ. ८२
३२. वही, पृ. ८४ □

कहौ कहां गई?

– बटुक चतुर्वेदी

कहौ कहां गई हरयाली सांवन बहार, कहौ कहां गई?
अम्बर में बजते नक्कार धुआंधार,
बिजुरी की पालकी में बदरा कहार,
तेज बुंदियन की मार पपैया की पुकार, कहौ कहां गई?
कहौ कहां गई मोरन की थिरकनी गुहार,
कहौ कहां गई हरयाली सांवनी बहार, कहौ कहां गई?
आमन के झूला वे कजरी मलहार,
घर–घर में बेहती बा गीतों की धार,
भौंरा चकरी उपहार चपेटों की गुंजार, कहौ कहां गई?
कहौ कहां गई तीजा की ठुमकनी जगार,
कहौ कहां गई हरयाली सांवनी बहार, कहौ कहां गई?
कहां बे कजरियां अब कहां बे रछार,
मेलों खों मचलत वे छौना सुकमार,
हिंडोलों की चूंचार अलगोजों की मार, कहौ कहां गई?
कहौ कहां गई ढोलक मंजीरी टंकार,
कहौ कहां गई हरयाली सांवनी बहार, कहौ कहां गई?

– १४/८, परीपार्क, शाहजहांनाबाद, भोपाल □

बुन्देलखण्ड के विभिन्न संदर्भों में हाथी

— डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला

बुंदेलखंड में हाथी की पूजा की जाती है और शुभ कार्यों में हाथी मुखधारी गणेश की मान्यता सर्वमान्य है। आज भी बुंदेलखंड में साधु लोग जब हाथी लेकर निकलते है तब मातायें अपने बच्चे को लेकर हाथी की सूड़ से स्पर्श करा सुखी और दीर्घ जीवन की कामना करती हैं। हाथी की मूर्तियाँ महलों और भवनों के शिखर पर लोकआकर्षण का कारण सदियों से बनी हैं। मंदिरों में बाहर निकली टोड़ी के नीचे नीले रंग के बने हाथियों के चित्र आज बुंदेलखंड में बहुतायत से देखे जा सकते हैं। युद्ध के लिये हाथी को तैयार करने और उत्तेजित करने के लिये बुंदेलखंड में कुछ विशिष्ट विधियों का सहारा लिया जाता है। इसी क्रम में हाथी के प्रचलित इलाज में बुंदेलखंडी प्रवृत्तियों का पुट स्पष्ट दिखाई देता है। हाथी पूज्य और युद्ध उपयोगी जानवर है। प्राचीन काल से लेकर मध्यकाल तक इसका महत्व मानव जीवन में अत्यधिक रहा है।

बुंदेलखंड के कालपी, पन्ना, नरवर—करैरा के क्षेत्रों में हाथी बहुतायत में पाये जाते थे। ये क्षेत्र नदियों के किनारे और घाटियों से भरे थे। हाथी घने जंगलों में पानी की सुलभता के बीच रहना पसंद करते थे। बुंदेलखंड में गणेश चतुर्थी के दिन मिट्टी के आकर्षक गणेश आंचलिक कलाकार कुंभकार लोग बनाते हैं। वे गणेश के हाथी मुख को उसकी सूड़ को बड़े आकर्षक ढंग से रंगों को सजाते हैं। गांव, देहातों में तालाब की काली मिट्टी से गणेश की प्रतिमायें बनाकर दरबाजे—दरबाजे जाकर बेची जाती है। गणेश पूजा में तिलक—चंदन, प्रसाद, अक्षत आदि सभी कुछ हाथी मुख को ही अर्पित किया जाता है। यह गणेश पूजा का स्वरूप हाथी पूजा का ही एक प्रकार है। अब तो महाराष्ट्र की देखादेखी पूरे बुंदेलखंड में चौराहे—चौराहे और मुहल्ले—मुहल्ले में गणेश पूजा के रूप में हाथी को पूजने का ही प्रचलन बढ़ा है। हाथी के स्वरूप को पूजने की यह परम्परा वर्तमान में पूरे देश में सर्वमान्य हो गई है। गणेश जी को गजबदन और लम्बोदर कहा जाता है। यह दोनों ही सम्बोधन हाथी के ही स्वरूप का बोध कराते हैं। बुंदेलखंड में गणेश चतुर्थी के दिन को 'पाटी छूना' दिन के रूप में मनाते थे। इस दिन चार—पांच वर्ष के बालक—बालिका को पढ़ाने का अक्षर ज्ञान प्रारंभ करने के दिन में देखा जाता था। इस प्रकार अक्षर ज्ञान प्रारंभ कराने का दिन भी बुंदेलखंड में हाथी पूजा से प्रारंभ होता था।

बुंदेलखंड में महालक्ष्मी की पूजा अश्विन कृष्ण अष्टमी को होती है। इस दिन हाथी की पूजा की जाती है। गलियों—गलियों में मिट्टी के बने हाथी बेचने वाले मिल जाते हैं। यह सौभाग्य प्रदान करने वाला त्यौहार है। इस दिन महिलायें व्रत रखती है माहुर लगाती है, मांग भरती हैं। फिर पारिवारिक झुंड में बैठ 'सोलह बोल' की कहानी कहती है। इस कहानी में कुछ गीत के बोल इस प्रकार आते हैं —

सोलह बोल की एक कहानी, तुम्हें चढ़ी और हमें फली।
जै हो हाथी पर बैठने वाली, महालक्ष्मी देवी रानी।। [२]

सांची में दसवीं सदी की गजलक्ष्मी की मूर्ति संग्रहालय में रखी है। इसमें हाथी लक्ष्मी के हाथ में लिये कमल पर खड़ा है। सांची में हाथियों की विविध मुद्राओं की कई मूर्तियां हैं। ये सभी लोकशैली की मूर्तियां हैं। ये मूर्तियों का चित्रांकन ईसवीं के पूर्व एक सदी से लेकर ग्यारहवीं सदी तक लगातार चला है। [३] सांची के ये भाग बुंदेलखंड और मालवा समय—समय पर दोनों के ही अंग के रूप में माने गये हैं। पर लोकसंस्कार को सीमाओं में नहीं बाधा जा सकता है। सिंध घाटी से प्राप्त मुहरों में भी हाथी के चित्र बने हुये मिले हैं। ये चित्र हाथियों की ईसवीं पूर्व से चली आ रही पूजा संस्कारों की ओर संकेत करते हैं। [४] हाथी प्रकृति के ताकतवर जीवों में आता है। हाथी मानव का मित्र और सहयोगी सदियों से रहा है। अतः मानव सभ्यता के विकास के साथ हाथी पूजा का प्रचलन प्रारंभ हुआ। इसमें संदेह की कोई गुजायश दिखाई नहीं देती। अबुजफजल कृत आइने—अकबरी के उल्लेख के अनुसार 'वह (हाथी) उन रागों को याद कर लेता है जिनको संगीतज्ञों के सिवाय दूसरा व्यक्ति नहीं समझ सकता। और शरीर के अंगों को उसी तरह हिलाता—डुलाता है और अपनी चतुराई का तरह—तरह से प्रदर्शन करता है। धनुष—बाण चलाना, बन्दूक चलाना, और पड़ी हुई चीजों को उठाकर महावत को दे देने की आदत वह सीख लेता है।' [५] मनुष्य के मित्र के रूप में और उसके संकेतों की भाषा को समझने के क्रम में आईने अकबरी का यह श्रेष्ठ उदाहरण है।

ओरछा के भवनों, राजमहलों में अनेक भित्ति चित्रों में हाथी के स्वरूपों का चित्रण किया गया है। ओरछा में गजलक्ष्मी का भी चित्रांकन है। महलों की टोड़ियों और शिखरों में भी हाथी की बनावट को पत्थर या चूने का प्रयोग कर उकेरा गया है। दतिया के बीरसिंह देव महल में भी हाथी के विविध स्वरूपों के दर्शन होते हैं। दतिया के मंदिरों में टोड़ियों के नीचे अनेक हाथियों के चित्र उकेरे गये हैं। बुंदेलखंड के भाग चंदेरी, पन्ना में भी हाथी के चित्रांकन के स्वरूपों को देखा जा सकता है। [६] बुंदेलखंड की चित्रकला और स्थापत्य कला दोनों में ही हाथी को लोकआस्था और बल के प्रतीक के रूप में उकेरा गया है। महलों में स्थापित हाथी की इन मूर्तियों को लोग आज पूजते भी देखे जा सकते हैं। वे भवनों के पुराने हाथी के स्वरूपों और प्रकारों को लोकदेवता के रूप में देखते हैं। लक्ष्मी की पूजा करते समय उनके ऊपर पूजा के फूल या घड़े से पानी गिराते गज को लोग तिलक लगाना नहीं भूलते। हाथी को जब मगर ने पानी में पकड़ लिया था तब भगवान विष्णु ने उसकी मगर से छुड़ा रक्षा की थी। हाथी विष्णु भगवान को अपना इष्ट मानता है, अर्थात हाथी विष्णु जी की आराधना करता है। बुंदेलखंड

में महाराज छत्रसाल बुंदेला ने मुहम्मद बंगश के विरुद्ध युद्ध में घिर जाने पर सन् १७२९, फरवरी में बाजीराव पेशवा को लिखे पत्र में इसी घटना का उल्लेख इस प्रकार किया था – "जो बीती गज–ग्राह पर, सो गति भई है आज। बाजी जात बुंदेल की, राखो बाजी लाज।" इस घटना और छन्द से यह पता पड़ता है कि बुंदेलखंड में हाथी लोक में सम्मानित के रूप में जाना पहचाना जाता था। इस घटना का चित्रांकन भी ओरछा की भित्ति चित्रकला में मिल जाता है।[७]

बुंदेलखंडी संस्कारों में हाथी गौरव और सम्मान काप्रतीक माना जाता था। हाथी को रखने वाले और पालने वाले को बड़ा आदमी माना जाता था। बुंदेलखण्ड में यह कहावत बहुत प्रसिद्ध है – "हाथी बंधौ रहत तौ उनके दरबाजे पै"। आज भी ज्योतिष और हस्तरेखा विज्ञान में दखल रखने वाले ज्ञानी लोगों को बताते हैं कि उसके हाथ में या जन्मपत्री में "गजरेखा" है। गजरेखा शब्द का प्रचलन, गज के प्रति समाज में और मानव मन में बसी उत्कृष्ट भावना है। गज बलशाली और मानव की तरह दीर्घजीवी एवं मानव के शक्तिबल–युद्धबल में बढ़ोत्तरी करने वाला जानवर था। इसीलिये लोकजीवन में गज या हाथी का प्रभावशाली स्थान प्राचीनकाल से लेकर मध्यकाल तक बना रहा। पन्ना के महाराज छत्रसाल बुन्देला (१६७९–१७३१) ने अपने राज्य में महाकवि भूषण का स्वागत अनौखे तरीके से किया था। महाराज स्वयं कवि भूषण की पालकी में लग गये थे और उन्होंने अपना हाथी कवि के नाती को सवार होने के लिये दे दिया था। महाराज का हाथी पूरे राज्य, पूरे बुंदेलखंड के सम्मान का प्रतीक चिन्ह था। यह बुंदेलखंड में हाथी के प्रति लोकसम्मान का उदाहरण है। इस घटना से प्रभावित होकर भूषण ने लिखा था –

नाती को हाथी दियो, जा पै ढुरकत ढाल।
साहू के जस कलस पर, धुज बांधी छत्रसाल।।[८]

बुंदेलखंड में दशहरा उत्सव के समय राजा की सवारी के आगे 'निसान' का हाथी चलता था। इस हाथी पर सवार सैनिक राज्य का झंडा और झंडे पर अंकित राज्य का उद्‌घोष लेकर चलता था। निसान के हाथी को सोने–चांदी के जेबरों से सजाया जाता था। हाथी के पैरों के प्रमुख जेबरों के नाम हम्मेल, घंटा, सिरी, गेद, जोड़ी, बारी, रुमाल, मुहाने, झूल, पखा और नवदा है। उल्लेखनीय है कि निसान वाले हाथी की सुरक्षा के लिये पैदल सैनिक नियत रहते थे।९ हाथी का श्रृंगार कर उसे आकर्षक बनाना आंचलिक राज्यों के लोकसम्मान का चिन्ह था। आसपास के गांवों के हजारों लोग तत्समय में ये आकर्षक झाकियां देखने आते थे। हाथी को नीचे बैठाने के लिये महावत बुंदेलखंड में, 'महल–महल' कहता था और जब महावत 'बिल–बिल' कहता था, तो हाथी पैरों को मोड़कर नीचे बैठ जाता था, तब महावत फुर्ती से हाथी पर बैठ जाता था। बुंदेलखंड में मध्यकाल और आधुनिक काल में १९४० ई. तक हाथी के सम्बन्ध में ये लोकप्रवृत्तियां प्रचलित रहीं। दतिया राज्य में हाथी का 'रमना' खेल प्रचलित था। इस खेल में हाथी को घुमावदार बल्लियों के बीच नशा कराकर महावत के पीछे दौड़ाया जाता था और महावत हाथी के आक्रमण से दौड़कर बचता था। यह खेल खतरनाक होता था। इस खेल में कभी–कभी महावत की जान भी चली जाती थी१० दतिया के राजाओं की ब्रजयात्रा के चित्र दतिया में करन–सागर तालाब के किनारे समाधियों में बने हैं। इन चित्रों में राजा को सजे हाथी पर सवार दिखाया गया है। हाथी के दायें–बायें, आगे–पीछे, पैदल सैनिक, घुड़सवारों के चित्र भी हैं। कुल मिलाकर हाथी का राज्य में कितना ऊँचा स्थान होता था, इन चित्रों से यही परीलक्षित होता है। ओरछा में भी हाथी की सवारी करते हुये राजा को आकर्षक मुद्रा में दिखाया गया है११ ये सभी उदाहरण हाथी के विषय में लोकसंस्कारों से सम्बन्ध रखते हैं।

मध्यकालीन बुंदेलखंड के राज्यों में ओरछा, दतिया, चंदेरी और पन्ना ही प्रमुख हैं। इन सबके शासक बुंदेले ही थे। इन बुंदेलाओं का राजस्थान के राजपूतों के यहां आना–जाना था। मुगलों के संग युद्ध अभियानों में भी बुंदेलों और राजपूतों का संग–साथ होता रहता था। ये लोग एक–दूसरे के प्रदेशों में आते–जाते थे। संग–संग अमोद–प्रमोद और शिकार करने जाते थे। राजपूत और बुंदेलों की लोकप्रवृत्तियों, लोकसंस्कार, लोकजीवन में बहुत कुछ सामम्य है। उल्लेखनीय है कि कोटा, बूंदी, उदयपुर, राजस्थान के राज्य और बुंदेलखंड के दतिया–ओरछा की चित्रकला के बीच पूरा साम्य है१२ चित्रकला के विषय उनकी रंग योजना, उसके तरीके आदि में काफी समानतायें हैं। हाथियों के लोकसंस्कारों के बीच साम्य वाली प्रवृत्ति की चर्चा उठाने का कारण यह है कि राजस्थान में हाथी को शुभ–लाभ का चिन्ह माना जाता है। वहां हाथी को चित्रांकन में प्रमुखता प्रदान की गई है। स्थापत्य के स्वरूप में चूने और पत्थर को क्रमश: चूने से बनावट उकेरी गई है और पत्थर को काटकर हाथी बनाये गये हैं। राजस्थान में पर्यटकों को लुभाने के लिये इन बनावटों की अनुकृतियां तैयार कर बेची जाती हैं।[१३] बुंदेलखंड में भी यही लोकसंस्कार हाथी के विषय में हैं। यदि यह कहा जाए कि हाथी भारतीय इतिहास का सबसे बड़ा तत्व है, तो इसमें बिलकुल भी अतिश्योक्ति नहीं होगी।

बुंदेलखंड के दतिया राज्य के कुतुबखाने संग्रहालय में एक हस्तलिखित पांडुलिपि उपलब्ध है। जिसका नाम, "अथा हाकौ स्हलोत्र लिषते। अथां हाथी के नाम: लिषते।" बुंदेलखंड के शासकों के यहां यह परम्परा थी कि राज्य के लेखकों और राज्य की जरूरतों, आवश्यकताओं सम्बन्धी पुस्तकों को दरबार के पुस्तकालय में संग्रहीत किया जाता था। शासक लोग देश की चर्चित और महत्वपूर्ण पुस्तकों की नकलें तैयार कर लेते थे। राज्य के पढ़े लिखे और जिज्ञासु व्यक्ति भी दवा, मंत्रशास्त्र, और धार्मिक पुस्तकों की नकलें करके अपने उपयोग के लिये रख लेते थे। ये सारी पुस्तकें काली स्याही से लिखी जाती थी। इनको पांडुलिपि कहते हैं। ये आज भी बुंदेलखंड के पुराने मंदिरों, सामंतों, पुजारियों के यहां मिल जाती हैं। ये पांडुलिपियां लोकप्रवृत्ति के इतिहास के मूल दस्तावेज हैं। इसी प्रकार की यह पुस्तक "अथ हाती" के नाम

है। इस पुस्तक में हाथी की पहचान के प्रकार, उसके इलाज, उनके रोग आदि के विषय में विस्तार से बताया गया है। यह पुस्तक बुंदेलखंड के तत्कालीन लोकसंस्कारों के अध्ययन के लिये उपयोगी है। यह लगभग डेढ़ सौ वर्ष पुरानी है। बुंदेलखंड में पुस्तकों की प्रतिलिपियां तैयार करने की प्रवृत्ति थी। चूंकि इस पुस्तक के अंतिम पृष्ठ उपलब्ध नहीं है। अत: यह पता नहीं लगता कि यह पुस्तक मूलस्वरूप में है या प्रतिलिपि। पर यह तय है कि मध्यकाल में हाथी युद्ध के लिये आवश्यक और जरूरी जानवर था। इसलिये दतिया के संग्रहालय में इस प्रकार की पांडुलिपियां हाथी की पहचान और रखरखाव की जरूरतों को पूरा करने के लिये सत्रहवीं सदी में तैयार करवाई गई होंगी। उल्लेखनीय है कि आइने–अकबरी में अबुलफ़जल ने हाथी के विषय में और राजकीय गजशाला के विषय में विस्तार से लिखा है।१४ इससे यह अनुमान करना कठिन नहीं है कि इस देश में आंचलिक राज्यों में हाथी के विषय में इस प्रकार का साहित्य था या लोकप्रवृत्तियां पहले से ही प्रचलन में थी। यह हाथी नाम: पूरी तरह आंचलिक भाषा, शब्द, भाव, देशी दवाओं, तत्कालिक लोक में व्याप्त जादू–टोना की आदतों और मुस्लिम तथा हिन्दु संस्कारों से प्रभावित है। उल्लेखनीय है कि अभी हाल ही में अफ्रीका के केन्या में किये गये अध्ययन से यह सिद्ध हो गया है कि हाथी दीर्घजीवी और सबसे बुद्धिमान, इशारों को समझने वाला जानवर है। हाथियों के समूह का नेतृत्व सबसे वृद्ध हथिनि करती है।

इस पांडुलिपि में हाथियों की जातियां बताते हुए लिखा है कि हाथी, मलेवार, घनाश्री, कुमैडीया, षंमौर, हलका, भारी, हलका हरामजादौ, वारा भाउ, मदभाउ, रसभाउ, कपंन भाउ, वेकलभाउ, अगंनभाउ, सूलभाउ, चौरंग भाउ, लरजेका भाउ, आदि। ये हाथियों की जात या प्रकार जो इस पांडुलिपि में बताये गये हैं। इन शब्दों का प्रयोग आईने–अकबरी के गजशाला के वर्णन में नहीं मिलता है।[१४] इस प्रकार के शब्द बुंदेलखंड में ही प्रचलित थे। हाथी राज्य की आवश्यकता थी और हाथी की देखभाल से आम आदमी को रोजगार तथा सम्मान मिलता था। अत: यह पांडुलिपि बुंदेलखंड के लोकसंस्कार के साथ मानवीय इतिहास का पक्ष रखने में सक्षम है। इस ग्रंथ में, अथा असुभ लछंन दौहा शीर्षक के अनतर्गत वर्णन आया है –

पीठ नागनी देषीऐ पेट जौं भौंरी होइ।
ऐसौ गज नही लीजीये धनी कौ मारहि सोइ।
नरा नागफन जौ करै रुन झपन वड होइ।
ऐसौ गज नही लीजीये महां ऐव जौ ओइ।।
दुम झारै पतालीआ भूल ना देषी कोइ।
घर मै होइ जो जाइ गौ निपत परै वह सोइ।।
नौक जुवां स्याह तालू जो भूल न लीजै कोई।
धन नासै विग्रह करै घनी कौ मारह सोई।

इस वर्णन में बुंदेलखंडी अनुभव, कहावतें, भाव के भरपूर दर्शन होते है। इसी क्रम में हाथी के दांत–नों फट जाने का इलाज भी दोहा के रूप में इस प्रकार है –

हरीआ थूथौ फटकरी, आद सेर जो आन।
मुरदा संख सिंदूर लै आद सेर परवान।
जे वस्ते सब लेइ कै, डवला मै भरबाइ।
तरपुट सब कौ करै मौह बंद करवाइ।
बहुर पीस वुकनी करै निव्आ रंग लगाइ।
वैरी लकरी सैंकदै सन तडकै मिटजाइ।।

एक और उदाहरण आंख के इलाज के संदर्भ में देखिये –

मिश्री साबुन नौन लै, जल से घोर लगाइ।
फुली रहै छोटी बड़ी, अउ धुंधौ मिट जाइ।।५७।।

उपरोक्त इलाज के उदाहरणों में जिस सामग्री के उपयोग का निर्देश दिया गया है, वे सभी देशी हैं। बुंदेली लहजे और चटक का उपयोग उनमें है हाथी के मैदान खोलने का एक टोटका–मंत्र का उदाहरण, मैदान खोलने से तात्पर्य जब हाथी किसी कारण या जादू–टोने के प्रयोग के कारण कोई काम न कर रहा हो, कोई शरीर में चहल पहल न हो। अर्थात उसका मैदान बंधा हो। तब इस मंत्र के प्रयोग से हाथी फिर से काम करने लगता है फुर्तीला हो जाता है –

आन षोलौ वांन षौलौ। षौलौ पंन की राई।
सांमन हात मैदान शौलौ। मोड वीर हनमंत की धुन्न आई।।
इतवार कौ करै। ततवीर सनीचर कौ।।५९।।

इसी प्रकार का एक मिलाप का मंत्र देखिये –

विसमिलाहि रमान्नर्निरहीम।
सिर कीलौ सहर कीलौ की तीतेरी जान।।
जिन जाये पैदां करै की लाजन्हात कौ हात कीलौ।।
दांत कौ दांत कीलौ। आंष कौ आंष कीलौ।।
कान का काड कांन कीलौ। पाउ काड पाउ कीलौ।।
पूँछ काड पूंछ कीलौ।
नौ नारी बहतर कोस कीलौ तेरी कीलौ धाम।।
उपर जसरत तेरी आंन।
और कौ देषै जरै वरै मेकौ देष पांनी परौ।।
मेरी भगत गुरु की सकत।
फुरै मंत्र ईसुरी वाचा।।६०।।१५

इस मंत्र में जहां मुस्लिम संस्कारों का बोध होता है वहीं दसरथ भगवान राम के पिताश्री का भी नाम शामिल है। बुंदेलखंड की गंगा–जमुनी संस्कृति का यह अद्‌भुत उदाहरण है। जादू प्रवृति का समाज पर गहरा प्रभाव था। इससे यह भी पता पड़ता है। तत्समय में हाथी का उपयोग मानव जीवन में मानव से किंचित भी कम नहीं था। आज जरूरत है इस प्रकार के आंचलिक शोधों को सामने लाया जाय। जिससे मानव अपने जीवन के प्रवाहित रहे संस्कारों के विषय में जान सके।

– कुंजनपुरा, दतिया म.प्र.

संदर्भ –

१. बुन्देलखण्ड का इतिहास (दीवान प्रतिपाल सिंह, संवत् १९८५, बनारस), पृ. ५५–५६, आईने अकबरी (अबुलफजल कृत

अनु. हरिवंशराय शर्मा, इलाहाबाद, १९६६) पृ. ११६, तुजुक-ए-बाबरी) अनु. मथुरालाल शर्मा, दिल्ली २००० पृ. ५६

२. हिन्दुओं के व्रत पर्व त्योहार (रा.प्र. शास्त्री, लोक भारती प्रका. १९६६) पृ. १६५-६६, १८४-८५

३. सांची (भास्कर नाथ, म.प्र. हिन्दी अका. भोपाल, १९८२) पृ. ६१, ७०, १०४

४. ललित कला के आधारभूत सिद्धान्त (राजस्थान हि.ग्र.अका. जयपुर, २००३) पृ. १५४

५. आईने-अकबरी (अनु. हरिवंशराय शर्मा) पृ. ११३

६. ओरछा के भित्तिचित्र (संचालनालय पुरातत्व, म.प्र. भोपाल, २००३), पृ. ११-१६, २३, ३२

७. वही, पृ. १३-१४, महाराजा छत्रसाल बुंदेला (डॉ. बी.डी. गुप्ता, आगरा १९५८) पृ. ९०-९१

८. महाराजा छत्रसाल बुंदेला (डॉ. बी.डी. गुप्ता) पृ. ११९

९. दतिया उद्भव और विकास (श्याम संस्थान दतिया, १९८६) पृ. ९३

१०. बुंदेलखंड का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक अनुशीलन (संचयन कानपुर, डॉ. रामस्वरूप ढेंगुला) पृ. १५०,

११. ओरछा के भित्तिचित्र, पृ. १७

१२. मुगलों के अन्तर्गत बुंदेलखंड का सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक इतिहास (बी.डी. गुप्त, दिल्ली सन् १९९७) पृ. १३८

१३. कोटा, बूंदी, उदयपुर, चित्तौड़, जयपुर की यात्राओं का मूल्यांकन।

१४. आईने-अकबरी, पृ. ११२-१२४

१५. अथ हाथी नाम : पांडुलिपि, राजकीय संग्रहालय, दतिया। पृ. ६, ३७-३९, ४९

□

भानेजन कौ भात

— रतिभानु तिवारी 'कंज'

बेटी कौ कारज अब नीरौ, आगव भइया मोरे।
भानेजन कौ भात माँगवे, आइ चेटका तोरे।।

दाऊ जू ने अपने मन में, नीकौ नईं विचारौ।
अपने हातन अपने घर खों, आग लगा कें बारौ।
सती नार खों दोष लगा कें, अपनो जनम बिगारौ।
हाय विधाता तैनें उनकी, मति में पथरा पारौ।।
अपनी भुजा काटकें कब अब, कीकें करें निहोरे।
भानैजन कौ भात माँगबे, आइ चेटका तोरे।।१।।

मन अब धीर धरै न नेकउ, जरै ज्यों अंगारौ।
हिय में हूंक उठै का करबें, हो गवौ बन्टा ढारौ।।
बब्बा जू कौ माथौ झुकगव, आन कका जू की गइ।
वीर सिंह के वीर वंश में, ऐसी अनहोनी भइ।।
चिरइ चैनुआँ सुआ परेवा, रोरय हाती घोरे।
भानेजन कौ भात मांगवे, आइ चेटका तोरे।।२।।

बिन भइया के बैंन न नोंनी, लगै कऊँ जगती पै।
कैसें तुमें बिसारें वीरन, राखी पै अकती पै।।
आन रामराजा की तोखों, वेत्रवती साखी है।
मोरी टेक राखियौ जैसी, भौजी की राखी है।
दैरइ चाँउर नेवतें अइयौ, प्यारे भइया मोरे।
भानेजन कौ भात माँगवे, आइ चेटका तोरे।।३।।

राख चेटका की कुंजा ने, जब चूनर में बांधी।
खलबल सी मच गई धरती पै, चली भयानक आँधी।।
चमकी लाल बिजुरिया नभ में, उठे मेघ कजरारे।
अंदयारौ हो गव धरती पै, टूटन लगे सितारे।।
धूरा उड़न लगी अबढारी, कुंजा ने कर जोरे।
भानेजन कौ भात मांगवे, आइ चेटका तोरे।।४।।

ऐरौ भऔ चेटका ऐंगर, कुंजा मन हुलसानी।
सुना परी कानन में आकें, बुंदेला की बानी।।
है सौगन्ध हमें माटी की, औसर आन समारें।
मड़वातर हो भानेजन के, आकें पांव पखारें।
देखौ काज घरै तुम जाऔ, दिना रए अब थोरे।
भानेजन कौ भात मांगवे, आइ चेटका तोरे।।५।।

कुलदेवी खों सुमरै कुंजा, अनहोंनी न होवै।
दस भइयन की बैंन अभागिन, हिलकी भर-भर रोवै।।
मूरत सी ठांड़ी मंडवा नों दुख की उठें हिलोरे।
चीकट लैकैं प्यारे भइया, आय न अब लों दोरें।।
असुवन सें भींजी साड़ी के, ऊनें छोर निचोरे।
भानैजन कौ भात मांगवै, आइ चेटका तोरे।।६।।

कलस धरें ठांड़ी सब तिरियां, मोंसें कड़ै न वानी।
मड़वा तरें अचानक ऐंनइ आँधी सी सन्नानी।
छाया सी देखी कुंजा नें, लगी भेंटवे खम्भा।
बोल परी भानेजन ओरी, आगए अपने मम्मा।
चीकट धरी थार में अपरस, बंद गए सब दोरे।
भानेजन कौ भात माँगवे आइ चेटका तोरे।।७।।

उजरन लगौ दिया सौ छिन में, सुबरन की जोती सें।
चमकन लगौ थार चांदी कौ, हीरन सें मोती सें।।
कुंजा की आंखन सें असुवा, ढड़क परै अवढारे।
नरकाया में दर्शन देओ, भइया प्रान प्यारे।।८।।
सोनों चांदी हमें न चाँनें, चाँनें दरसन कोरे।
भानैजन कौ भात माँगवे, आइ चेटका तोरे।।८।।

बुंदेला की नर काया नें, आगें हात बड़ाऔ।
भानेजन के चरन पखारे, कुंजै कंठ लगाऔ।।
कुंजा लिपट गई छाया सों, नर छाया अलवेला।
मरें भात दव भानेजन कौ, हो गव अमर बुंदेला।
राखें लाज काज में सबकी, लाला भए अहोरे।
भानेजन कौ भात माँगवे, आइ चेटका तोरे।।९।।

— नैगुवां, टीकमगढ़ म.प्र. □

हिन्दवाने की भवानी

– डॉ. श्याम बिहारी श्रीवास्तव, पीएच.डी.

भारतवर्ष को अंग्रेजी सत्ता के चंगुल से मुक्त कराने के लिये प्राण न्यौछावर करने वाले शूरवीरों में वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। सन् १८५७ के स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास की जब–जब चर्चा चलेगी तब–तब महारानी लक्ष्मीबाई का नाम सबसे पहले आयेगा। वीरांगना लक्ष्मीबाई की वीरता का बखान उस समय भी हुआ जब झांसी अंग्रेजों के अध ीन हो गई थी। झांसी अंचल के जन–कवियों ने रानी की शौर्यगाथाओं का बढ़–चढ़ कर वर्णन किया परन्तु अंग्रेजी सत्ता का भय उस सृजन को दबाता रहा जो समय के प्रभाव से बहुत कुछ नष्ट हो गया, फिर भी पुराने बस्तों में छिपाकर रखा गया वह काव्य कोष कुछ अंशों में शेष बच गया जो अनुसंधानकर्ताओं के हाथों में आया और आधे अधूरे रूप में ही सही, वह उजागर भी हुआ।

स्वातंत्र्यवीर डॉ. भगवानदास माहौर ने महारानी लक्ष्मीबाई सम्बंधी काव्य की खोज करते हुए लिखा है – ''झांसी और बुंदेलखंड के जनकवियों और जन कलाकारों में कदाचित ही कोई ऐसा अभागा होगा जिसकी कला ने महारानी के शौर्य और उज्ज्वल देशभक्ति से प्रेरणा न पाई हो और जिसने श्रद्धाभक्ति से अपने कलाकुसुमों की अंजलि महारानी लक्ष्मीबाई के चरणों में अर्पित न की हो परन्तु उन पुराने कलाकारों में से प्राय: सभी की कृतियां महारानी की ही भांति भारतीय स्वातंत्र्य की बलिवेदी पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद की अग्नि में जल गईं।''१

इस पुराने और महत्वपूर्ण साहित्य को नष्ट करने में भावी पीढ़ियों की अज्ञता और लापरवाही भी एक बड़ा कारण रही। पुराने बस्तों में बंधी सामग्री सड़ गल गई। उसे फेंक दिया गया और कई पुराने घरों में उन्हें गलाकर टोकरियों में बदल दियागया। इस प्रकार हमारा बहुत सा पुराना साहित्य नष्ट हो गया। प्राचीन पत्र पाण्डुलिपियों की खोज करते समय मुझे कुछ जीर्णशीर्ण पन्ने मिले थे जिनमें कुछ स्फुट छंद भी हैं। इन्हीं कागजों में महारानी लक्ष्मीबाई की वीरता से सम्बधित छ: छंद हैं। इन छंदों में कवि ने अपने नाम का उल्लेख नहीं किया है, परन्तु छंदों में वर्णित स्थानों से लगता है कि रचनाकार कोंच, झांसी के क्षेत्र का ही रहा होगा। अनुमान यह भी है कि ये छंद खेम खरे के वंश के किसी कवि द्वारा लिखे गए हैं। खेम खरे के वंशज पंडोखर में रहे हें पंडोखर के निकट स्थित ग्राम भोबई जिला दतिया के निवासी राना परिवार के यहां इन छन्दों की पांडुलिपि उपलब्ध हुई थी। खेमखरे और उनके वंश के कवि इस क्षेत्र में आते जाते रहते थे। अत: यहां उनकी रचनाएं उपलब्ध होना सहज स्वाभाविक है।

एक अज्ञात रचनाकार के द्वारा लिखे गए रानी झांसी की प्रशस्ति के ये छ: छन्द अप्रकाशित काव्य में विशिष्ट महत्व के हैं। इन छन्दों में महारानी लक्ष्मीबाई तथा अंग्रेजों के मध्य हुए झांसी तथा कोंच के आसपास के युद्धों का प्रामाणिक चित्रण किया गया है। प्रथम छंद में महारानी लक्ष्मीबाई के यश का वर्णन इस प्रकार किया गया है –

''कैधों क्षीर सागर तैं भावर कौ हुकुम मानि,
आनि कैं रमा नें नाम रुहनि सम्हारी है।
कैधौं कराली काली कालिका कृपान धारि,
मारि मुंड मालिका महेश कौ विचारी है।।
कैधौं ब्रह्मरानी ब्रह्म तेज प्रनपालन है,
घालन है दुष्ट पुष्टिवेद धर्मकारी है।
तीनि सक्ति पाइकैं बाई है झांसी की,
पुन्य की प्रवाह किधौं गंगातन धारी है।।''

अर्थात् या तो क्षीर सागर से विष्णु की आज्ञा मानकर लक्ष्मी ने लक्ष्मीबाई के नाम और रूप को धारण कर लिया है। अथवा यह कराली कालिका है जो कृपाण धारण कर शिव को मुंडमाला अर्पित करने को उद्यत है। अथवा यह ब्रह्म तेज के युक्त प्रतिज्ञा पालन को तत्पर ब्रह्ममाणी है। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनां शक्तियों से युक्त यह झांसी वाली रानी है। अथवा पुण्यसलिला गंगा ने शरीरधारण कर लिया है।

द्वितीय छंद में महारानी लक्ष्मीबाई और अंग्रेजों के बीच हुए झांसी के युद्ध का वर्णन किया गया है। इस छंद में कवि ने संकेत किया है कि झांसी पर अंग्रेजों को चढ़ाई करने के लिए दक्षिण के किसी प्रभावशाली व्यक्ति द्वारा उकसाया गया था। टेहरी वाली रानी लिड़ई सरकार के दीवान नत्थे खां ने भी ऐसी ही चुनौती रानी लक्ष्मीबाई को दी थी –

''विजन कराइहौं अंगरेज सौं लराइहौं,
तौ लड़ई महारानी कौं वदन बताइ हौं।।''२

इतिहास में उल्लेख है कि लिड़ई सरकार के दीवान नत्थे खां ने इंदौर पहुंचकर अंग्रेजों से भेंट की थी तथा झांसी के विरुद्ध अभियान में अंग्रेजों को सहायता भी दी थी। संभव है कवि का संकेत नत्थे खाँ की ओर ही हो। छंद इस प्रकार है –

''आयौ दौरि दछिछन तैं काऊ की सांस पाइ,
कैऊ रहीसनि कौ मेंटि दयौ चीनों है।
कैऊ मसीस धर्म छोड़ि छोड़ि संग भए,
झांसी पै आए तिनि यहां जुध्ध कीनौं है।।
बाई महमाई नैं बजाई तेग झांसी में
अपनी प्रतग्या हेत किलौ छांड़ि दीनौं है।
घेरि कैं मैदान मैं गुमान गर्व दूर करौ,
मारि कैं सिरोहिनि फिरि जैतपत्र लीनौं है।।''

उपर्युक्त छंद में कवि ने स्पष्ट संकेत किया है कि झांसी की रानी के विरुद्ध अनेक राजाओं ने अंग्रेजों को सैनिक सहायता

प्रदान की थी परन्तु रानी लक्ष्मीबाई ने हार नहीं मानी थी। उसने किले से बाहर निकलकर अंग्रेजों से घमासान युद्ध किया था। झांसी के पतन के पश्चात् महारानी लक्ष्मीबाई अंग्रेजी सेना का घेरा तोड़कर निकल गई थी। शत्रुओं ने बराबर उनका पीछा किया और कई स्थानों पर युद्ध हुए। तीसरे छंद में महारानी लक्ष्मी बाई तथा अंग्रेजों के मध्य कोंच के आसपास होने वाले युद्धों का विवरण दिया गया है। छंद इस प्रकार है –

''पहिलें दिन कोंच तैं कनारौ करि कैथी पै,
मारि कैं गलीमनि नारौ भरि दीनौं है।
दूसरी लड़ाई जाइ चलिकें बंधा पै भई,
लुत्थि पै लुत्थि मांसु मांटी न चीनौं है।।
तीसरे इटौरे पै घोर संग्राम भयौ,
बाई नैं सिरोही मारि साहब सिर छीनौं है।
दोऊ दिसि तलब तरवारि महाघोर चली,
बाई नैं सिरोही मारि जैतपत्र लीनौं है।।''

इस छंद में कोंच के निकट कैथी, बंधा तथा इटौरा तीन स्थानों पर हुए युद्धों का वर्णन किया गया है। इटौरे के युद्ध में रानी लक्ष्मीबाई ने किसी अंग्रेज अफसर का सिर काट डाला था। कवि के अनुसार कोंच के युद्धों में महारानी लक्ष्मीबाई को विजय मिली थी।

चौथा छंद विषयवस्तु की दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। कवि ने तत्कालीन देशी राजाओं की असंगठित शक्ति की ओर इंगित किया है। स्वार्थ के वशीभूत कुछ देशी राजा अंग्रेजों से मिल गये थे। वे अंग्रेजों को सैनिक सहायता देने को वचनबद्ध हो गए थे, साथ ही अंग्रेजों की सत्ता का विरोध करने वाले राजाओं और रजवाड़ों की गोपनीय सूचनायें भी अंग्रेजों को मुहैया कराते थे। इस छंद में कवि ने तीखा व्यंग्य किया है। छंद निम्न प्रकार है –

:''ल्याये कोऊ बम्बई तैं हिन्द की घटायबे कौं,
खाने पै सुरू भये लाज तृन तोरी है।
कैऊ महीपनि की बीच में बिगारी,
अंगरेज की सुधारिबे कों सबकौं निहोरी है।।
जुरिकें सबह आए घेरी बलवंतपुरी,
हिन्द के हरामखोर भए पाप घोरी हैं।
बाई महमाई ने बजाई खूब झांसी में,
मारिकें सिरोहिनि जिहि श्रोनित महि बोरी है।।''

इस छंद में कवि का आक्रोश फूट पड़ा हैं। भारतीय स्वातंत्र्य से धोखा करने वाले इन लोगों को कवि ने 'हरामखोर' और 'पापधोरी' तक कहा है। इन छन्दों का रचयिता कवि दरवारी मनोवृत्ति का नहीं है। कवि चापलूसी की प्रवृत्ति से कोसों दूर है। इन छंदों में कवि की राष्ट्रीय भावना उजागर हुई है, तभी तो उसने राष्ट्रीय वीरांगना लक्ष्मीबाई के शौर्य की भरपूर प्रशंसा की है। इस छंद में कवि ने झांसी के पुराने नाम 'बलवंतपुरी' का उल्लेख किया है।

पांचवें छंद में कवि ने महारानी लक्ष्मीबाई के साथ उनके सहयोगी पेशवा नाना साहब का भी उल्लेख किया है। अंग्रेज शासकों ने पेशवा के साथ भी विश्वासघात किया था। इस छंद में पूरे भारत में अंग्रेजी शासन के आतंक का वर्णन है। – छंद इस प्रकार हैं –

''छोरि धरी डिल्ली सुरतान महातेगबली,
छांड़ि दयौ तखत एक पल की न देरी है।
कहं लौं कहौं बंगालीहा थाके महीथाल,
देखि हवाल तेग ढाल धरि छोरी है।।
पेशवा प्रवाह प्रगट प्रथीपति पूरन है,
राखौ दोऊ दीन कों धरम धीर धोरी है।
तेगबल बाई नैं बजाई खूब झांसी में,
मारि कैं सिरोहिनि जिहि श्रोनित महि बोरी है।।''

इन घटनाओं का १८५७ के क्रान्तिकारी इतिहास में भी उल्लेख है कि अंग्रेजों ने दिल्ली के मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर को अपदस्थ कर दिया था। बंगाल में अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हो गई थी परन्तु बुंदेलखंड में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों से बराबर संघर्ष किया। पेशवा नाना साहब ने भी धर्मवीरता तथा कृपाणवीरता दोनों का ही निर्वाह किया था।

उपलब्ध छः छन्दों की तारतम्यता में छटवां छंद उपसंहार जैसा है। इस छंद में झांसी के सूबेदार, शिवराव भाऊ तथा महारानी लक्ष्मी बाई के पति गंगाधर राव का स्मरण किया गया है। छंद निम्नानुसार है –

''राखी सूबेदार की समेत सिवराइजी की,
जाहर बलवंतपुरी चारों खूंट जानी है।
पति की बड़ाई बड़ी ओप तें बढ़ाई माई,
भाखत में बाई महमाई सी दिवानी है।।
पूरब अहिल्या जैसें दान तें प्रवाह बढ़ी,
तेरी सिरोही नैं कीरति बखानी है।
देवतनि जानी जुध्ध जोति फहरानी,
धर्ममूरति निशानी हिंदवाने की भवानी है।।''

महारानी लक्ष्मीबाई को कवि ने देवी का अवतार और ''हिंदवाने की भवानी'' जैसे गौरवशाली संबोधन दिए हैं। लक्ष्मीबाई की वीरता ने बलवंतपुरी (झांसी) की कीर्ति पताका चारों दिशाओं में फहरा दी थी। यदि अहिल्याबाई की दानवीरता से प्रसिद्धि मिली तो महारानी लक्ष्मीबाई की कृपाणवीरता ने उन्हें प्रसिद्ध कर दिया। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम १८५७ की महानायिका महारानी लक्ष्मीबाई सच्चे अर्थों में 'हिन्दवाने की भवानी' थीं।

– अनन्य कॉलोनी, सेंवढ़ा, जिला दतिया, म.प्र.

संदर्भ –

१. मदनमोहन द्विवेदी 'मदनेश' कृत लक्ष्मीबाई रासो – संपा. डॉ. भगवान दास माहौर, सन् १९६९, पृ. ८, भूमिका
२. वीरांगना लक्ष्मीबाई – रासो और कहानी, संपादक श्री हरिमोहन लाल श्रीवास्तव, सहयोगी प्रकाशन दतिया, सन् १९५३, पृ. २४

□

वीरांगना झलकारी बाई

— डॉ. (श्रीमती) अंजना अग्रवाल

भारत के स्वतंत्रता समर में पुरुषों के साथ महिलाओं ने भी कंधे से कंधा मिलाकर योगदान दिया। इन्हीं वीर एवं देशभक्त महिलाओं में बुन्देलखण्ड की वीरांगना झलकारी बाई का नाम भी अमर हुआ। झलकारी बाई महारानी लक्ष्मीबाई की परम सखियों में से थी। वह लक्ष्मीबाई की विश्वास पात्र थी और एक नारी सेना 'दुर्गादल' की कमांडर थी। लक्ष्मीबाई की आन बान और शान की रक्षा का उत्तरदायित्व इन्हीं पर था। झलकारी बाई उन वीर महिलाओं में से एक है जिन्होंने अपनी वीरता और त्याग के कारण अपने देश का नाम उज्ज्वल किया वह इतिहास में अल्पज्ञात होते हुए भी इतिहास पुरुष थी।

झलकारी बाई वीरता, निर्भयता तथा कोमलता की सजीव मूर्ति थी। रूप गुण और शौर्य प्राप्ति के बाद भी अभिमान उसे छू नहीं सकता था। उसकी एक झलक न्याय और सत्य को जीवन प्रदान कर अन्याय को नष्ट कर तथा क्षीण कर देने में समर्थ थी। कठोरता, दृढ़ता और कोमलता का अनोखा संगम थी झलकारी बाई।

झलकारी बाई का जन्म १८३०—३५ के मध्य झांसी के उत्तर पश्चिम में भोजला नामक ग्राम में हुआ। झलकारी के पिता का नाम मूलचन्द्र तथा माता का नाम धनिया था। पिता मूलचन्द्र एक बहादुर सैनिक तथा जानेमाने तीरंदाज थे। वह कोरी परिवार के थे। झलकारी के जन्म के समय ज्योतिषी ने भविष्यवाणी की थी कि झलकारी बाई बहुत ही उज्ज्वल भविष्य लेकर आई हैं। उनका कहना था कि वह रानी समान सुख साम्राज्य की स्वामिनी होगी। वह अपने वंश, अपने देश, अपने राज्य का नाम और गौरव बढ़ायेगी।

झलकारी शनैः शनैः बड़ी होने लगी उसके खेल साधारण बालक बालिकाओं से भिन्न थे। गुड्‌ढे गुड़ियों के खेल छोड़कर वह तीर, तलवार, भाले, बरछी की ओर आकृष्ट होती थी। पिता भी उसे हथियारों के प्रयोग करना सिखाते, झलकारी पूरी लगन से यह सब सीखती थी। पिता उसे कुशल फौजी बनाना चाहते थे। उसका प्रशिक्षण देने में उनकी ओर से कोई कोर कसर बाकी नहीं थी। झलकारी भी बड़ी तत्परता से सब सीखती गई। शहर से दूर एक छोटे से गांव भोजला में पलकर झलकारी सुदृढ़ तथा फौलादी बनती गई। हल्के फुल्के हंसी मजाक करना भी झलकारी का स्वभाव था लेकिन उसके मजाक के पीछे भी एक कटु सत्य छिपा होता था। एक बार उसने अपनी चाची से मजाक में कह दिया — "चाची देखना, एक दिन मैं झांसी की रानी के साथ रण भूमि में जाऊँगी और दुश्मनों के छक्के छुड़ाऊँगी।" इस पर झलकारी की चाची बोली "जि छोटी तो आसमान की बात करे है झलकारी जमीन पै पांव टिकाकै चल।"

एक दिन झलकारी अपनी माता धनिया के साथ मन्दिर में जल चढ़ाने गई। पूजन आदि के बाद झलकारी और उसकी मां मन्दिर के बाहर आ गई थी। वहां उन्हें पूरन नाम का एक युवक मिला वह झांसी की फौज का बड़ा अच्छा गोलंदाज था। झलकारी को वह बहुत भला लगा। माता को भी पसन्द आ गया और पूरन के साथ झलकारी का विवाह हो गया। झलकारी भोजला छोड़ झांसी में नये पुरा में पहुंच गई।

झलकारी के हांथ—पांव में कुछ पुराने जख्मों के निशान देखकर एक दिन उसकी सास ने पूछा — "तुम्हारे हाथ पांव में ये जख्मों के निशान कैसे हुए? उत्तर में झलकारी ने उन्हें बताया कि एक बार तेंदुए के। मारने के लिए गांव के लोगों ने उसे आमंत्रित किया था। वह अपनी बाल सेना के साथ वहां पहुंच गई। तेंदुआ तो मार दिया लेकिन उसके हाथ पांव में खासे जख्म हो गये। जिनके चिन्ह अब भी शेष हैं।" माया अपनी बहु की सब बातें मंत्र मुग्ध होकर सुनती और उसके वीरोचित गुणों पर गदगद होती रहती।

शिवरात्रि व्रत को झलकारी बाई झांसी किले में स्थित शिव मन्दिर में पूजा करने गयी वहां रानी लक्ष्मीबाई से उनकी भेंट हुई।

रानी लक्ष्मीबाई ने झांसी की सुरक्षा हेतु झलकारी बाई को स्त्री सैनिक बनाने के लिए आमंत्रित किया। देखते ही देखते आनन—फानन में झलकारी ने महिलाओं को एकत्रित किया। अगले ही दिन से महिलाओं को अखाड़े का अभ्यास मल खम्भ, अस्त्र—शस्त्र का प्रशिक्षण दिया जाने लगा। झलकारी महिलाओं को समझाती कि केवल अच्छा भोजन, कीमती वस्त्र तथा सुख वैभव को भोगना ही जीवन नहीं अपितु किसी उद्देश्य के लिए जीना या देश के लिए मर मिटना ही मानव जन्म की सफलता है।

स्त्री सेना जिसका नाम 'दुर्गादल' रखा गया। इसी उद्देश्य से गठित किया गया था कि वह रानी की आन बान और शान तथा झांसी की सुरक्षा का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले। सन् १८५७ के प्रथम भारतीय स्वतंत्रता संग्राम मे पीर अली एवं दूल्हा जू के विश्वासघात के कारण अंग्रेजी सेना किले में प्रवेश कर गयी। युद्ध में पूरन वीर गति को प्राप्त हुआ। खबर पाते ही वीर झलकारी सन्न सी रह गयी पर शीघ्र ही उन्होंने अपने आपको सम्हाल लिया। वह कर्त्तव्य के सामने पति वियोग को भूल गयी थी।

झलकारी ने रानी को किले से बाहर निकालने की योजना बनाई और रानी के पास पहुंच कर रानी के गहने व कपड़े पहन लिय। झलकारी की शक्लोसूरत रानी लक्ष्मीबाई से बहुत मिलती थी। अतः वह उनके कपड़े व गहने पहनकर लक्ष्मीबाई की तरह दिखने लगी। झलकारी ने रानी को किले के बाहर विदा कर स्वयं युद्ध का मोर्चा सम्हाला।

अंग्रेज कमांडर ह्यूरोज की फौज भी सेना के समक्ष बौनी नजर आने लगी। उन्होंने दूल्हा जू व पीर अली को बुलाया। दूल्हा जू और पीर अली ने बताया ये झलकारी बाई थी, रानी लक्ष्मीबाई नहीं। इस बात का पता लगने पर झलकारी बाई दूल्हा जू और पीर अली को धिक्कारते हुए बोली — "अरे पापी, ठाकुर होके तैंने जे का करो।" और झलकारी बाई अंग्रेजी सेना द्वारा गिरफ्त में ले ली गई।

— शिक्षिका, शास. पद्माराजे उ.मा.क. विद्यालय, ग्वालियर □

बुन्देली लोक गीतों में श्रीराम जन्म

– डॉ. हरिमोहन पुरवार

परम तेजस्वी भगवान श्रीराम को आज सभी जन पूर्ण श्रद्धा विश्वास के साथ स्मरण करते हुये अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। मर्यादाओं को अपने आचरण से प्रतिष्ठित करने वाले विश्व के एकमात्र परम पुरुष पुरुषोत्तम राजा राम का जन्म बुंदेलखंड में अत्यन्त हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। अयोध्यापति राजा दशरथ को अपने विवाह के पश्चात् जब पुत्र की प्राप्ति नहीं हुयी तो महारानी का मन उद्विग्न हो गया। राजकुमार के बिना अयोध्या के भविष्य को लेकर महारानी का मन चिन्ताग्रस्त रहने लगा। एक दिवस महाराज दशरथ पलंग पर लेटे थे, महारानी उनकी चरण सेवा में तल्लीन थी कि महाराज ने महारानी से पूछा – हँस हँस पूछै राजा दसरथ, कैसी धन अनमनी महाराज, भौतक तो कहिये राजा अन्न धन, भौतक लक्ष्मी महाराज, सूनो अजुध्या को राज अकेली, संतति बिना महाराज, राजा तो पौढ़े पलंग पै, रानी मलै पिडरी महाराज।

तब महारानी अयोध्या के लिये राजकुमार को बाजार से क्रय करके लाने की सलाह देते हुये कहती हैं –

तुम राजा जइयो बजारे, संतति मोल ल्याइयो महाराज।
राजा तो पौढ़े पलंग पै, रानी मलै पिडरी महाराज।

महारानी के बचन सुनकर महाराज दशरथ जी उत्तर देते हैं –

तुम रानी मूरख अजान, कहाँ लौ समझाइये महाराज।
हाटों में हतिया बिंकाये, संतति नहिं पाइये महाराज।।

राजा दशरथ की बात सुनकर महारानी और अधिक आत्मग्लानि से भर जाती है, परन्तु आस नहीं छोड़ती है और अपनी सखी सहेलियों से मंत्रणा के पश्चात् वह पुत्र प्राप्ति हेतु महाराज को अन्य उपाय बतलाते हुये कहती है –

नगर को नौआ बुलवइयो, छुरा मंगवाइयो महाराज
चीरो अभागिन की कूँख, राजा गंवारिन कहैं महाराज
कासी के पण्डित बुलवइयो, बेद बचवइयो महाराज
पहरो पना जब खोलो, बांच सुनवाइयो महाराज
नगर न बाजैं बधैयां, सखी न गावैं सोहरो महाराज
दूजो पना जब खोलो, बांच सुनवाइयो महाराज
अहिरा को लोवै न गाय मथन नहिं घूमियो महाराज
तीसरो पना जब खोलो, बांच सुनवाइयो महाराज
राजा है जनम के भोगिया ग्यावन हिरनी मारियो महाराज
सोने की हिरनी गढ़वाय, रूपे के गबेलुवा महाराज
बन गए देव छुड़ाय संतति तौ हुइयै महाराज
तुम राजा जइयो पहारे, संजीवनी ल्याइयो महाराज
घिस घिस लुड़िया बंटवइयो, कटोरन छानियो महाराज

फिर उसी संजीवनी को राजा दशरथ की तीनों रानियों ने आपस में बांटकर पिया जिससे वे गर्भवती हो गयीं। वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के अठारहवें सर्ग के ८–९ व १०वें श्लोक में श्रीराम जन्म के विषय में वर्णन मिलता है –

ततो यज्ञे समाप्ते तु ऋतूनां षट् सम्त्ययुः।
ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावामिके तिथौ।।
नक्षत्रे अदिति दैवत्ये स्वोच्चसंस्थेषु पनचसु।
ग्रहेषु कर्कटे लग्ने वाक्पताविन्दुना सह।।
प्रोषमाने जगन्नाथं सर्वलोक नमस्कृतम्।
कौसल्या जनपद् रामं दिव्य लक्षण संयुतम्।।

अर्थात् पुत्रेत्यष्टि यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् जब दो दो मास की छः ऋतुयें बीत गयीं तब बारहवें मास में चैत्र के शुक्ल पक्ष की नवमीं तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्न में कौशल्या देवी ने दिव्य लक्षणों से युक्त सर्व लोक वन्दित जगदीश्वर श्रीराम को जन्म दिया। उस समय पांच ग्रह अपने अपने उच्च स्थान में विद्यमान थे तथा लग्न में चन्द्रमा के साथ वृहस्पति विराजमान थे।

बुन्देली लोक गीतों में भी कुछ इसी प्रकार का निम्नानुसार वर्णन मिलता है –

चैत सुकुल नौमीं तिथि खौं जब आयो पुनर्बसु नक्षत्र।
करक लगन में जनम लियो, खुसी मच गई सरवत्र।।
राजा राम ने अजुध्या में जनम लओ।
भओ महासोर, भओ महासोर।
चैती दुपहरिया बारह बजे, दसरथ भये आनन्द विभोर
भओ महासोर – भओ महासोर।
सूनी अजुध्या में आनन्द फैल गओ, सबके मन नाचै मोर
भओ महासोर भओ महासोर।

श्रीराम जी के जन्म लेने के बाद पूरी अयोध्या में हर्ष का वातावरण छा गया। बाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड के अष्टादश सर्ग के श्लोक संख्या १९में अयोध्या में हर्ष का वर्णन करते हुये लिखा है–

गायनैश्च विराविण्यो वादनैश्च तथा परैः। विरेजुर्विपुलास्तत्र सर्वरत्न समन्विताः।।

अस्तु अयोध्या में सब ओर गाने बजाने वाले तथा दूसरे लोगों के शब्द गूँज रहे थे। दीन दुखियों के लिये लुटाये गये सब प्रकार के रत्न वहां बिखरे पड़े थे।

ऐसे आनन्द के अवसर पर बुंदेलखंड भी कहां पीछे रहने वाला था। यहां पर भी आनन्द मग्न अयोध्या का वर्णन करते हुये गाया जाता है–

सगुन भये राजा महलन आये
सो मोरी गुइयां सखियन मंगल गाय। सगुन भये...।।
सो मोरी गुइंया कंचन कलस धराये। सगुन...।
दुआरिन चौमुख दियला जराये। सगुन भये...।
सो मोरी गुइयां सुख आज सुहाये। सगुन भये....।।

अयोध्यावासी श्रीराम जी के जन्म लेने के बाद झूम झूम उठ रहे थे। एक अयोध्यावासी बहू अपनी सासू मां को अपने स्वप्न

के विषय में बतलाते हुये कहती है –

सपनों सुनो मोरी सास जी
पहले पहले को सपनो सुने मोरी सासो जी महाराज
राम लखन दोऊ भइया अंगन बिच तप करै महाराज

शिशु जन्म के पश्चात् दाई द्वारा नरा काटा जाता है पुत्र जन्म की खुशी में दाई भी नखरे लेती है और नरा काटने में आना कानी करती है, दाई के नखरे का जीवन्त दर्शन इस गीत में दृष्टव्य है –

कैसी मचल रई दाई, अवध में कैसी मचल रई राई।
सुरंग चूनरी कौसिल्या लये ठाड़ी, बई न लैबै दाई।
सुन्ने को हार कैकई लये ठाड़ी, कूलो मरोर गई दाई।
सुन्ने की तिलरी सुमित्रा लये ठाड़ी, मुखई न बोले दाई।
मुतियन हार राजा लये ठाड़े, नजर न फेरे दाई।
नरा तुमारो जबई हम छीने, दरसन दैं रघुराई।
रूप चतुर्भुज प्रभु दरसायो, खुसी भई अब दाई।
दरसन लै कै घर खौं आई, घर घर करत बड़ाई।

भगवान श्रीराम का जन्म हो गया। वे पालने में पड़े है। कौशल्या माता अलग पड़ी है। इतने में श्रीरामजी का रुदन प्रारम्भ हो जाता है। कौशल्या माई सोहर में पड़ी है, अतः वे वहीं से आवाज लगाते हुए कहती हैं –

झुलाओ माई श्रीराम परे पालना हो
जो मोरे ललना को पलना झुलावै
तीये गढ़ा दउं ककना
काऊ गुजरिया की नजर लगी है
सो रोवत है मोरो ललना
राई नोंन उतारें बुआ जी खुसी भये ललना।
झुलाओ माई श्रीराम परे पालना हो।

इधर जच्चा के खाने पीने की व्यवस्था की जाती है। जच्चा के लिये विशेष प्रकार के पुष्टिवर्धक तथा संक्रामक रोग निरोधक लड्डू बनवाये जाते हैं, जिनमें सोंठ, बादाम, चिरौंजी, देसी घी आदि बहुतायत में मिलाया जाता है। इन लड्डुओं के विषय में यहां की महिलायें गाती हैं –

सोंठ के लडुआ चिरपिरे रे, लडुवा बंधावे जिठानी मोरी आई
बिन्ना तनक सो लडुवा हमें दे राखो, लडुवा फोरत मोरी बहियां दुखत है
सैगों दओ नहिं जाय, पसेरी भर जिज्जी घी डरे है
नरियल के भेला नौ डरे हैं, बदामन के बीजा सौ डरे हैं
चिरौंजी दाने चौथियों से, चरुआ चढ़ावे सास मोरी आई
बहू तनक सो लडुवा हमें दे राखो, लडुवा फोरत मोरे कौंचा दुखत है।
सैगों दओ नहिं जाय।

जच्चा की भोजन व्यवस्था के बाद उसके पीने के लिये विशेष प्रकार का जल तैयार किया जाता है, जिसमें शरीर के विकारों को दूर करने हेतु एवं गर्भजनित दोषों के निवारणार्थ तमाम आयुर्वेदिक औषधियों को मिलाकर एक मटके में पानी को गर्म किया जाता है। यही औषधियुक्त जल ठण्डा होने पर जच्चा को प्यास लगने पर पिलाया जाता है। इस औषधियुक्त जल के बनाने की सम्पूर्ण प्रक्रिया चरुआ धराई कहलाती है। इस कार्य को घर की बुर्जुग स्त्रियां करतीं हैं। जब यह चरुआ धराई की प्रक्रिया चल रही होती है तब आनन्दमग्न होकर महिलायें गाती है –

सास जी मांगें चरुआ कौ नेंग
जच्चारानी ढकेल रई घुटनन टेक
मांगे खवासिन बड़े बड़े लड्डुआ
जच्चारानी ने चटा दयें दोऊ गलुआ
मांगे जिठानी नथ दुलरी
जच्चा रानी ने टोर लई नांक फुलरी
मांगे ननद रानी हांत मूंदरी
जच्चारानी ने टोर लई दसों ऊँगरी।

इधर पूरी अयोध्या में तो आनन्द ही आनन्द है। सब हर्ष से विभोर होकर अपने अपने कार्यों में व्यस्त है। मालिन भी सोचती है कि जल्दी से राजा दशरथ के महल के दरवाजों की सुन्दरता व मंगल सगुन हेतु बन्दनवार बनाकर ले जाये। वह रास्ते से जैसे ही जाती है कि एक नारी जिससे श्रीराम जन्म के विषय में ज्ञात नहीं था उत्सुकता वश उस मालिन से पूंछ ही लेती है –

बंदनवार कहां लये जातीं जौ बन्दनवारो
नगर अजुध्या में सुत भये सजनी राजा महीपत के नाती
राजा दसरथ के पूत भये है रघुकुल जोत उजयार दई बाती
उजयार दई बाती जौ बन्दनवारो का लये जातीं
रानी कौसिल्या की कूंख जुड़ानी, सब सखियन की सीतल भई छाती।
नगर अजुध्या में दानी भये है, लै लै दान मगन भई सखियां
मगन भई सखियां, जौ बन्दनवार कां लये जातीं।

मालिन को बन्दनवार लिये जातीं देखकर पटवाईन भी अपने काम में तेजी से जुट गई। उसने अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष से संतृप्त पंच परमेश्वर के प्रतीक स्वरूप झूमर को तैयार किया और अयोध्या नरेश राजा दशरथ के महल में पहुंच गई परन्तु उसने झूमर को बांधा नहीं क्योंकि–

दशरथ में अंगना परी भीर, पटवाईन मांगे नेग, झूमर बंधवाई
रानी कौसल्या हमेल लयें ठाड़ी, पटवाईन न लेय अंगड़ाई झूमर बंधवाई।
रानी कैकई, कंकना लये ठाड़ी, पटवाईन न देत दिखाई झूमर बंधवाई।
रानी सुमित्रा करधनी लये ठाड़ी, पटवाईन दिखावे ढिठाई झूमर बंधवाई।
रामलला को हेरत रै गई, सूरत मन भरमाई झूमर बंधवाई।
पटवाईन ने झूमर टांग दओ, खुसी खुसी घर जाई झूमर बंधवाई।

इस तरह से मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान श्रीराम के जन्म लेने से अयोध्यापुरी धन्य हो गई। वहां के रजकण शिरोधार्य हो गये। वहां के निवासी धन्य हो गये और बुंदेलखण्ड में समवेत स्वरों से गुंजायमान होने लगा –

धन्य गांव धन ठांव धन्य वे पुर के बासी
धन्य सभा बैकुण्ठ जहां वे रहे विकासी
ग्यान झड़ी लगी रहे, बरसे प्रेम हुलास
रजधानी रघुनाथ की जौ हमपै न बरनी जाय।

– संस्थापक व निदेशक, बुंदेलखण्ड संग्रहालय, उरई □

वार्ता बुन्देली में –

बुंदेलखंड की लोक कलायें और उनका व्यावसायिक स्वरूप

– डॉ. दुर्गेश दीक्षित

हमाओ बुंदेलखंड हरतरा सैं भरो पूरो उर हरों भरो है। इतै माँ प्रकृति की हमेशई कृपा रई है इतै के जंगल हरतरा के पेड़ पौदन उर तरा तरा की वनस्पतियँन सैं भरे पूरें है। इतै की नदियाँ अपने अमरत जलसैं खेतन की फसलन खौं सीस सीस कै अनाज कौ मन मुक्तौ भण्डार भर रई हैं। इतै के पहर पहरियाँ कई तरा के खनिजन सैं भरे हैं। इतै के नर नारियँन में कितनी उमंग उर उत्साह है। अपने काम के लानें। इतै कौ साहित्य इतै की संस्कृति उर इतै की कला भारत भर सै न्यारी है। ऐई सैं तौ एक कवि ने कई है कै ''ईकी बनक और बन्नी सी, सब भारत सै न्यारी'', बुंदेलखंड के अमर कवि घासीराम व्यास तौ ईकी शोभा पै न्योछावर होकै कै उठे ते –

''जाके शीश जमुन डुलाबैं चौर मोद मान,
नर्मदा पखारै पाद–पद्म पुण्य पेखी है।
कटि कल केन किंकिणीसी सी कलधौत कांति,
वेतवा विशाल मुक्त माल सम लेखी है।।
व्यास कहें सोहै सीस फूल सम पुष्पावति,
पायजेव पावन पयस्विनी परेखी है।
ऐहो ससि साँची कहौ, साँची कहौ, साँची कहौ,
दिव्य भूमि ऐसी दुनी और कहूँ देखी है।।

साँसी कई जाय तौ बुंदेलखंड में तौ लोक कला कौ भण्डार भरो है। कला तौ मानव जीवन कौ प्रमुख अंग है। ईके बिना तौ आदमी जियई नई सकत। जाँ देखौ जाँ पग पग पै ईकौ रूप दिखान लगत। उर लोक कला तौ लोक जीवन में दूद उर पानी की तरा घुल मिल गई है। उयै कैसऊ अलग नई करौ जा सकत। कछू कवियँन ने तौ जा तक कै दई कैं ''कला तीर्थ खजुराहो।'' खजुराहो तौ मूर्तिकला कौ तीरथ है। ऐसऊ चित्रकला कौ तीरथ ओरछा हैं कजन इयै वास्तुकला की नजर सै देखौ जायतौ इतै के तला, बावरी, मन्दिर, किले उर गढ़ियन खौ देख कै अचम्भौ होन लगत है। कजन कभँऊ अपुन विदिशा की पहरियँन के बीच में उदयगिरि की गुफन में गये होव तौ देखौ हुईयै कै कारीगरन ने अपनी बारीक छैनी सै ओई पहरिया खौं काटकाट कैं ओई में मूर्ति गढ़ दई। खजुराहो के मन्दिर की मूर्तियन खौं देख कैं विश्व भर के लोग चकित हो रये हैं। मन्दिरन के मेहराव उर उनमें फूल पत्तियों उर बेलों की शोभा दर्शकन के मनखौं मोहित करत रत है। ओरछा के लक्ष्मी मंदिर की दीवारन पै बने चित्र आज तक नये से लग रये हैं। जिने जंगल की पत्तियन के रस और माटी के रंगन सैं तैयार करो गओ है। कजन देखने होय तौ पन्ना के जुगल किशोर के उर प्राननाथ के मन्दिरन में वास्तुकला कौ सुधरौ उर सँवरौ रूप दिखा रओ है। पपौरा अहार उर द्रोणगिरि के जैन मन्दिरन में बुन्देली लोक वस्तु कला कौ निखार दिखाई दै रओ है। साँची के स्तूपन में बुन्देली बौद्धकला के दर्शन हो रये हैं।

इतै कौ लोक संगीत, लोक वाद्य, लोकनाट्य, लोकगीत, लोकनृत्य, लोकचित्र, लोकोपचार लोक सज्जा (गुदना गुदवाना) तौ लोक कलन के प्रमुख रूप हैंई। उर इतै के गाँवन में कैऊ तरा की कलायें दिखाई दै रई हैं। जैसे इतै के लुहार लोहे खौं पिघलाकैं बन्न बन्न के औजार हसियाँ, खुरपी, कुलइयाँ, बरछी, भाला, तरबार, सिरौतिया, फार, पाँसे तैयार करत रत है। सुनारन की कारीगरी तौ भौतिई बारीक होत है। चाँदी सोने के तरा तरा के जेवर बना कैं अपनी कला खौं निखारत रत हैं। तमेरे पीतर उर काँसे के कैऊ तरा के बर्तन बना बना कै बेंच रये हैं। इतै के बाढ़ियन की काष्ट कला में तौ दिन पर दिन निखार आऊत जा रओ है। साँसी कई जाय तौ छतरपुर की काष्ट कला तौ देखबे लाख है। इतै के बुनकरन की ४ उर उतै फर्नीचर की २५ दुकानें चल रई हैं।

कारीगरी तौ हम मऊरानीपुर उर रानीपुर के हात के बुने कपड़न में देख सकत। रानीपुर टैरी काट की धूम तौ सारे देश में है। चँदेरी की सारी उर कोसा के साफा आज तक इतै के बड़े बुजुर्गन के सिन्दूकन में सिते धरे हैं। इतै कें कुदेरे कैऊ तरा कै लकड़ी के खिलौना बना बना कै अपनौ पेट पाल रये हैं। कुमारन की तौ कनई का है उनकी तौ जिन्दगी चकई पै घूमत रत। मलिया, दिया, डबुलिया, घैला, गगरी, हड़िया, तईयाँ, नाद, डारिया, हँडियाँ बना–बना कैं इतै गरीब जनता कौ काम चला रये हैं जिनमें उनकी कला कौ समय समय पै निखार होत रत। माटी के खिलौनन की बनावट उर उनकी चमक दमक जन साधारन के लानें लुभावनी बनीरत। अकेलैं तौ हर गाँव में एकाध कुमार जौ धन्धो कर रओ है। इतै कौ लोक संगीत तौ बिलकुल्लई निरालौ है। हर त्योहार हर ऋतु उर हर उत्सव के अवसर पै अलग अलग तरा के लोकगीत गाये जात हैं। जैसे सोहरे, दादरे, बनरा संस्कार गीत हैं, जिनकी लोक ध्वनियाँ अलग हैं। लोक धुन के सुनतनइ पतों लग जात कै जौ कौनसौ गीत गाओ जा रओ है। कार्तिक के गीत, लमटेरा, बाबा के गीत, बिलवाँई, भजन, दिवारी, फागें, आल्हा, ढोला, पण्डवा बुन्देलखण्ड के लोक संगीत में बँधे हैं। उर लोक धुनें उर लोक वाद्य सब अलग अलग तरा के होत हैं। इतै के लोक संगीत कौ प्रभाव अकेलै भारतई में नईयाँ पूरे विश्व में दिखाई दै रओ है। इतै की लोक संगीत मण्डलियाँ विश्व के कैऊ देसन में अपनी कला कौ प्रदर्शन करकै नाँव कमा रई है। सागर निवासी लोक गीत गायक हरगोविन्द विश्व के आल्हा की धुने दिल्ली के भवनों में गूँज रई है। टीकमगढ़ की असगरी बाई कौ ध्रुपद गायन उर बिजना महाराज की पखावज की चर्चा आज सारे संसार में हो रई है। महाराज वीर सिंह जू देव के दरबार की गायिका असगरी बाई खौ तौ भारत सरकार की ओर सै पद्मश्री सैं सम्मानित करो गओ है। ईसै बड़ो लोक शास्त्रीय संगीत कौ गौरव और का हो सकत। इतै के देशराज

पटैरिया खौं आज पूरौ देश जानत है।

लोक नृत्यन की तौ कनई का है। इतै चाँचर नृत्य जियै कोऊ मोनिया नृत्य सोऊ कन लगत। राई तौ इतै कौ भौतई प्यारौ लोक नृत्य है। राई कौ नाँव सुनतनई गाँव के लोग लुगाई दौर परत, उर रात रात भर जग कै ईकौ आनंद लेत रत। काड़रा नाँच करवे बारे सारंगी बजा बजा कैं, नांच दिखा दिखाकैं लोगन खौं लुभाऊत रत। गाँव की कछू जातन के व्याव काज के मौका पै रावला नाँच दिखाव जात बीच–बीच में कछू हँसी मजाक के स्वाँग दिखा–दिखा कैं मनोरंजन करो जात। कभँऊ कभँ व्याव बरातन के मौका पै दल दल घोड़ी कौ नाच दिखाव जात जियै देख देख कैं बच्चा हँसत खिल खिलात रत। कभँऊ कभँऊ दस्टौन, पलना उर कभँऊ घर में नई दुलइया आबे के मौका पै परवार की औरतें आनंद में डुबकै बधाई नाँच दिखान लगती हैं। दल दल घोड़ी कौ मजा तौ डिस्को डांस ने सब किरकिरो कर दओ। घरन की दीवारन पै तरा तरा के लोक चित्र बनाबे कौ जादाँ चलन है। त्योहारन के समय पै कैऊ तरा के चित्र बनाये जात। जैसे नौरता के समय पै सूरज चन्दा उर राक्षस कौ चित्र,.व्याव के समय पै दरवाजन की दीवारन पै गनेश शंकर, पार्वती उर मंगल कलश के चित्र, हरछट के दिनाँ हरछठ मइया कौ चित्र, दिवारी के दिना सुराती लेखन, नौरता के चौतरा पै कैऊ तरा के चौक, मिट्टी उर गोबर की कैऊ तरा की आकृतियाँ लोक चित्रकला के रूप में माने जा सकत। हराँ हराँ अब जा परम्परा मिटत–सी चली जा रई है। इतै की औरते मेहदी माहुर, बिन्दी, काजर तक में कला कौ प्रदर्शन करत रती है।

इतै के अहिरवार भइया जरीदार पनइयाँ खिचऊ पनइयाँ उर मुण्डी पनइयाँ, उर व्याव कौ जरीदार जोड़ा बनाऊत में अपनी कला कौ प्रदर्शन करत रये हैं। बाँस के वर्तनों में इतै के वंशकार भाइयों की कला, खजरी उर ताड़ के उपकरणों में मालियँन के हाँत की कला गोटादार उर कलियँन दार कपड़न में इतै के दर्जियन की कला दिखाई देत रत हैं।

इतै के लोक नाट्य में नौटंकी, रामलीला उर रास लीला तौ बहुत समय से प्रचलन में है। अकेलै इतै की जमीन से जुड़े भये स्वागई ऐसे होत हैं जिनें साँसौ लोक नाट्य कओ जा सकत है। ईमें तरा तरा कौ वेश भूषा विचित्र संवाद उर अभिनय कर करकैं बुंदेलखंड की जनता कौ खूबई मनोरंजन करो जात। इयै देख देख कै उर उनके संवाद सुन सुन कैं हँसी के फब्बारे छूटत रत। इयै गाँव में मनोरंजन कौ सबसे अच्छौ साधन मानौ जात है। लोक वाद्य वादन सोऊ एक भौत बड़ी कला है। रमतूला, ढपला, तुरई, बाँसुरी, सारंगी, ढोलक, नगरिया, झेला, झाँऊ, मजीरा, सारंगी तमूरा हर आदमी नई बजा सकत। इनकौ बजाबौ सोऊ एक भौत बड़ी कला है। जौ ई कला में निपुन होत वौ पशु पंक्षी उर आदमियँन कौ मन मोह लेत है।

इतै इन लोक वाद्यन के कलाकारन की सोऊ कमी नइयाँ। अकेलै हराँ हराँ ई कला कौ लोप होत जा रओ है। बुंदेलखंड की प्राचीन कलाओं में गुदना गोदने की कला अब क्याँऊ दिखातई नइयाँ। इतै की सुन्दरियाँ अपने हाथों पाँवो गालों उर छाती पै कई तरा के गुदना गुदवाँ कै सुन्दर उर आकर्षक बनत रत्ती। गुदना गोंदने बालो कौ धन्धौ बड़ी तेजी सै चलत रत्तो। वे अपनी पेटी उर सुई लैकै गाँव गाँव घूमत रत्ते। कोनँऊ महिला अपने हाँतन पाँवन में मोर पपीहा के चित्र, फूल, बेल–बूट उर कभऊँ अपनी बाँहों में अपने अपने प्रियतमों के नाम गुदवा लेत तीं। उन दिनन.जा कला पूरे निखार पर बनी रत्ती। अकेलै आज जा कला तौ पूरी तरा सैं हिलबिल–नई हो गई है। साँसी कई जाय–तौ आज कल बुन्देली लोक कलाओं की हालत ठीक नइयाँ। हराँ–हराँ लोक संगीत सैं लोगन कौ मन दूर होत चलो जा रओ है। वा उमंग उर वौ उत्साह आज कितऊ नई दिखात। वा ढोलक वा नगड़िया, उर वे झेला, मजीरा क्याँऊ बजत नई सुना परत। फाग, दिवारी, चैत उर कातक आज सब सूने–सूने दिखा रये। पैलाँ तौ हर गाँव में दो दो तीन तीन लोक संगीत की मण्डलियाँ होत ती। आज वे सब तितर–बितर हो गई है। राजा शाही जमाने में लोक नृत्यन की धूम रत्ती। मराज उने इनामें बाँटत ते। फागन और ख्यालन के फड़ जम जात ते। आज कछू क्याँऊ नई दिखा रओ। टी.वी. उर रेडियो ने इनें भौत प्रभावित करो हैं लोक नाट्य कौ सोऊ चलन कम होत जा रओ। राजाशाही जमाने में राई कौ भौत चलन हतो। राई लोक नृत्य के लाने बेड़िनियन के गाँव के गाँव बसे ते। उत्तर प्रदेश की महरौनी तहसील के मड़ावरा के लिंगा एक रनगाँय नाव कौ गाँव है। जितै पैल ८९ बेडिनियन के घर हते। आज उतै कुल ग्यारई घर बचे है। उनन ने नाँचवे कौ धन्धौ छोड़कैं पेट पालबे के लाने औरये धन्धे अपना लये हैं। हमने अपनी आँख सै देखो आज सैं बीस साल पैलाँ टीकमगढ़ में २१ गुदना गोदबे बारे हते। आज उतै एकऊ नई दिखा रओ। ऐसइ पैजना ढारबे बारे औदिया सुनारन की नौ भट्टी चलत ती। आज ओई टीकमगढ़ में एकई भट्टी रै गई हैं एक जने ने तौ पीतर की मूर्ति ढारबै कौ काम अपना लओ है। लुहारी की लोक कला तौ हराँ हराँ समाप्त होत चली जा रई। आज सै बीस पच्चीस वर्ष पैलाँ हर गांव में लुहार, बाढ़ई, कुमार उर चमार उर सुनारन के अच्छे धन्धे चलत ते।,टीकमगढ़ नगर में १३ लुहारन की भट्टी १४ बाढ़ईयँन की दुकानें, २१ सुनारन की दुकाने उर १५ जूतन की दुकानें चलत ती। आज लुहारन की दोई भट्टी रै गई। सात बाढईयँन ने फैन्सी फर्नीचर बनाबे कौ धन्धौ अपना लओ उर जेवर बनाबे वारे कुलपाँचई सुनार बचे। उनमें सै कछु अन तौ फैन्सी ज्वैलर्स की दुकानें खोल लई उर कछू जने चाय पान की गुमटी चलाउन लगे। टीकमगढ़ बस स्टैण्ड पै जूता बनाबे वारन की चार दुकानें चल रई है। अकेलै लिधौरा गाँव में ३५ दुकानें चल रई हैं। पैला तौ हर गाँव में बाँस के बर्तन बनाबे कौ धन्धौ खूब चलत तौ हर गाँव के दस बारह बसोरन के घर में बर्तन बनत रत्ते। आज तौ बड़ी मुश्कल सै एकाध घर में जौ धन्धौ चल पा रओ हैं जेऊ हाल मालियँन कौ है। उनन के धन्धे खौ चौपट कर डारे, ई प्लास्टिक के जुगनें। ऐसौ लग रओ है कै इतै की लोक कलायें अंतिम सांस लै रई हैं। उनें प्रोत्साहन उर सुरक्षा की जरूरत है। □

— कुण्डेश्वर, टीकमगढ़

'कलश' काव्य–कीर्ति – एक अनुशीलन

– रामनारायण शर्मा

कन्हैया लाल शर्मा जी साहित्य जगत में 'कलश' के नाम से प्रख्यात रहे। उनका यह उपनाम वास्तव में उनके नाम से प्रथमाक्षरों क–ल–श के योग से बना। यही 'कलश' नामकरण उनके समस्त साहित्यिक प्रतिमान की कीर्ति बना रहा। 'कलश' जी सच्चे रूप में साहित्य रूपी भव्य भवन के शिखर के शोभित कलश की भांति दैदीप्तमान है। उनके इस नाम की सार्थकता समस्त काव्य–सृजन में समग्रता के साथ 'बुन्देलखण्ड' के दर्शन होते हैं। इसीलिये उन्होंने स्वयं लिखा है –

विन्ध्य अचल मम पिता, बेतवा मेरी माता।
बुन्देली साहित्य रस भरा, कलश कहाता।

जन्म स्थान – इसी विन्ध्याटवी की सुरम्य उपत्यकाओं के अंचल में ग्राम भसनेह जिला झांसी में 'कलश' जी का जन्म सन् १९१८ ई. में हुआ था। आपके पिता आचार्य चतुर्भुज 'चतुरेश' एक कवि, ज्योतिषाचार्य थे। आपको साहित्य विरासत में मिला।

शिक्षा–दीक्षा – आपकी प्रारम्भिक शिक्षा गांव एव पास के कस्बा गुरसराय में हुई। आप एक मेघावी छात्र रहे। मिडिल और साहित्य रत्न आदि की शिक्षा के बाद बी.टी.सी. का कोर्स प्राप्त कर आप गरौठा में अध्यापन कार्य में जुड़ गये थे। किन्तु आप एक जागरूक नागरिक रहे जिसके कारण आप समकालीन स्वतंत्रता समर के कार्य से चर्चा में रहे। इन्हीं दिनों आप ने खुलकर अछूतोद्धार, जनजागरण के विभिन्न कार्यों में अपना योगदान दिया।

अध्यापक 'कलश' – कन्हैया लाल कलश अध्यापक के रूप में एक सत्यनिष्ठ, अनुशासित, गुरुवत प्रख्यात रहे। आपके इन्हीं गुणों से शासन ने इन्हें अध्यापकों के प्रशिक्षण जैसे गुरुतर दायित्व को सौंपा, जिसे आपने सचल शिक्षक दल के पद पर रह कर पूरे झांसी परिक्षेत्र में भ्रमण कर पूरा किया। इससे आपको बुन्देली भाषा, संस्कृति और लोक–साहित्य का प्रभूत ज्ञान हुआ जो आपके साहित्य का आधार बना। सन् १९५२ ई. में परिस्थितिवश आपको अपने गाँव लौटना पड़ा जो उनके सृजन का क्षेत्र रहा।

साहित्य सृजन – वैसे तो 'कलश' जी को साहित्य विरासत में मिला था। किन्तु उन्होंने अपनी काव्य–कला लगभग १५–१६ वर्ष की आयु में शुरू कर दी थी। अध्यापन कार्य करते आपकी कविताएँ शारदा और आर्य महिला जैसी पत्रिकाओं में प्रकाशित (सन् १९३८–३९) हुई। इसी समय आपने श्रीमद्भागवत गीता और वेगानुशासन जैसे ग्रन्थों का अनुशीलन प्रारम्भ कर उन्हें हिन्दी पद्यानुवाद के रूप में सृजित किया।

भाषाविद्– कन्हैया लाल 'कलश' विभिन्न भाषाओं के जानकार थे। उन्होंने अपने अध्यापन और अध्यापकों के प्रशिक्षण के भ्रमण कार्य में भारत की पूर्वकालीन सप्तभाषाओं का ज्ञान अर्जित किया जिससे उद्भूत विभाषाओं मुख्यतः प्राकृत अथवा अपभ्रंश का उन्हें ज्ञान हुआ। इससे 'कलश' जी को बुन्देली भाषा के उद्भव और विकास के स्रोतों का पता चला। यही नहीं इसी काल में बुन्देली लोक–गीत बुन्देलीसंस्कृति के विषय में उन्होंने प्रामाणिक सामग्री जुटाई थी। जो उनके समग्र सृजन में दिखाई देती है।

प्रमुख प्रकाशित कृतियाँ – १. शोभाशती (१९४२–४३), २. गीता माधुरी (१९४८), ३. गीता दर्शन (१९४९), ४. दीपशिखा (१९५७) रानी झांसी का शौर्य काव्य, ५. बुन्देली टोने–टोटका, ६. बुन्देली शब्दमणि माला, ७.बाल गीत, ८. बुन्देली बालकों के खेल, ९. आने–अटके (१९८६) १०. बुन्देली शब्द सम्पदा, ११. बुन्देली के स्वर (लोकगीत), १२.कोमल कमल (प्रबन्ध काव्य) १९८५ ई., १३. बुन्देली भाषा का व्याकरण – जिस पर आपको उ.प्र. हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार मिला, १४. श्रुति लेख (बुन्देली महाकाव्य), १५. बुन्देली भाषा – साहित्य एवं संस्कृति १९११ ई., १६. मेघ संदेशौ (मेघदूत का बुन्देली पद्यानुवाद), १७. बहरतबी लो (नोटंकी) १८. शब्द अनुमति सतसई, १९. जयदेव के गीत गोविन्द का अनुवाद। इसके साथ आपकी लगभग २०० कहानियाँ और २५०० आलेख प्रकाशित हुये।

पत्रकारिता – आपने १९५८ ई. में बुन्देली वार्ता प्रेस से 'बुन्देली वाता पत्रिका प्रारम्भ कर बुन्देली साहित्य का प्रचार–प्रसार किया था।

सम्मान – प्रमुख सम्मान इस प्रकार हैं – काव्य–मनीषी, विद्यासागर, साहित्य वारिधि, सहस्राब्दि सम्मान, मित्रपुरस्कार, गणेश शंकर विद्यार्थी, पत्रकार सम्मान, राव बहादुर सिंह बुंदेला बसारी (छतरपुर) सम्मान, बुन्देलखण्ड गौरव सम्मान।

'कलश' जी का साहित्यालोक – साहित्य वारिधि कन्हैया लाल कलश ने साहित्य की प्रत्येक विधा पर समाधिकार पूर्ण रचना की हैं उनके काव्य एवं गद्य की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुईं। जिनसे 'कलश' जी के साहित्य की झलक मिलती है। जिसका संक्षेप में यहाँ दर्शन कराया जा रहा है।

कन्हैया लाल 'कलश' ने बुन्देली ग्राम के जन जीवन का अपने काव्य में सुन्दर वर्णन किया है। उनके द्वारा लिखी 'भोर' कविता दृष्टव्य है –

सूरज ऊरौ तारन तार, धरती करन लगी सिंगार।
मंदिर की बज उठी झालरें, खुले गाँव के द्वार। आदि

'कलश' जी का बुंदेली–गौरवगान कितना सुन्दर है –

मंडित मिखिर अखंड, सुन्दर सब विधि सुखण्ड।
यह है बुन्देलखण्ड, विन्ध्य कौ दुलारौ।

राष्ट्रभाव – कवि के काव्य की सम्पूर्णता उसके द्वारा रचित राष्ट्रभाव के भावागीत से ही होती है। 'कलश' काव्य में इन्हीं भावों को देखिए –

१. जीवित रहो तो यों कि तुम निज राष्ट्र को जीवित करो।

यदि राष्ट्र मरता हो कभी तो तुम स्वयं पहले मरो।

२. निज राष्ट्र रक्षा के लिये, कर दो समर्पित अस्थियाँ।
यों धन्य कर लो अस्थियाँ, पाओ महान प्रशस्तियाँ।।

काव्योद्गार – काव्य–धारा तो युगानुरूप प्रवहमान होती हैं। स्वतंत्रता के बाद समाज निर्माण में 'कलश' जी इस नूतन सृजन का आवाहन करते हैं –

उठो कलम की तीक्ष्ण नोक से, ओ कवि आओ इन्हें चीर दो।
अरे! मवाद निकालो जल्दी, नूतन सृजन करो जन–जन का।

वहीं पर 'कलश' जी ने अपने 'युग बोध' काव्य द्वारा वर्तमान का सही चित्रण किया है –

सूरज की कैसी यह किरणें, जिनमें किंचित ज्योति नहीं है।
रात चाँदनी है, चंदा है, किन्तु बुद्धि जीवी अंधा है।
उनका कवि तो शब्दों का शिल्पी हैं हम तो नया बनायेंगे।
का स्वप्न दृष्टा है।

नारी विमर्श – कन्हैयालाल 'कलश' नारी तत्व के प्रवर्तक एवं पक्षधर रहे। यही सब उनके काव्य में भी झलकता है –

रजत कनक होते कहीं शोभा के आधार
तो अब तक तिय पहिनती सचमुच कनक पहार
(शोभा माधुरी)

यहाँ कवि नारीत्व को शोभा–अलंकार की दशा से ऊपर देखना चाहता है और नारी–शौर्य की आभा से अलंकृत हो देखता है। यही लक्ष्मीबाई के शौर्य गाथा में निहित है –

झांसी के गढ़ से गिरी, इठलाती नीली ध्वजा।
प्रलयकारिणी धन्य है, लक्ष्मीबाई की भुजा। (दीपशिखा)

कौमी एकता – कन्हैया लाल 'कलश' सम्प्रदाय, सद्भाव के मानने वाले थे। उन्होंने जीवन पर्यन्त सम्प्रदाय जाति विद्वेष के प्रति अपनी भावनायें व्यक्त की हैं। एक उदाहरण देखिए –

१. निज राष्ट्र हित में लगे, जन–तन–अंग सब अभिभाज्य हैं।
इसमें अवर्ण–सवर्ण के मतभेद करना त्याज्य हैं।
(कोमल कमल)

२. हिन्दू मुसलमानों सुनो, सब एक बार विचार लो।
तुम एक ही संतान हो, अपने मनों को मार लो।।

शशि की रानी काव्य – यहाँ डॉ. 'कलश' की काव्य कला का वास्तविक रूप देखते ही बनता है –

सदन सकल कल कल रव कर कर कुल कुल युत मिल प्यारे,
खग मग मगन गगन हो भागे, लख दिग् मुख अरुणारे।
कलित कुरंग कीश रव रस रव, कीर काग के की का।
दिड् टिन दिड टिन निर्गत मानो रव मृदंग तुरही का।

'कलश' दर्शन काव्य – कन्हैयालाल 'कलश' ने वेद पुराण उपनिषद शास्त्रों का विशद अध्ययन किया था। उसी मर्म का काव्य अपने अपनी कृति कोमल 'कमल' के दिव्यालोक खण्ड में समाहित किया है। एक पग आगे बढ़ कर सृष्टि रचना को दृष्टि प्रदान कर कहता है –

१. पंचतत्वयुत, वही धरा का लोक रचाते
निर्मित होता जनालोक, जन–गण से मिलकर।।

२. दिव्यालोक रूप में प्रस्थित है सचराचर।
नेत्र चाहिए इसे निरखने हेतु प्रखरतर।
तिरोभाव में यही ब्रह्म निर्गुण कहलाता।
आबिर्भाव हुआ माया मय जग बन जाता।।

अनुवाद काव्य – डॉ. कन्हैया लाल कलश ने अपने प्रारम्भिक जीवन में ही 'वेगानुशासन' और 'गीता का पद्यानुवाद किया था। कलश जी एक सतत अध्येता रहे। उन्होंने जयदेव के 'गीत–गोविन्द' का हिन्दी में पद्यानुवाद किया। इस में उन्होंने राधा–माधव केलि कलाप को मायाब्रह्म (जीव–ईश्वर मिलन (प्रणय) की भावाभिव्यक्ति की है। इसके कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत है –

मूल – धीर समीरे यमुना तीरे बसति बने बनमाली।
गोपी पनि पयोधर मर्दन चंचल कर युग शाली।

अनुवाद– मंद पवन में यमुना तट पर बनमाली बसते हैं।
गोपी पीन पयोधर मर्दन चल कर से करते हैं।

अर्थांग–भक्तिभाव यमुना का तट है, सुमरन श्वासें मंद पवन।
बन में बसते वनमाली हैं, ब्रह्म स्वरूपी आनन्दघन।
गोपी पीन पयोधर मानो, इन्द्रिय विषम विषम चिन्तन
ज्ञान क्रिया करके विषयों का, करते हैं हरि निर्वारिन,
यही क्रिया व्यवहार जगत में, है गोपी स्तन मर्दन।

साहित्य वारिधि स्व. 'कलश' जी का कवि कुल गुरु कालिदास रचित मेघदूतम् अनुवाद विषद व्याख्यातित तथा पुष्पिकायों सहित अनेक बिन्दुओं को संश्लेषित एवं उत्कृष्ट है।

मूल – तेषां दिक्ष प्रथित विदिशा लक्षणां राजधानी।
गत्वा सद्यः फलभविकलं कामुक त्वस्य लब्धा।
तोरोपांतस्तनित सुभगं पास्यसि स्वादुस्मात्।
शुभ्र भगं मुखमिव वेत्रवत्याश्च लोर्भि।

बुन्देली भावानुवाद –

ऐसो है वो देस दसानी, विदिसा है रजधानी।
ऊ प्रसिद्ध नगरी जा जल्दी, करियो सो निगरानी।
बाकौ जैसो नाव सुलच्छन पइहौ तुम लासानी।
लास विलासन की सामग्री, सबरी उतै समानी।

दिशाबोध – ऐसे विपुल साहित्य के रचयिता साहित्य के अनन्य साधक, शारदा के आराधक का यह दिशा बोध अब भी हम–सब के साथ दिनकर बन डगर दिखाता रहेगा –

निराश्रित हो रात्रि में जब, सब दिशाएँ लुप्त सी हों।
उस तमिस्रा में तुम्हें मैं, डगर दिखलाता हुआ
दिशाओं का बोध देने, पूर्व का दिनकर बनूँगा।।
ओ पथिक मैं तुम्हारे हर, मील का पत्थर बनूँगा।

ऐसे कालजयी रचनाधर्मी को अनेक सम्मान पुरस्कार–उपाधियाँ प्रदान कर साहित्य जगत गौरवान्वित हुआ। श्री 'कलश' जी वास्तव में साहित्याकाश के ध्रुवतारा है जो अपने अवसान (२२–१०–०६) के बाद भी अपनी– चमक बिखेरते रहेंगे। □

– रामायण, ६९५/३, सिविल लाईन, झांसी उ.प्र.

स्मृति आलेख –

बुंदेली के समर्पित साहित्यकार डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव

– मणि मुकुल

डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव देश के उन ख्यातिलब्ध साहित्यकारों में अपना स्थान रखते हैं, जिन्होंने गंभीरतापूर्वक समाज को दिशा देने वाला उद्देश्यपूर्ण लेखन किया। पाठकों का मनोरंजन मात्र उनका उद्देश्य कभी नहीं रहा। बुंदेली, हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेजी भाषा पर समान अधिकार रखने वाले डॉ. श्रीवास्तव ने मुख्यतः बुंदेली एवं हिन्दी में गद्य एवं पद्य लेखन किया है। अंग्रेजी एवं उर्दू में भी उनकी छिटपुट रचनायें हैं। डॉ. श्रीवास्तव में साहित्य के अतिरिक्त विभिन्न विषयों की दर्जनों पाठ्य पुस्तकें भी रची और अनेक लोगों को शोध कार्य के लिये मार्गदर्शन दिया।

मानस मर्मज्ञ, चिंतक एवं साहित्यकार डॉ. रामदयाल कोष्टा 'श्रीकांत' ने लिखा है कि ''बुंदेली लोक साहित्य व लोक विज्ञान के मर्मज्ञ डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव का सम्पूर्ण जीवन एक कर्मयोगी की तरह रहा है। कर्म की सार्थकता ने उन्हें साहस, ईमानदारी, संघर्षशीलता जैसे गुण प्रदान किये। फलस्वरूप कर्म फल की भावना भी तिरोहित हो गई।''



एक स्वतंत्र चेता होने के कारण वे किसी बैसाखियों पर नहीं चले। विचारों के क्षेत्र में वे सदैव स्वतंत्र चेता बनकर जिये, इन्हीं विचारों का समावेश उनके साहित्य सृजन में भी हुआ। जड़ और चेतन में नए समीकरण की स्थापना कर उन्होंने 'आत्मकथन' के नवीन आयाम खोले, वर्ष मेघ, तुलसी, सातवां मील, साठिया कुआं ने आत्मकथा को नई शैली दी है। केन्द्र में किसी पदार्थ को लेकर आसपास के वातावरण का संवेदनमय चित्रण इन कृतियों की विशेषता है। विषय वैविध्य के बीच एक सूत्रता दूसरा प्रमुख गुण है। उनके द्वारा लिखे गये निबंध, आलोचनायें इसके ज्वलंत प्रमाण हैं।

बुंदेली भाषा, संस्कृति और ऐतिहासिक गौरव गाथायें, उनके जीवन का पर्याय रही हैं। उनके साहित्यकार का जन्म किसी वसीयत से नहीं हुआ, अपितु अनुभव की किताब ही उनके साहित्यिक जीवन का आधार रही है। इस दृष्टि से वे स्वप्नदर्शी न होकर प्रत्यक्षदर्शी साहित्यकार रहे हैं।

यही कारण है कि पाठक उनके साहित्य से तादात्म्य स्थापित करने में समर्थ रहे हैं। साहित्य के कैनवास में उन्होंने बाल साहित्य से लेकर गीत, निबंध, आलोचना, नाटक आदि विधाओं के इन्द्रधनुषी रंग भरे हैं। बुंदेली के मर्मज्ञ होने के कारण उनकी परिनिष्ठित हिन्दी की कृतियां लोकरस से भावित हैं। मानक हिन्दी में लोकभाषा के शब्दों की छोंक उनकी भाषा का भूषण है। एक पत्रकार के रूप में उन्होंने 'धरती' और 'युगारम्भ' जैसी युगीन पत्रिकाओं का कुशल सम्पादन कर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है।

बुन्देली भाषा पर शोध प्रबंध कर उन्होंने बुंदेली संस्कृति और इतिहास के नये पृष्ठ को खोला है। इतना ही नहीं बुन्देली को साहित्य स्वरूप प्रदान करने में अपने अहम भूमिका प्रस्तुत कर रानी दुर्गावती (खण्डकाव्य) एवं बुंदेली शब्द कोष का प्रणयन कर तथा ''बुंदेली के शब्द भण्डार का भाषा वैज्ञानिक अध्ययन'' कर बुन्देली साहित्य के कलेवर में वृद्धि करने का अथक प्रयास किया है।

कटनी, कन्हवारा, विजयराघवगढ़ मार्ग पर कटनी से ठीक सातवें मील के पत्थर के पास से दाहिनी ओर झाड़ियों, झुरमुटों के बीच से होते हुये एक पगडंडी ग्राम पिपरहटा पहुंचती है। यह ग्राम पूर्णतः नदी नालों और पहाड़ियों से वेष्टित प्राकृतिक परिवेश वाला ग्राम है। इस ग्राम का नाम पिपरहटा शायद इस कारण ही पड़ा है कि किसी समय यहां पीपल वृक्षों की अधिकता थी। डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव के पिता श्री प्यारे लाल श्रीवास्तव की सरकारी नौकरी कटनी तहसील (अब जिला) में होने के कारण वे यहीं निवासित हुये। १ सितम्बर १९१६ को यहीं पूरनचंद जी का जन्म हुआ। वे अपनी प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा के लिये गांव से प्रतिदिन पैदल कटनी आते थे। मेहनत और कर्म से वे कभी पीछे नहीं हटे और यह आदत उनमें आजीवन विद्यमान रही। साहित्यकार श्री ईश्वरचंद्र मिश्रा ने उनके बारे में लिखा है – मेरा परिचय डॉ. श्रीवास्तव से १९५५ में उस समय हुआ जब मैं विज्ञान शिक्षक के रूप में हितकारिणी में नियुक्त हुआ था। श्रीवास्तव साहब भी उन दिनों वरिष्ठ उ. श्रेणी शिक्षक थे। उन्होंने भूगोल की तीन चार वृहत पुस्तकें हाई स्कूल के छात्रों के लिये बड़े परिश्रम से लिखीं और प्रकाशित कराई थी। हिन्दी के साथ भूगोल भी उनका विशेष विषय था। हिन्दी साहित्य और हिन्दी काव्य के प्रति उनका रुझान स्पष्ट दिखता था। श्रीवास्तव जी ने नागपुर विश्वविद्यालय से पूरे ८ पर्चे एक बार में देकर एम.ए. की परीक्षा हिन्दी में उत्तीर्ण की ओर क्रमशः उन्नति की अंतिम चरण महाविद्यालय (सिटी कालेज) में व्याख्याता पद पर नियुक्त हुए। उन्होंने बुंदेलखंडी पर शोधग्रंथ लिखकर पीएच.डी. प्राप्त की एवं कॉलेज के प्राचार्य बने। उन दिनों बुंदेलखंडी पर ज्यादा काम नहीं हुआ था और शायद बुंदेलखंडी को साहित्य की चौहद्दी के बाहर की चीज समझा जाता था। नव युग की साहित्य चेतना एवं युगानुकूल अभिव्यंजन शैली के खांचे में फिट होकर डॉ. श्रीवास्तव की बुन्देली अपनी नूतन सुरभि की गमक से परिपूर्ण है। तुलसी की अवधी और जायसी की अवधी में जो अंतर है वही श्रीवास्तव जी के काव्य और ठेठ बुन्देलखंडी के लोक गीतों की भाषा में है। ''भौंरहा पीपर'' उनकी प्राकृतिक जीवन्तता की अनन्यतम साहित्यकृति है, जो ग्राम्य जीवन की

मान्यताओं की धरोहर है।''

पं. हरिकृष्ण त्रिपाठी का कथन है कि – ''लोकभाषायी रचनाकारों में डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव का अपना विशिष्ट स्थान हैं वे केवल बुंदेली भाषाविद और साहित्यविद ही नहीं वरन् बुंदेली काव्य सृजन के क्षेत्र में सक्रिय उन गिने चुने व्यक्तियों में है, जिन्हें इस लोक भाषा की सम्पदा और अभिव्यक्ति के स्वर संकेतों पर पूर्ण अधिकार हैं डॉ. श्रीवास्तव का जीवनारम्भ एक ग्रामीण परिवेश में हुआ। अतः ग्राम जीवन की भाषा–बोली, रीति पद्धति, प्रकृति सौंदर्य, सामाजिकता और ग्राम–जीवन के जीवन संघर्ष को उन्हें निकट से देखने परखने का अवसर सहज ही हाथ लगा है। यहीं भावबोध उनकी कविताओं में प्रकट होता है।''

श्रीवास्तव जी की काव्य प्रकृति, उनके काव्य काल किसी शैली या धारा विशेष की चौहद्दी में आबद्ध नहीं है। वे मुक्त चिंतक हैं और एकदम सहज मन से अपनी अनुभूतियों को कविता का स्वरूप प्रदान करने प्रकृति की सौन्दर्य राशि से आकृष्ट हुये हैं, उन्होंने ग्राम्य प्रकृति के चित्र उकेरे हैं और जहां सामयिक सामाजिक अंतर्द्वंद को उन्होंने परिलक्षित किया है, उसे सह व्याकुल मन से अभिचित्रित करने में वे तत्पर रहे हैं।

काव्याभिव्यक्ति में वे मात्र सौन्दर्य बोध और आकुल रसानुभूति के आग्रही नहीं है, किन्तु कुंठा और संत्रास, संघर्ष और द्वन्द्व को भी जीवन का एकमात्र पक्ष नहीं मानते। इस दृष्टि से वे संतुलन बनाकर चलने के पक्षधर हैं, क्योंकि जन जीवन भी इन्हीं विविधाओं से भरा हुआ हैं इसीलिये इस सौन्दर्य और आनंद के बोध से युक्त रचनाओं के साथ वे सामाजिक यथार्थ के व्यतिरेक को इंगित करने में भी कहीं चूके नहीं हैं और सामायिक विसंगतियों पर सार्थक कटाक्ष करने में वे पीछे नहीं रहे हैं। बुन्देली लोक–प्रवृत्तियों और भाषा सौन्दर्य के वे पारखी विज्ञों में हैं, अतः बुन्देली बोली की सामर्थ्यवान शब्द–संपदा उनके काव्य–लेखन में अपने वैभव के साथ विद्यमान हैं सामान्यतः परिनिष्ठित भाषा और साहित्य के अध्वसायी के लिये लोकभाषा में सृजन साफल्य अर्जित करना अपेक्षतया कठिन होता है, किन्तु डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव ने अपने को इसके अपवाद स्वरूप सिद्ध किया है, जिसका प्रमाण विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित बुन्देली बोली में उनका साहित्य, बुन्देली भाषा का खंडकाव्य 'वीरांगना दुर्गावती' बुंदेली काव्य संग्रह 'भौरहा पीपर' एवं विशुद्ध शास्त्रीय देवी स्तुतियां तथा हिन्दी भाषा में रचित अनेक ग्रंथ हैं।

कवि एवं साहित्यकार आचार्य भगवत दुबे ने लिखा है कि – आज के बहुचर्चित कैसिटों मे जो लोकगीत बजाये जा रहे हैं उनमे न तो पारंपरिक वाद्यों की लयबद्धता है और न आंचलिक लोक चेतना, तो ऐसी स्थिति में हमारा सांस्कृतिक लोक औदार्य, विकृति के विभ्रम में अपना अस्तित्व ही गवां बैठे तो कोई आश्चर्य नहीं डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा था ''लोक का अमृत तत्व जिस शास्त्र में नहीं वह कितना ही पांडित्यपूर्ण क्यों न हो निष्प्राण है, जो शास्त्र लोक के साथ नहीं जुड़ा, वह मानवीय चिन्तन का छूंछा फल है, वह केवल बुद्धि का छलावा है।'' डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव की बुन्देली की काव्यकृति 'भौंरहा पीपर' के गीतों में जहां एक ओर हमें विकास के चरण चिन्ह देखने मिलते हैं, वहीं दूसरी ओर बुन्देली के आंचलिक धरातल पर आस्थाओं, निष्ठाओं और पारंपरिक मर्यादाओं का स्वाभाविक रसास्वादन भी पाठकों और गायकों को मिलता है। बुन्देली की आधुनिक काव्यशैली में डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव जी ने विकास की नवीन स्थितियों को भी बड़ी सहजता से जोड़कर लोक जीवन में आत्मसात करा दिया है।

''भौंरहा पीपर'' के गीत एवं कवितायें कृतिकार के उस ग्राम्य जीवन की देन है, जिसे उन्होंने अपने संस्कारी निर्माणकाल में जिया है। हार–पहार, बेर–करौंद, धाय–धुबैन घुटहर, पाकर, पीपर आदि के प्रति कवि की रागात्मकता उसके अहं को आत्म विस्मृत कर देती है और महानगरीय भागंभाग का यह सहयात्री धावक अपनी थकान मिटाने के लिए महुआ, पीपल और अमुआ की छांव में विश्रान्ति और सुख की तलाश करता हुआ रम जाता है। ऐसी स्थिति में कवि डॉ. श्रीवास्तव जी राम की व्यष्ठिवादी विरह वेदना को समष्टिवादी बनाते हुए अपने भाव इस प्रकार अभिव्यक्त कर उठते हैं –

'अकल विकल हैं' प्राण राम के, बिन संगिनि, बिन गुइयां।
फिरें नांय से मांय बिसूरत, करें झांवरी मुइयां।
पूछत फिरें सिंसुपा, साल्हें, बरसज, साज, बहेरा।
धवा सिहारू महुआ, कहुआ, पाकर बांस लमेरा।

झपरे महुआ की छांव में घरी भर विश्राम करते हुए कवि जब ग्राम्य जीवन के सहज सुलभ कलेबा की बात करता है तो सारे तामसी नागर भोग तुच्छ नजर आने लगते हैं – देखिये चित्र–

''सतगजरा की सोंधी रोटी, मिरच हरीरी मेवा।
खड़ुआ के पातन की चटनी, रुच को बनो कलेवा।''

कवि की सूक्ष्म पैनी दृष्टि से बाड़ के उपर गन्नाई खुटलैया तथा त्योंरैया भी नहीं बच पाती। सूर्यास्त का यह सहज चित्र यदि हरिऔध जी की बृज की संध्या के वर्णन से श्रेष्ठ नहीं तो हीना भी नहीं है –

''लटकत सूरज लाल होय जब, धुंधुअन भर्गे चिरैयां
गिवड़े गांव उड़ावे गोरज, झुकामुकी में गैयां।''

नाती, पोतों का सुख तो वैसे भी स्वर्गतुल्य कहा गया है, तिस पर भी यदि बसंत के साथ ये सुख भी उपलब्ध हो तो कहना ही क्या? बूढ़ों के सूखे हाड़ भी बसंत को पाकर रसवंत हो जाते हैं – यथा –

''महुअन की बहै, गुलाबी जब, आमन की बहै बसंती
बाबा बुलियांय पड़ोसन सें, ओली बैठारें पंती।''

कवि की सूक्ष्म दृष्टि से जब बूढ़ों का बुलियाना नहीं बच सका तब भला बिना कारण ही नई नवेली नायिका की अंगड़ाई कैसे ओझल हो सकती है–

''बाल बहुरियां तंग अदेहन, उनके अंग समाई।
बे मतलब बिन काज अकाजै, आउत है ऐंडाई।।''

मायके की सुधि आते ही बहिन अपने भाई को पाती लिखते समय अपने हाथ से सींचे गये नीबू और आंवलों के पेड़ों का हाल पूछना नहीं भूलती। देखिये कवि की सहज स्वाभावोक्ति का सुन्दर चित्र –

"लिखियो बड़े भये कितने, निबुआ औरा के बिरछा, केरा तो घौर देत हूँ है?''

जहाँ एक ओर डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव के काव्य में लोकरस की सहज अभिव्यंजना समाहित है, वहीं उनके लोक साहित्य में परतंत्र भारत के घटना क्रम और स्वतंत्रता के स्वर भी गुजायमान हुए हैं– ''अब न गुलामी की पुरवैया, अब ने फिरंगी रहे कसैया

नओ भोर हो गओ अरे, ना बिगड़े अपनो नूर।।''

आज चारों ओर व्याप्त आतंक और अशांति के वातावरण को भी कवि ने अपने लोक भाव में अभिव्यक्त कर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है–

'इतै उतै चारउ दिस कौनऊ न कौनऊ मिस, फुड फुडात

देस सबई, लगत बस होत अबई कहूं से धमाको।''

डॉ. श्रीवास्तव बुन्देली साहित्य के मर्मज्ञ हैं, बुंदेली के शब्दों को जिस सौन्दर्य के साथ आपने अपनी कविताओं में सहेजा है, उससे बुंदेली शब्द योजना का लालित्य और बढ़ गया है। भाषा की प्रवाह मानता, संप्रेषण की परंपरागतता तथा अनुभवों की पारदर्शिता आपके कला शिल्प पाठक के मन मस्तिष्क पर बैठकर मनोवैज्ञानिक छुअन की गुदगुदी सी पैदा करती है। बुन्देली काव्य संकलन ''भौंरहा पीपर'' लोक चेतना का प्रामाणिक साक्ष्य एवं लोक मंगलकारी संवेदनाओं की जीती–जागती तस्वीर है।

देश के सुप्रसिद्ध साहित्यकार सेठ गोविन्ददास की सुपुत्री संस्कृत साहित्य की विदुषी, राज्यसभा सदस्य श्रीमती रत्नकुमारी देवी ने डॉ. श्रीवास्तव पर एक लेख में लिखा था – ''बुन्देली भाषा में जो लालित्य है, उसमें जो प्रसादगुण है, अपनापन है, वह हर व्यक्ति के मानसतल को झकझोर देता है। ऐसे साहित्य का सृजन डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव के द्वारा हो सका है यह हमारे लिये गौरव की बात है। उन्होंने बुंदेली लोक साहित्य, भाषा विज्ञान और विभिन्न विषयों का आलोचनात्मक अध्ययन, बुन्देली शब्द भण्डार के स्त्रोत, बुन्देली–हिन्दी शब्द कोष, ''खण्ड काव्य'' वीरांगना रानी दुर्गावती, पर्यावरण आदि विषयों पर भरपूर लिखा है। बुन्देली साहित्य के व्यापक प्रचार–प्रसार की दृष्टि से समाचार पत्रों में भी विभिन्न विषयों में आपने बुंदेली में लेख लिखे।

आपका यह प्रयास सदैव रहा कि बुन्देली भाषा का साहित्य लोक मानस में आत्मसात हो जाये। अतः नगर में अच्छे बुन्देली गीतकारों का निर्माण संभव हो सके। श्रीवास्तव जी का पूरा जीवन एक खुली किताब के सदृश रहा। आप अपनी बात बिना लाग–लपेट के कह देते हैं, उसमें वे किसी की परवाह नहीं करते। यह गुण आपको 'युगारम्भ' और 'धरती' पत्रिका के संपादन से प्राप्त हुआ हैं गांधीवादी विचारधारा के पोषक होने के कारण आपके कार्यों एवं विचारों में सदैव खुलापन और स्पष्टता रहती है। ऐसे निष्काम कर्मयोगी के प्रति सहज ही मस्तक झुक जाता है।

पत्रकार पंकज पटैरया ने लिखा है कि – बुन्देली भाषा और संस्कृति डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव के जीवन का पर्याय रही है। बुंदेली में उनकी अनगिनत रचनाएं हैं। उन्होंने इस बोली को भाषा की मान्यता दिलवाने लगातार प्रयास किये। डॉ. श्रीवास्तव का मानना है कि जबलपुर में ऐसे परिवार भी अनगिनत है जो बुन्देली बोली ही बोलते हैं इसे जीवित रखने में वे जैन समाज का सहयोग अद्वितीय मानते है। बुन्देली को मान्यता दिलवाने अस्तित्व का प्रश्न बनाने की आवश्यकता पर बल देते हुए वे कहते रहे कि यह संघर्ष आज कल की बात नहीं है डॉ. श्रीवास्तव की इच्छानुसार उनके अनुयायी विश्वविद्यालय में बुन्देली शोध पीठ की स्थापना के लिए प्रयासरत है।

प्रतिवर्ष एक सितम्बर को डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव के प्रशंसक उनका जन्मदिन ''बुन्देली दिवस'' के रूप में मनाते हैं। जबलपुर और आसपास के जिलों में महत्वपूर्ण ओहदों पर बैठे व्यक्ति डॉ. श्रीवास्तव के शिष्य रहे। रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. जगदीश प्रसाद शुक्ल, जानकीरमण महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य पं. हरिकृष्ण त्रिपाठी, स्व. डॉ. रामदयाल कोष्टा 'श्रीकांत', पूर्व कुलपति डॉ. एस.पी. कोष्टा, स्वामी प्रज्ञानंद, हिमांचल प्रदेश के पूर्व मुख्य न्यायाधीश विपिनचन्द्र वर्मा, पूर्व राज्यपाल स्व. निर्मलचंद जैन, नवभारत के पूर्व संपादक फतेहचंद गोयल, स्वतंत्रमत के पूर्व संपादक श्याम सुन्दर शर्मा, पूर्व महापौर द्वय एन.पी. दुबे, शिवनाथ साहू कांग्रेस नेता राजेन्द्र यादव, पूर्व मंत्री राजबहादुर सिंह, पूर्व संसदीय सचिव अच्छेलाल सोनकर, पूर्व विधायक कैलाश सोनकर एवं मोतीलाल सोनकर आकाशवाणी के निदेशक कंवर अहमद, पत्रकार मोहन शशि, डॉ. राजकुमार तिवारी 'सुमित्र', प्रो. श्याम सुन्दर मिश्रा, श्रीलाल दुबे, शिवनारायण पटैल, डॉ. हरिशंकर दुबे, राधेश्याम अग्रवाल, एडवोकेट राजेन्द्र तिवारी, राजेन्द्र तिवारी 'ऋषि', रामेन्द्र तिवारी आदि डॉ. श्रीवास्तव के छात्रों की फेहरिस्त में शामिल हैं। आपने १९६३–६४ में रानी दुर्गावती विश्वविद्यालय में लोक साहित्य को हिन्दी के स्नातक और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में ऐच्छिक विषय के रूप में शामिल करवाने में महतवपूर्ण भूमिका निभाई। आप रादुविवि में बोर्ड आफ स्टडीज के सदस्य रहे तथा हिन्दी बाल साहित्य, आधुनिक हिन्दी उपन्यास, बघेली लोक साहित्य एवं संस्कृति ''खड़ी बोली में राम काव्य परंपरा'' जैसे विषयों पर पीएच.डी. उपाधि हेतु अनेक शोधार्थियों का निर्देशन किया।

डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव के शिष्य विश्वविख्यात संत स्वामी प्रज्ञानंद जी ने अपने गुरु के बारे में लिखा है – बुंदेलखंड की धरती के गौरवपुत्र एवं बुन्देली साहित्य क्षेत्र के शलाखा डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव के प्रति सबसे पहले मैं अपनी श्रद्धा की अभिव्यक्ति करता हूँ जिन्होंने मुझे बुंदेली साहित्य–मृदा की सौंधी सुगन्ध से स्नातकोत्तर अध्ययन की अवधि में बड़े ही सहज, सुबोध शैली द्वारा परिचित कराया था। लोक साहित्य के प्रति उनका अवदान अपने आप में मील का पत्थर है, सहज अनुभूति की अभिव्यक्ति लोक कल्याण की साधना के साथ उनकी वाणी और लेखनी के

साथ निःसृत हुई है। वर्षों बीत जाने के बाद भी जब मैं उनके समक्ष पहुंचता तो उनका वह सौम्य एवं गुरु गंभीर व्यक्तितव मेरे समक्ष साकार होने लगता जो मैं एक छात्र के रूप में उनके द्वारा कराये जाने वाले लोक साहित्य का बोध करते समय करता था। उनके बोल आज भी मेरे कानों में गूंजने लगते हैं। जेसी सहजता एवं सादगी उनके व्यक्तितव में है वैसी ही उनके कृतितव में भी घनीभूत होकर अभिव्यक्त हुई हैं मुझे आज भी उनके सटीक अर्थ-तत्व से सम्प्रक्त ललित बुंदेली शब्दावली, बुन्देली लोकोक्तियां स्मरण है, जो उन्होंने लोक साहित्य एवं लोक विज्ञान के कालखंड में वर्षों पहले उद्धत की थी।

मेकल सुता पुण्य सलिला रेवा तट की पुनीत माटी में पले-पनपे तथा कर्मरत रहे आचार्य प्रवर हमारे गुरुवर डॉ. श्रीवास्तव जी जब मां नर्मदा की महिमा बुन्देली बोली में बताते हैं तो आदिगुरु शंकराचार्य का नर्मदाष्टक 'त्वदीय पाद-पंकजम् नमामि देवि नर्मदे' की ये पंक्तियां भी बुन्देली की इन पंक्तियों का मुकाबला करने में सक्षम नजर नहीं आती –

नर्मदा दूधन बही रे, कलजुग में बहत जल की धार रे...

सुप्रसिद्ध साहित्यकार और समीक्षक डॉ. गार्गीशरण मिश्र 'मराल' ने डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव के बुंदेली खंड काव्य 'वीरांगना रानी दुर्गावती' की आलोचना में लिखा है कि – पूरनचंद श्रीवास्तव इस बात के लिए बधाई के पात्र हैं कि उन्होंने बुंदेली जैसी लोकभाषा को काव्यभाषा का रूप देकर उसे कलात्मक सौन्दर्य प्रदान किया है।

'वीरांगना रानी दुर्गावती' का इष्ट, रस-प्रधान काव्य लिखना नहीं उसे चरित्र प्रधान रूप देना है। खंड काव्य की नायिका के रूप में कवि ने रानी दुर्गावती को रूप और प्रेम की देवी के साथ-साथ वीरता और सहस की प्रतिमूर्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। अतः 'वीरांगना रानी दुर्गावती' खंडकाव्य रस-प्रधान खंडकाव्य नहीं चरित्र प्रधान खंडकाव्य है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि रानी दुर्गावती का चरित्र संवारने में कवि ने इतिहास का नहीं लोकगीतों का सहारा लिया है तात्पर्य यह कि रानी दुर्गावती की जो छवि लोकगीतों में उभरकर सामने आती है कवि ने उसे ही और सजाया-संवारा है ताकि हमारी वर्तमान पीढ़ी उससे प्रेरणा ले सकें यह भी समरणीय है कि वैसे तो बुंदेली के भी कई रूप मैं, किन्तु कवि ने बुंदेली के उस रूप को अपनाया है जो एक ओर जनता के निकट हो और दूसरी ओर खड़ी बोली से भी सामीप्य रखता है। भले ही "वीरांगना रानी दुर्गावती" मुख्यतः एकचरित-काव्य हो, लेकिन उसमें रस-परिपाक उपेक्षित नहीं होने पाया हैं दलपति शाह के प्रति रानी दुर्गावती के प्रेम के कारण यदि वह प्रेमगाथा है तो दूसरी ओर अकबर के सिपहसालार आसफ खाँ से रानी के लोहा लेने के कारण वह वीरगाथा भी है। इस प्रकार श्रृंगार और वीर रस का संगत "वीरंगना रानी दुर्गावती" की अपनी एक विशेषता है। प्रेमाभिव्यक्ति निम्नांकित शब्दों में दर्शनीय है –

का विध मिले वीरवर दलपत रेवा तीर बसैया।
आठउ पहर सुमरतन जावें, विंध्यवासिनी मैया।।

तो वीर-रस निम्नांकित पंक्तियों में उमड़ता है –

चली प्रलय से जूझन रानी, रणचण्डी अकुलाई।
गंग-जमुन उत उठीं हिलोरें, इत रेवा उमड़ाई।।

सफल खंडकाव्य के लिए आवश्यक है कि उसके कथानक में एकात्मक अन्विति हो, अप्रासंगिक कथाएं उसमें समाविष्ट न हों, तथा इसमें क्रमशः आरंभ, विकास तथा चरम सीमा का सफल आयोजन हो। इस दृष्टि से "वीरांगना रानी दुर्गावती" खंडकाव्य कसौटी पर खरा उतरता है। इतना ही नहीं खंडकाव्य का एक और महत्वपूर्ण लक्षण-संपूर्ण काव्य एक ही छंद में लिखा गया हो – भी उसमें उपलब्ध है। कथानक में नाटकीयता ने चार चांद लगा दिये है। अतः 'वीरांगना रानी दुर्गावती' एक सफल खंडकाव्य की कोटि में आता है।

डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव में कुछ वर्षों पूर्व नवभारत पत्र समूह को दिए गए साक्षात्कार में लोकभाषा एवं लोक साहित्य की प्रासंगिकता संबंधी प्रश्न कर कहा था – "इसकी प्रासंगिकता को शब्दों में नहीं बांधा जा सकता। किसी भी संस्कृति की धरोहर लोक अभिव्यक्ति होती है। आज खड़ी बोली में ८०-९० प्रतिशत संस्कृत और प्राकृत शब्दों के अपभ्रंश पाए जाते है फिर भी बारीकी से विचार व्यक्त करने की जितनी शक्ति ठेठ लोकभाषा में पाई जाती है उतनी खड़ी बोली में संभव नहीं है। महाराष्ट्र, बंगाल अथवा गुजरात के लोग चाहे जितने भी पढ़े-लिखे क्यों न हों जब आपस में मिलते है तो सहज ही अपनी मातृभाषा में अभिव्यक्ति देते है। जहां लोकभाषा निकटता और सामर्थ्य रखती है वहीं खड़ी बोली वर्ग विशेष के लिये है। शब्द शक्ति की स्वाभाविक लय जो लोकभाषा में है, खड़ी बोली में नहीं – अब तुम्हीं बताओ – "बुंदेली में 'उकडूँ बैठने' को खड़ी बोली में किस शब्द से अभिव्यक्ति किया जा सकता है। आदि शंकराचार्य की चर्पट पंजरिका के एक वाक्य – "रात्रौ चिबुक समर्पित जानु" को केवल बुंदेली में 'कुकर मुकरियां' शब्द से व्यक्त किया जा सकता है देखिये बुंदेली किसान का जीवन कैसा है – हर जोते, तत्-ता करें, अन्न भुसा सो खांय, कुकर मुकरियां सो रहे, भुन्सारे पहट ले जाएं। और भी ऐसे शब्द मिलते है जिनकी टक्कर के शब्द अभिजात वर्गीय परिनिष्ठित हिन्दी में नहीं है। कभी-कभी तो ऐसा होता है कि बुंदेली का एक शब्द जिस अर्थ तत्व को उद्घाटित करता है, उसके मुकाबले कथित शिष्ट भाषा में टोटा ही नहीं, अभाव पाया जाता है।

लोकभाषा की दैनिक जीवन में उपादेयता पर वे कहते हैं कि "लोकभाषा दैनिक जीवन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, इसकी उस क्षेत्र के न्यायाधीशों, वकीलों, चिकित्सकों, समाजसेवियों आदि को अनिवार्य रूप से जानकारी होना चाहिए, बल्कि ऐसा नियम बना देना चाहिये कि जनता के क्षेत्र से जुड़े व्यक्ति को उस क्षेत्र की साहित्य और संस्कृति की वाहक लोकभाषा का अनिवार्य ज्ञान हो, तभी वह समाज को उचित सेवाएं दे पायेगा।"

साक्षात्कार में डॉ. श्रीवास्तव ने कहा था कि क्षेत्रीय लोकभाषा का ज्ञान देना बच्चों को प्रायमरी स्कूल से प्रारंभ कर देना चाहिये। पाठ्य पुस्तकों में एक विषय के रूप में लोकभाषा बुंदेली को शामिल कर नर्सरी स्तर पर बुझौवलों, लोक कथाओं आदि से

इसकी शुरुआत करना चाहिए।

डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव की सभी रचनाओं में चाहे वह गद्य हो अथवा पद्य सहज सरल ग्राम्य जीवन, प्रकृति चित्रण, ईमानदारी, मेहनतकश लोगों की निश्छल दिनचर्या के दर्शन होते हैं। ''वीरांगना रानी दुर्गावती'' लगभग १९५० में बुंदेली भाषा में लिखा गया उनका खण्ड काव्य है जिसमें वीरांगना के संघर्षपूर्ण जीवन का सजीव चित्रण है। तुलसी, साठिया कुआ, वर्षा मेघ, चिड़िया, सातवां मील आदि उनके आत्मकथा शैली में लिखे निबंध हैं। डॉ. श्रीवास्तव ने नवभारत, देशबंधु एवं स्वतंत्रतमत समाचार पत्रों में निरंतर 'बुन्देली लोकायन' एवं 'अपनी बोली में अपनी बात' आदि शीर्षकों से तात्कालिक विषयों पर बुंदेली भाषा में गद्य लेखन के माध्यम से भाषा को समृद्ध किया। उनकी भाषा परिनिष्ठित, परिमार्जित, परिष्कृत व प्रांजल है डॉ. पूरनचंद श्रीवास्तव महाकौशल या बुंदेलखंड ही नहीं समस्त भारत के जाने माने बुंदेली साहित्यकार, लोक विज्ञानी एवं भाषा विज्ञानी थे। उन्होंने अनेक विधाओं में अपनी रचनाएं की हैं। सउद्देश्य को लेकर गंभीरतापूर्वक लेखक करने वाले साहित्यकार एवं कवि के रूप में उन्हें हमेशा याद किया जाता रहेगा।

– आधारताल, जबलपुर □

चौकड़ियाँ

– ललित परमार

दुनिया भई स्वार्थी भारी, जा कैसी लाचारी।
जीनै जनम दओ बोझा वे लग रये बाप मतारी।।
खींच तान हो रई भईयन में बाटैं हिस्सेदारी।
'ललित' मीत न कोऊ काऊ के, झूठीं जा संसारी।।१।।

गोला लोकतन्त्र के घल रये, कईअक भूखन मर रये।
जां देखौ जा लूट मची, सब अपने मन कौ कर रये।।
कागज पै चल रही नीतियां सब अपनौ घर भर रये।
'ललित' बात सांची काते पै, अपने मन में डर रये।।२।।

ढूढ़ों भौतई कितऊं मिलो ना, मोरौ चांद सलौना।
उमर बीत गई ढूढ़त ढूढ़त, तनकऊं पतौ चलोना।।
बचपन जी के संग गुजारो, जोर कें खेल खिलौना।
रंगे फाग में जिनके संगै, सावन झूल झुलौना।।
'ललित' विछुरतन उनके हम हां, आज लौ लगो भलौना।।३।।

नातौ जुरन लगो नफरत कौ, साबुन ज्यों सपरत कौ।
घुरत रात जब रोज रोज, फिर जौ कैसें असरत कौ।।
सबरे रंग बेनूर भये जब, रंग चमको स्वारत कौ।
'ललित' जुरो सामान सबई अब, मन सें चैन हरत कौ।।४।।

हड़रा घुन भये जात हमारे, महँगाई के मारे।
भाव छू रहे आसमान खां, कैसें होय गुजारे।।
खेती के जे हाल कढ़ें न, जी में बीज विजारे।
'ललित' चले गये सबरे दिल्ली, टांग हांग कैं तारे।।५।।

उननें प्रीत जोड़ लई धन सें, मौं फेरो अपनन सें।
का परिवार कुटुम काये कौ, टारौ दओ जतन सें।।
ब्याव वरातन में कऊं मिल गये, बोले लौ न ढंग सें।
'ललित' खराब चला हो गओ जौ, बस ऐसे लोगन सें।।६।।

जौ जी वनो न रओ अपने में, देख तुम्हें सपने में।
रोम रोम में समा गये तुम, नेह की छांव घने में।।
सुख की सुखद घरी याद आई, दो मन एक बने में।
'ललित' वखानें का ऊ छवि हां, भौंह कमान तनें में।।७।।

ऐंगर ठैर लेव कछू कानैं, हम खां जो कछू चानैं।
चार लाख नकदी के संगैं, होंण्डा अलग लियानैं।।
फ्रिज कूलर अलमारी सोफा, बैड कौ का गिनानें।
'ललित' कात करियो उपाय, जैसे में लरका मानें।।८।।

रातै भओ चुआना भारी, भसक परी इकवारी।
ठाट कुरैंया गिरी मूंढ़ पै, गिरी पीठ पै म्यारी।।
हड़रा कुचर गये नौने कें, पाई चोट करारी।
'ललित' जुरे सब हल्ला सुनकें, विपदा आन निवारी।।९।।

अब न होबी यार किसी के, बढ़ रये दाम पिसी के।
पानी भी मांगौ हो रओ, छै रुपया एक शिशी के।।
आव भगत न भई कछू, न बोले बोल हंसी के।
ललित आज के पढ़े लिखे, का का होशियारी सीखे।।

ऊधौ जा कइयो गिरधर सें, बादर काये न वरसें।
हर सालै सूखा पर रहओ, हम बूंद बूंद हां तरसें।।
भेजत रात नगर पंचायत पानी अब टैंकर सें।
'ललित' बढ़ा जात है ऊ भी जौ लौ निकरें घर सें।।११।।

मोरी राम राम सब खईया, भूखन मर गई गैया।
जुतवा लई चरौखर गौचर, भर लई खूब कुठरियां।।
करवे हां उसार कतरा रये, बेची जाय कसैंयाँ।
ललित चली गई अंसुआ ढारत, अब तौ बचनैं नैया।।१२

अपनौ तुमें जान गिरधारी, बस पै चढ़ी सवारी।
सीट मिली न कहूँ गैल में, ठाड़ी रही विचारी।।
कंडक्टर ने मार कें धक्का, पहुंचा दई अगारी।
'ललित' कांय का तुमसें भैया, मसां के मिली बसारी।।१३।।

मसकऊं सपने में आ जातीं, बैठ बगल में जातीं।
विछुरें भये जमाने तौऊ, प्रेम के पल दुहरातीं।।
बालापन कौ नेह निछल, चलवे वगियन में कातीं।
काये भई पराई ललित तुम, वनीं इतई न रातीं।।१४।।

करतीं सपनन में उजियारे, मन में बैठ हमारे।
वा वांकी छवि रूप सलौनों, जैसे चंदा तारे।।
बातें करती चला उगरिया बैठ पौर के द्वारे।
का का कै कै जात ललित वे, दो नैना रतनारे।।१५।।

– ललनजू का पुरवा, पो. निवारी, जिला छतरपुर □

विवाह गीत

– संकलन पं. राजकुमार पुजारी

पक्यात – आज मोरे अंगना में रंग बरसत है
रंग बरसत है अवीर उड़त है।।१।।
मोर मुकुट सिर बांधो राजा वनरै
कलकन विच मोरो जिया ललचत है।।२।।
कानन कुण्डल पैरो राजा वनरे
गूंजन विच मोरो जिया ललचत है।।३।।
केशरिया वागो मोरे पैरो राजा वनरे
पनरस विच मोरो जिया ललचत है।।४।।

(इसी तरह हाथ, पैर, कमर, कंठ आदि को लगाकर महिलायें गाती है।)

लगुन – इन नाऊ वम्मन ने, हीरा मोरे ठग लए।
हीरा मोरे ठग लए, नगीना मोरे ठग लय।।१।।
जब तौ कहत ते हतिया हम दैहें।
हौदा तो दे समझा लय सजनवाँ।।२।।
जब तो कहतते मोहरें हम दैहें।
सो रुपया दे समझा लय सजनवाँ।।३।। इन नाऊ...।।

(इसी तरह घोड़ा, ऊँट आदि जोड़कर ये गीत गाया जाता है)

मटयायनो – बाबा बुढ़ंची एक आँख कांची, कँधे पै टाँगे है झोलना।
ओ मोरे घोलना, धीरे से बोलना।।
बाबा के पैरन में फट गई विमारी।
उनखो निगा निगा मैं हारी......।। बाबा.

तेल चढ़ाना –

चढ़ गये तेल फुलेल, छूटक रई पाकुलियां।
लंका से सोनो मंगाव, गड़ाव नोनी पाकुलियां।।
तेल ल्यायी तेल फुलेल, मालिन ल्याई दो कलियां।

दूल्हा निकासी – अबेरे दूला काय सजे महाराज
बनाजू के आजुल को बड़ौ परिवार।
सजन वेरा हो गई महाराज।।

(इसी तरह वावुल, काकुल, फूफा, मामा, चाचा, माई आदि के साथ जोड़कर महिलायें इस गीत को गाती हैं)

टीका – कोट नवै परवत नवै, सिर नवाय न आवैं।
माथे वावुल जी के जब नवैं, जब साजन आंवै।।
कोट नवैं परवत नवै, सिर नवांय न आवै।
माथे काकुल जी के जब नवै, जब साजन आंय।।

(इसी प्रकार मइया, मामा आदि को जोड़कर गाया जाता है)

चढ़ाव – समर समर पग धरियो बेटी साजन की।
तुम आई चढ़ाये के चौक।।१।।
माथे पै झूमर सोहे बेटी साजन की।
तुम्हरी वेंदी पै लगी जग जोत– बेटी साजन की।।
कानन में झाले सोहे बेटी साजन की।
तुम्हरी झुमकी पै लगी जग जोत – बेटी साजन की।।

(इसी प्रकार गले में हरवा, हाथों में दस्ते, कम्मर में पेटी पैरो में पायल आदि जोड़कर यह गीत गाया जाता है)

कन्यादान –

दे राखो जनक ऐसी गाय, तुमाय घरै काय की कमी।
न कऊं बांधन छोरत मारै, न कऊँ लात दुवैये मारे।।१।।
चौकत जात वगर से हारै। दे राखो जनक........।
आकै बछड़ा खूब चुखावै, दौवे से परछा भर जावै।
सब घर मनको पीवै खावै, फिर पाछे से सास जमावै।।२।।
घी की कमती कभऊं न होय। .... दे राखो जनक

कुँवर कलेऊ –

औरे जौरे पलंग विछाये, जापै गलीचा विछवाये मोरे लाल।
राम लखन और भरत शत्रुघन, चारऊ मैया आये मोरे लाल।
हाथ जोर के ठाड़ी सुनयना, कर लइयो कुंवर कलेऊ मोरे लाल
और जौरे पलंग.......।
कुंवर कलेवा जब हम करवें, दे दइयो नेग हमार, मोरे लाल
गोवर खों गुवनारी दीन्हीं, पानी खों पनिहारी, मोरे लाल
रसोई तपन खों सीता दीन्ही, हम नइंया नेगन जोग, मोरे लाल

मौचायनो –

तुम करो सासो रानी, अरत रकोला पचास सुपरियां डेड़ सौ
घर दोर बहू को होय तो छिड़िया सासो की।
तुम करो मावी रानी अरत रकोला पचास, सुपरियां डेड़ सौ
घर दौर वहू को होय, तो छिड़िया भावी की

(इसी प्रकार जिठनी रानी, बुआ रानी देवरानी आदि के साथ जोड़कर गीत गाया जाता है)

कंकन – छौरो–छौरो सिया जू के कंकन महाराज तुम छौरो
तुमसे न छूटै अपनी मइया खो बुलाव
छौरो छौरो लाड़ली के कंकन महाराज– तुम छौरो

(इस प्रकार भाभी, बुआ, मौसी, चाची, आदि को जोड़कर गाया जाता है।)

चीकट (चढ़ाव के बाद क्रम में) –

हरे हरे मण्डप नेचे सब कोऊ आये, मइया बिन्न बहिन उदास भले जू।
अंगना में ठाँड़े ससुर समझावै, काहे वहू बदन मलीन भले जू
जैसई सारी तुमरे वीरन ल्यावै, वैसई ल्योय अनमोल भले जू
तुमरी ल्याई सारी निस दिन पैरै, आज वीरन जू की होय भले जू

(इसी प्रकार देवर, भाभी, नंदेऊ आदि को जोड़कर गीत गाया जाता है)

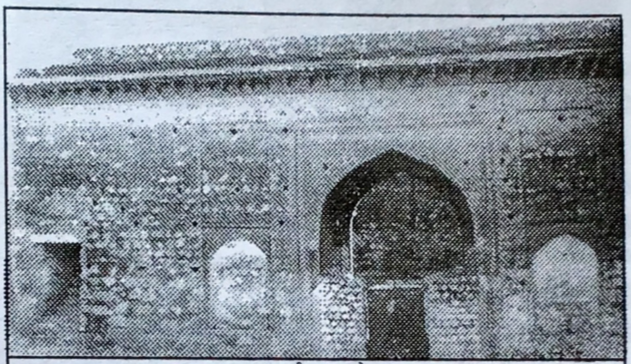
विदाई गीत – जानना दैहों सजन खों, जान नं। दैहौ लाल।
का दैके विलमालव सजन खों, का दैके विलमालव लाल
हतिया दै विलमालव सजनखों, मुहरैं दै विलमा लव लाल
जान न दैहों सजन खों, जान न दैहो लाल

– पुजरयाना, पृथ्वीपुर, टीकमगढ़ म.प्र. □

भूरागढ़ दुर्ग से जुड़ी हुई ऐतिहासिक स्मृतियाँ

– राधाकृष्ण बुंदेली

भूरागढ़ दुर्ग सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक दुर्ग है जो बाँदा शहर में केन नदी के तट पर स्थित है। यह दुर्ग भग्नावस्था में भी अपनी गौरव गाथा का वर्णन स्वतः करता है। देखने में तो यह दुर्ग बहुत प्राचीन प्रतीत नहीं होता, किन्तु यह आभास होता है कि यह दुर्ग अति प्राचीन है। इस दुर्ग का राजनीतिक और प्रशासनिक महत्व रहा है। अभी तक यह पता नहीं चल सका कि इस दुर्ग का वास्तविक निर्माता कौन था? इसकी निर्माण शैली मध्ययुगीन शैली के निर्माण दुर्गों से मिलती है। इस दुर्ग के निर्माता के सन्दर्भ में उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों के अनुसार जैतपुर में निवास करने वाले महाराजा छत्रसाल के पुत्र जगतराज के उत्तराधिकारियों ने इसका निर्माण कराया था। यह दुर्ग जगतराज के पुत्र कीर्ति सिंह के माध्यम से अस्तित्व में आया। जब कीर्ति सिंह ने अपने राज्य का विभाजन किया तब उन्होंने अपने पुत्र खुमान सिंह को चरखारी के आस–पास का क्षेत्र दे दिया और अपने दूसरे पुत्र गुमान सिंह को बाँदा से लेकर अजयगढ़ का राज्य दे दिया। खुमान सिंह के पुत्र का नाम बखत सिंह था। शिशु अवस्था में उसका पालन–पोषण करने के लिए नोने अर्जुन सिंह को नियुक्त किया गया था। वह भूरागढ़ दुर्ग में निवास करके बखत सिंह का पालन–पोषण किया करता था। इसी समय अवध के नवाब का आक्रमण बांदा में हुआ था। बखत सिंह की सेनाओं ने अवध के नवाब की सेनाओं को खदेड़कर भगा दिया।



भूरागढ़ दुर्ग का प्रवेश द्वार

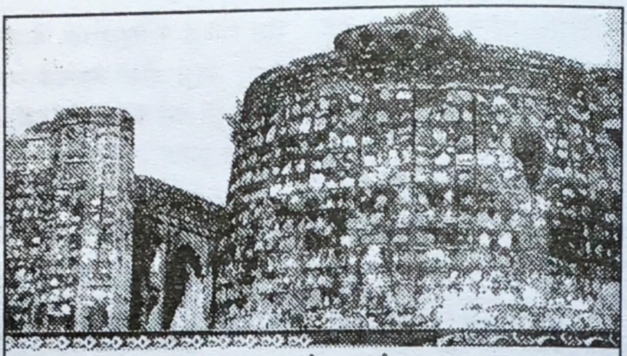
सन् १७३० में महाराज छत्रसाल का स्वर्गवास हो गया था। उन्होंने अपने जीवनकाल में यह दुर्ग और राज्य का १/३ भाग पूना के पेशवा बाजीराव को उपहार स्वरूप भेंट इसलिए दे दिया था कि जब बुंदेलखण्ड में मुहम्मद बंगश का आक्रमण सन् १७२७–२८ में हुआ था। उस समय पेशवा बाजीराव ने छत्रसाल की मदद की थी तथा उन्होंने बाजीराव पेशवा के साथ अपनी पुत्री मस्तानी का विवाह भी कर दिया था। उसके पश्चात् सागर में रहकर गोविन्द बल्लाल खेर अथवा गोविन्द पन्त बुंदेली यहां के उन क्षेत्रों की देख–रेख करते थे, जो बाजीराव पेशवा को छत्रसाल से मिले हुए थे। बांदा में मराठा प्रतिनिधि कृष्णा जी अनन्त ताँबे रहा करते थे।

सन् १७४६ ई. के आस–पास मराठों और बुंदेलों के मध्य सरदेशमुखी टैक्स की अदायगी को लेकर कुछ विवाद हुआ। इस विवाद ने युद्ध का रूप ले लिया। मल्हार जी होल्कर और ग्वालियर नरेश सिंधिया ने सन् १७४६ में जैतपुर और पन्ना पर आक्रमण किया। जैतपुर नरेश जगतराज और पन्ना नरेश सभासिंह को भूरागढ़ दुर्ग तक खदेड़ा और यहीं मराठों और बुन्देलों का दूसरा समझौता हुआ।

सन् १७८७ के बाद शमशेर प्रथम के पुत्र अलीबहादुर प्रथम को सिंधिया की सहायतार्थ ग्वालियर भेजा गया। इस समय मराठे मुगलों की सहायता कर रहे थे। इसी समय गुलाम कादिर ने मुगल बादशाह आलमशाह की आंखें निकाल ली थीं। ग्वालियर में अलीबहादुर प्रथम की मुलाकात हिम्मत बहादुर गोसाई से हुई। दोनों ने संयुक्त रूप से गुलाम कादिर को दण्ड दिया। इसके पश्चात् बुंदेलखंड में मराठों का शासन देखने के लिए अलीबहादुर हिम्मत बहादुर गोसाई के साथ सन् १७९१ में बाँदा आ गये। इस समय भूरागढ़ दुर्ग में नोने अर्जुन सिंह प्रशासनिक देखभाल करता था। कहते हैं कि एक प्रेम–प्रसंग इसी समय भूरागढ़ दुर्ग में चल रहा था। कहते हैं राजघराने की किसी राजकुमारी का प्रेम–सम्बन्ध सरबई के निकट रहने वाले नटों के गाँव में एक युवा नट से हो गया था। जब ये चर्चा चारों तरफ फैली उस समय यहाँ के कार्यरत शासक ने एक शर्त रखी कि यदि नट रस्सी से केन नदी को पार कर लेगा तो उसकी प्रेमिका का विवाह उससे कर दिया जायेगा। नट ने यह शर्त स्वीकार कर ली। नट नदी पार करने वाला ही था कि यहाँ के शासक ने रस्सा कटवा दिया। जिससे नट की मृत्यु रस्से से गिरकर हो गई थी। नट पर श्रद्धा रखने वाले व्यक्तियों ने दुर्ग के निकट उसकी स्मृति को ताजा बनाये रखने के लिए एक नटबलि मन्दिर का निर्माण करा दिया। जो आज भी भूरागढ़ दुर्ग की प्राचीर के सन्निकट बना है। मकर संक्रान्ति के पर्व पर यहाँ मेला लगता है तथा नट लोग अपनी श्रद्धांजली अर्पित करते हैं।

सन् १७९२ में अलीबहादुर प्रथम ने नोने अर्जुन सिंह से यह गढ़ जीत लिया और उस पर अपना अधिकार कर लिया तथा उसी दुर्ग में रहकर उसने बांदा नवाब की उपाधि धारण की। इस अभियान में उसका सहायक हिम्मत बहादुर गोसाई था। हिम्मत बहादुर गोसाई के साथ बुंदेलखंड के एक महाकवि पद्माकर भाट रहा करते थे। इसके पिता का नाम मोहन भट्ट था। ये तैलंग ब्राह्मण थे। इन्होंने जगत विनोद, गंगालहरी, हिम्मत बहादुर बिरदावली,

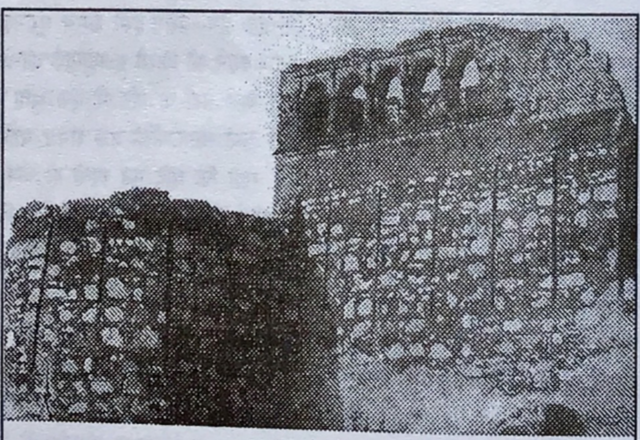
प्रबोध पचासा, बालाजी प्रकाश, बाल्मीकि रामायण (राम रसायन) एवं पद्माभरण नामक ग्रन्थों की रचना की। इनका मकान राजकीय बालिका विद्यालय बाँदा के सन्निकट था। इन्हें केन नदी बहुत ही प्रिय थी। यहां केन नदी के तट पर निवास करने वाली केवट जाति की बालिका सुधा से इनका प्रेम हो गया था। इसी बालिका से प्रभावित होकर उन्होंने अपने नाम के आगे सुधाकर जोड़ना प्रारंभ कर दिया। वे उसे देखकर कविता लिखा करते थे। कुछ दिन बाँदा में निवास करके पद्माकर सागर चले गये और वहाँ से कई वर्षों बाद लौटे। उसके बाद उन्हें मालूम हुआ सुधाकर ने उनके वियोग में प्राण त्याग दिये हैं। पद्माकर ने अपना तमाम समय भूरागढ़ दुर्ग में केन नदी के किनारे बिताया और अपनी प्रेयसी को इस प्रकार याद करते रहे –


भूरागढ़ दुर्ग का बुर्ज

अलि ह्वहै कहा अरविन्द सो आनन,
इन्दु के हाय हवाले पर्‌यो।
'पद्माकर भाषा न भाषें बनै
जिय ऐसे कछूक कसाले पर्‌यो।।'

पद्माकर सुधाकर की याद करते हुए यहाँ से विदा हो गये।

सन् १८०२ में नवाब अलीबहादुर प्रथम की मृत्यु कालिन्जर में हो गयी थी उसके पश्चात् नवाब शमशेर बहादुर बाँदा के नवाब बने। इस समय हिम्मत बहादुर गोसाईं अंग्रेजों से मिल गया। अवसर का लाभ उठाते हुए ६ दिसम्बर १८०३ में अंग्रेजों की सेना शमशेर बहादुर के राज्य में घुस आयी। इस सेना में तोप खाने, घुड़सवार और पैदल सैनिक शामिल थे तथा सेना का नेतृत्व लेफ्टिनेंट पावेल कर रहे थे। इसी बीच पावेल और हिम्मत बहादुर ने बाँदा पर अधिकार कर लिया और शमशेर बहादुर को केन के तट से पीछे हटने को विवश किया। शमशेर बहादुर ने पुनः भूरागढ़ लेने का प्रयास किया, पर असफल रहा। कालान्तर में अंग्रेजों ने यह दुर्ग अजयगढ़ रियासत के उत्तराधिकारियों को सौंप दिया।


भूरागढ़ दुर्ग की प्राचीर

सन् १८५७ की क्रान्ति में बाँदा के नवाब अलीबहादुर द्वितीय ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जब अन्य क्षेत्रों में क्रान्ति प्रारम्भ हुई तो उसका प्रभाव बांदा में पड़ा। जून १८५७ में यहाँ क्रान्ति का शुभारम्भ हो गया। अनेक अंग्रेज अधिकारियों को मारकर बाँदा नगर और भूरागढ़ दुर्ग परक्रान्तिकारियों का कब्जा हो गया। १२ जून से लेकर १४ जून तक क्रान्ति होती रही और १४ जून को यहाँ से अंग्रेज पलायन कर गये और बाँदा के नवाब स्वतन्त्र शासक हो गये। १५ जून १८५७ से लेकर २० अप्रैल १८५८ तक भूरागढ़ दुर्ग बाँदा नवाब के अधिकार में रहा। इसी बीच व्हिटलाक का आक्रमण यहाँ हुआ। क्रांतिकारियों का युद्ध व्हटलॉक से गोयरा मुगली, भूरागढ़, दुर्ग, बांदा शहर पर हुआ। इस युद्ध में लगभग ३००० से अधिक क्रांतिकारी मारे गये किन्तु बाँदा गजेटियर तथा सरकारी रिकार्डो में केवल ८०० व्यक्तियों के शहीद होने का उल्लेख है। क्रान्ति के पूर्व नवाब ने भूरागढ़ दुर्ग की मरम्मत करायी थी और इसकी किलेबन्दी की थी किन्तु तात्यां टोपे के आवाहन पर बाँदा नवाब क्रांतिकारियों को अकेले छोड़कर कालपी चले गये। यहाँ की क्रान्ति क्रूरतापूर्वक दबा दी गयी। जिन लोगों को यहाँ मृत्युदण्ड दिया गया, उसके नाम सरकारी फाइलों में दर्ज हैं।

क्रान्ति समाप्त होने के पश्चात् जब अंग्रेजों ने यहाँ रेलवे लाइन का शुभारम्भ किया, उस समय दुर्ग में तोड़–फोड़ की गयी। कालान्तर में यह दुर्ग साधु–सन्तों और बदमाशों का अड्डा बन गया। इस दुर्ग में पहले ९५ एकड़ भूमि थी जो अब सिमट कर ९.५ एकड़ रह गयी है। दुर्ग की प्राचीर और आवासीय स्थल भग्नावशेष के रूप में देखे जा सकते हैं। प्रलोभी व्यक्तियों ने धन के लालच से दुर्ग का उत्खनन किया है तथा दुर्ग की प्राचीर के पत्थर शासन द्वारा निर्मित पानी की टंकी में लगा दिये गये। कतिपय लोगों ने दुर्ग पर कब्जा कर लिया है। और उसके किनारे मकान बनवा लिये हैं। दुर्ग की सन्निकट क्रान्तिकारियों के स्मारक भी हैं। जलाशय के नाम पर केवल एक बेहर शेष रह गई है।

– विजय पुस्तक भण्डार, बाँदा उ.प्र. □

ओरछा के इतिहास लेखक : दाऊ लक्ष्मण सिंह गौर

– सुधा रावत 'क्षमा'

यूँ तो हर नगर हर गाँव का एक इतिहास होता है। इतिहास यानि भूतकाल की सामाजिक और सांस्कृतिक स्थितियाँ कैसीं थी? व्यक्ति और व्यक्तित्व का लेखा जोखा, घटनाओं के विवरण व उनकी परिस्थितियों का सही ज्ञान, दिन, तिथि, निश्चित स्थान आदि–इत्यादि का ब्यौरेवार विवरण हमें इतिहास के झरोखे से ही ज्ञात होता है। अतः इतिहास अति महत्वपूर्ण है। किसी भी राज्य की सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करने के लिये इतिहास पलटना और उसका अध्ययन करना अति आवश्यक है।

बुंदेलखंड राज्य की जड़ें ओरछा में ही विद्यमान हैं सम्पूर्ण बुंदेलखंड रूपी वट वृक्ष यही पनपा, बड़ा और विकसित हुआ और उसी की शाखायें पूरे क्षेत्र में फैलती चली गई। बुंदेलखंड जैसे समृद्ध, सशक्त और महान राज्य का इतिहास भी विस्तृत, रोचक व समृद्धशाली है।

प्राचीन काल में हर जिले का गजेटियर हुआ करता था। जिससे लोगों को अपने क्षेत्र के इतिहास का ज्ञान होता था किन्तु गजेटियर आम जनसाधारण को उपलब्ध नहीं हो पाते थे। अतः हर व्यक्ति इतिहास का पूर्ण परिचय चाहकर भी प्राप्त नहीं कर पाता था। अधिकांशतः गजेटियर इंग्लिश में हुआ करते थे। जो अंग्रेजी न जानने वालों के लिये किसी काम के नहीं थे।

क्यों न ओरछा का वैभवशाली इतिहास सीधी, सरल भाषा में लिखा जाये, जो खास जनसाधारण के ज्ञान में वृद्धि करे और उन्हें उनके अतीत से परिचित कराये। शायद यही सोच रही होगी 'ओरछा का इतिहास' नामक पुस्तक लेखन के समय पुस्तक के लेखक दाऊ लक्ष्मण सिंह गौर जी की।

आम जन के लिये सीधी, सरल भाषा में लिखित ओरछा के इतिहास में ओरछा राज्य के लगभग समस्त महत्वपूर्ण घटनाओं, व्यक्तियों, राजवंशों, पौरातत्विक स्तम्भों, ऐतिहासिक इमारतों, किलों, मंदिरों, महलों, नदियों और पर्यटक स्थलों सहित सांस्कृतिक और सामाजिक सरोकारों की प्रामाणिक जानकारी अत्यन्त रोचक और विस्तृत रूप में वर्णित है और इन सबसे बढ़कर श्रीराम राजा सरकार के पावन चरित्र का अूनठा और अपूर्व वर्णन इस पुस्तक में है।

पुस्तक के लेखक ठा. लक्ष्मण सिंह गौर है। इस पुस्तक की विशेषता यही है कि यह रोचक साहित्यिक पुस्तक की तरह लिखी गई है। जैसा कि सभी जानते हैं कि इतिहास शब्द का अर्थ होता है 'ऐसा था' अथवा 'ऐसा हुआ था' अतः इतिहास पढ़ने का अर्थ है संबंधित व्यक्ति, घटनाओं व स्थानों और सन् ई. की सही जानकारी प्राप्त करना। किन्तु ओरछा का इतिहास पढ़ते समय आप बार–बार साहित्य–सरिता में गोते लगाते से लगते हैं। चाहे श्रीरामराजा के ओरछा आगमन की कथा हो या व्यासपुरा में स्वर्ण पुष्पों की वर्षा, महराज भारतीचंद द्वारा गाय को बचाते हुये प्राणों की आहुति या हरदौल विषयान की मार्मिक बलिदान गाथा। रायप्रवीण द्वारा अकबर को लगाई गई फटकार की घटना हो या मधुकरशाह द्वारा शाही–आज्ञा का उल्लंघन कर टीकमशाह की उपाधि प्राप्त करने वाली साहसिक घटना अथवा महाराज वीर सिंह द्वारा अपने पुत्र को मृत्युदण्ड प्रदान करने वाली अनूठे न्याय को स्थापित करती दिल दहलाने वाली घटना। ऐसी असंख्य गाथायें–घटनायें पुस्तक में कहीं गद्य तो कहीं पद्य–साहित्य का सा आनंद देती हैं।

पुस्तक पढ़ते हुये एक बार भी ऐसा नहीं लगता कि यह किसी कम पढ़े लिखे व्यक्ति द्वारा लिखी गई है। हालाकि स्वयं दाऊ का कथन है कि मेरे पास न तो किसी स्कूल का प्रमाण पत्र है न ही कोई डिग्री। पुस्तक में शब्द संयोजन, भाषा–विन्यास, घटनाक्रम इतने सटीक, स्पष्ट और यथायोग्य हैं कि ऐतिहासिक दृष्टि से भी पुस्तक त्रुटिहीन है। लेखक की लगन और मेहनत के बिना इतना कठिन श्रम सम्भव ही नहीं था। कैसे संभव हुआ यह सब इसी जिज्ञासा ने मुझे यह आलेख लिखने के लिये बाध्य किया।

दाऊ लक्ष्मण सिंह का पूरा नाम ठा. लक्ष्मण सिंह गौर है। आपका जन्म सन् १९२३ में मऊरानीपुर के पास पचवारा ग्राम में हुआ था। पिता का नाम दुर्गासिंह व माता का नाम फूल कुँवर देवी था। बचपन माता–पिता के सानिध्य में गाँव में ही बीता। युवा होते ही २० वर्ष की आयु में सन् १९४३ में ओरछा आये और रामराजा मंदिर में लिखा पढ़ी का (लिपिक)कार्य करने लगे। उस समय ओरछा में महाराजा वीरसिंह देव जू का राज्य था। तब से लेकर अब तक ८३ वर्ष की आयु में भी वे मंदिर की व्यवस्था और देखरेख में ही अपना समय बिताते हैं।

जब भी कभी ओरछा जाना हुआ मंदिर प्रांगण में एक सज्जन को अक्सर देखा– पायजामा कुरता या सफेद पंचा धोती, सिर पर काली टोपी काली जैकेट पहने गोल सा चेहरा, मझोल कद, गेहुँआ रंग चमकदार आँखें, छोटी नाक, चश्मा लगा अपनी धुन में इधर–उधर घूमते मंदिर की व्यवस्था देखते तो कभी किसी पुस्तक के पठन–पाठन में व्यस्त, लोग सम्मान से उन्हें दाऊ कहकर बुलाते, हर व्यक्ति के मन में उनके प्रति श्रद्धा का भाव देखा करती थी मैं। पता था ये लक्ष्मण सिंह दाऊ हैं। इन्होंने ओरछा का इतिहास लिखा है। परन्तु कभी ज्यादा बात करने का अवसर नहीं मिला, क्योंकि ओरछा जाकर तो सिवाय रामराजा के न तो कुछ दिखाई देता है न ही कहीं अन्यत्र मन लगता है। जब लौट कर घर आती थी तब सोचती अरे दाऊ से मिलना था।

पिछले दिनों ओरछा गई तो ठान कर गई कि इस बार दाऊ से मिलकर ही आऊँगी परन्तु दुर्भाग्यबश अस्वस्थ थे, अतः निराश लौटना पड़ा। सोचा अब तो बात लम्बी गई किन्तु इस बार कुछ

जल्दी ही बुलाबा भेज दिया राम राजा सरकार ने। और मैं कुछ दिनों के अन्तराल में पुनः पहुँच गई वहाँ पहुँच कर पता चला कि दाऊ की हालत तो बहुत खराब है, न दिखाई देता हे, न सुनाई। मैंने मंदिर में पुजारी जी पं. रमाकान्त दीक्षित जी से बात की। तो उन्होंने संकोच से कहा वे आजकल किसी से मिलते नहीं है। आप दूर से आई है, कोशिश करता हूँ।'' फिर पं. हरिश्चंद्र तिवारी जी के साथ उनकी कुटिया में भेजा। मंदिर के मुख्य द्वार के दाहिनी ओर एक कमरा है, उसी में दाऊ अपनी चचेरी बहन फूलकुंवर के साथ रहते थे। अन्दर जाकर देखा वे एक छोटे से चबूतरे के ऊपर लेटे हुए थे। उनकी हालत देखकर लगा कि आज फिर मुझे निराश ही लौटना पड़ेगा। कम दिखाई देने और कम सुनाई देने के साथ ही उनकी काया बिल्कुल जर्जर हो चुकी किन्तु जैसे ही तिवारी जी ने कहा – ''दाऊ आपसे कोई मिलबे आई हैं।'' दाऊ ने आँखें खोली, मैंने नमस्ते की तो उन्होंने दोनों हाथ जोड़ दिये। साथ ही उनकी आँखों में मैंने उठने की बेचैनी देखी वे आकुल हो बोल उठे – ''हमें उठा कें बिठारौ'' उनके उठ कर बैठते ही, मैंने अपना परिचय दिया, और जैसे ही यह बतलाया कि मैं आपसे ओरछा और आपके बारे में कुछ जानना चाहती हूँ। बस फिर क्या था दाऊ ने व्यौरेवार घटनायें बताना शुरू की। और जो धारा प्रवाह बोलना शुरू किया तो वह अंदाजा लगाना मुश्किल हो गया कि वह कुछ देर पहले बीमारी में लेटे हुए थे। तबियत खराब होने के बावजूद आवाज इतनी बुलंद कि एक–एक बात स्पष्ट समझ में आ रही थी। मैं बस धीरे से एक प्रश्न करती और सब अवाक से उन्हें देखते–मानो एक–एक घटना उन्हें याद आ रही थी। वे अति उत्साहित हो एक–एक पल को आत्मा से जी रहे थे। स्मृतियों की गंगा को वाणी का बहाव मिल गया बहुत कुछ अनकहा और अनलिखा बाहर आ रहा था। मैंने पूछा – आपकी शिक्षा कितनी है?

मुस्कुरा के बोले – स्कूल की शिक्षा तौ मामूली है। हमारे पास न तो कोई प्रमाण पत्र है न डिग्री।

फिर ओरछा का इतिहास कैसे लिखा?

बस लाइब्रेरी में किताबें मिल गईं। यहाँ राजा का पुस्तकालय हैं उसी में से किताबें पढ़ता रहता था। वहाँ कुछ हस्तलिखित किताबें भी हैं कुछ छपी हुई भी हैं, बस उन्हीं को पढ़ा तो प्रेरणा मिली कि ओरछा का इतिहास क्रमबद्ध और सीधी सरल भाषा में लिखा जाये। संसार में जीवित और उन्नत जातियों के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने इतिहास का भली भाँति ज्ञान रखें। देशकाल की गतिविधि और समय–समय पर हुये परिवर्तन आदि अनेक आवश्यक बातें इतिहास से ही जानी और मानी जाती हैं। बुंदेलखंड का इतिहास भी बहुत ही गौरवशाली और समृद्धशाली है। आने वाली पीढ़ी उसे जाने इसी के लिये यह छोटा सा प्रयास किया। बाकी सब रामराजा की कृपा है यह पुस्तक मैंने अपने गुरुवर श्री राम भुवन दास महंत ओरछा मड़ोर बनारस वाले को समर्पित की है।

ओरछा का इतिहास पुस्तक के अब तक १९–२० संस्करण निकल चुके हैं। सन् १९८५–८६ में १२१०० (बारह हजार एक सौ) प्रतियाँ बिक चुकी थीं। इसके अतिरिक्त महान ओरछा की महिमा नामक पुस्तक भी दाऊ ने लिखी है। जिसके और अधिक संस्करण निकल चुके हैं और हजारों प्रतियाँ बिक चुकी हैं।

रामराजा सरकार की दाऊ पर असीम अनुकंपा है। तभी तो उनका सम्पूर्ण जीवन मंदिर प्रांगण में रामराजा सरकार की सेवा करते हुये बीता। अपनी पूरी जमीन जायजाद भी उन्होंने मंदिर के लिये समर्पित कर दी। रामराजा–माता सीता जी सहित मंदिर की समस्त प्रतिमायें जो स्वर्ण मुकुट धारण किये हुये हैं तथा विवाह पंचमी के दिन जो मौर चढ़ाये जाते है, वे सब दाऊ ने ही गढ़वाये है। प्रमुख मंदिर में एक बड़ी सी चांदी की चौकी भी दाऊ द्वारा रखवाई गई है।

मंदिर प्राँगण के बीच में एक मंदिर बना है। जिसमें पंचमुखी भोलेनाथ के अलावा अन्य देवी देवताओं की प्रतिमायें भांति–भांति के शिवलिंग गणेश जी की मूर्ति आदि ये सब अनेक स्थानों से ला–ला कर दाऊ ने ही स्थापित की है। इस बारे में दूसरे लोगों से पता चला उनसे बात की तो यहाँ–वहाँ की बातों में टाल गये। उनकी बहन जो उन्हीं के साथ रहती थी। उन्होंने भी अपनी जायजाद बेचकर माँ विन्ध्यवासिनी मंदिर का निर्माण कराया यह मंदिर वेतवा नदी पर जाते समय रास्ते में मिलता है, गाँव वालों के साथ–साथ इस बात की पुष्टि मुख्य पुजारी जी भी करते हैं। पं. रमाकान्त दीक्षित जी ने उनकी प्रशंसा करते हुये कहा – दाऊ बहुत ही ईमानदार व्यक्ति है। मंदिर में तो उनके प्राण बसते हैं। मंदिर की सारी व्यवस्था उन्हीं की देखरेख में चलती है। ओरछा का राम राजा मंदिर ही एक मात्र ऐसा मंदिर है जिसका कोई ट्रस्ट नहीं है। सारी व्यवस्था जि. कलेक्टर, मुख्य पुजारी व दाऊ लक्ष्मण सिंह के जिम्मे है। जिसे वे तन, मन, धन से निभा रहे है और इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है वहाँ की सुचारू–व्यवस्था और नवीन निर्माण कार्य जो निरन्तर होते रहते हैं।

बहुत पहले लेखन के साथ–साथ दाऊ झाड़फूँक का काम भी करते थे। किन्तु जब राम राजा की लौ लगी सो सब दन्द–फन्द छोड़कर रामराजा के ही हो गये। चूँकि दाऊ मंदिर प्रांगण में ही रहते थे। अतः मेरे मन में जिज्ञासा थी कि उन्होंने रामराजा की किसी लीला का दर्शन किया है? क्योंकि रामलला तो अपनी लीलाओं के लिये ही जाने जाते हैं। उनका ओरछा आगमन ही महरानी गणेश कुंवरि की भक्ति और प्रेम का प्रतिफल और लीला का ही अंग है मैंने कई बार उनसे पूछा – कभी आपको कोई चमत्कार दिखा? हाँ कई बार। कह तो गये परन्तु वह घटना बताने के लिये तैयार नहीं थे। कहते जो चमत्कार हुये उन्हें हम ही जानते हैं तुम कैसे विश्वास करोगी। फिर बात बदल कर कहते–रामराजा की महिमा तौ अपरम्पार है। दूर–दूर से दर्शनार्थी यहां आते हैं। एक बार यहाँ इन्दिरा गांधी आई थी। १५–२० मिनट तक रामराजा के सामने खड़ी रहीं और बोली मैं अनेक तीर्थों में दर्शन करके आई हूँ किन्तु जितनी शान्ति यहाँ मिली अन्यत्र नहीं।'' बड़े–बड़े प्रभावशाली लोग भी यहाँ आते हैं। चमत्कार नहीं होता तो लोग बार–बार क्यों और कैसे आते? हमने फिर यही प्रश्न दुहराया – आपने क्या भगवान के दर्शन किये हैं? वे बोले हओ खूब सजीबर चलतन फिरतन देखे

साकार रूप। हमने कहा – अच्छा कैसे? मुझे लगा अब कुछ बतायेंगे किन्तु फिर उन्हें कुछ याद सा आया बोले राम चंद्रिका में एक जगह केशवदास जी ने कहा है –

कैउ रस केउ प्रकार के व्यंजन, दिन और रैन बखाने।
बिन बोले संतोष जनक सुख, काय भूख में जाने।
बोले संसार में एक सें एक व्यंजन धरे हैं उने देखत रओ

खूबइ चर्चा करत रओ, अकेलें स्वाद तौ बोई बता सकत हे, जीने उने खाये होंय।'' और जोर से ठहाका लगा कर खुद ही हंस पड़े।

हमने कहा – सुनते हैं राम राजा बच्चों के साथ खेलते हैं? इतना सुनते ही उनकी आँखें फैल गईं और बोले हाँ ५० साल पहले की बात है, बच्चे छत पर खेल रहे थे, तभी कुछ बच्चे चिल्लाते हुए भागे – वे देखो भगवान हमें छूने आ रहे है वे हमें मार रहे हैं। और वे देखते ही देखते छत से नीचे कूद गये और आश्चर्य की बात कि उन्हें कुछ भी नहीं हुआ। यह घटना हमारी आँखों देखी है।

अब तक दाऊ अपने पूरे रंग पर आ चुके थे एक अन्य घटना सुनाते हुये बोले – झांसी के एक पाराशर वकील थे। उनके तीन लड़के थे उनमें सबसे छोटा लड़का अन्धा, बहरा और गूंगा था। एक बार परेशान होकर वे उस लड़के को लेकर ओरछा आये और रामराजा के सामने उसको बिठा कर बोले – ''जौ कैसो लरका तुमने हमें दै दओ, अब का करें ई कौ? हमें नई चाने ऐसो लरका ई खों तुमई राखौ अपने पास।'' उनके दुःख को देखकर पुजारी जी ने कहा भगवान के स्नान कुण्ड में इसको डुबकी लगवा दो। और उसे ले जाकर रामराजा के स्नान कुण्ड में डुबो दिया। फिर क्या था वह तो बोलने सुनने लगा उसकी आंखें भी ठीक हो गई। आज वही बालक एक प्रतिष्ठित वकील है और पूर्णतया स्वस्थ है।

ऐसे ही एक मुसलमान (फकीर) रामराजा के दर्शनों के लिये आया परन्तु कुछ धर्म के ठेकेदारों ने उसे मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया। कहा – पट बंद हो चुके हैं। वह बाहर खड़ा होकर मन ही मन दुखी हुआ और एक कवित्त पढ़ने लगा –

छपक सफीक बादले दोस्त तू ही, रफीक मेरा, तू ही नजदीकी है।
हकीकी ख्याल कीजिये, बन्दे की अरज, दस्तवस्ताये
अटकी गरज, मोरी ओर देख जरा, अब तो दरस दीजिये।
काले का करार पड़ा, तेरे दरबार
खड़ा, चाहूँ जी–जान से, वे मुरव्वत न होइये।
तोरे जतन में फिकर मंद मन मोरौ, तोसें अरज बार–बार की।
विनती सुन मेहर आज कीजियें हिन्दुओं के नाथ हौ तौ मोरौ
कछू दावा नईं, अगर जगत के नाथ हौ तौ मोरी सुध लीजिये।

और देखते ही देखते मंदिर के पट खुले और रामराजा सरकार प्रकट हो गये। इस तरह एक के बाद एक अनेक चमत्कृत घटनायें दाऊ ने सुनाई, परन्तु अपने साथ घटित घटनाओं का जिक्र करने से वे कतराते रहे। हालांकि इशारा उस ओर कई बार किया पर स्पष्ट्या: पूरी घटना वे टाल गये। भगवान हैं सजीबर हमनें खूब चलतन–फिरतन देखे कह कर वे आँखें बंद करके स्मृतियों में डूब जाते हैं मन ही मन मुस्कुराते हैं, मानों उस सुखानुभूति का अनुभव कर रहे हों।

रामराजा के ओरछा आगमन की कथा की प्रामाणिकता के लिये दाऊ का कथन है कि ''अरे भाई यह तो पद्मपुराण में भी वर्णित है। इसके अलावा यह कथा भक्तमाल में जो गीताप्रेस गोरखपुर से प्रमाणित कथाओं की पुस्तक निकली है उसमें भी प्रकाशित है। इसके साथ ही मैंने अंतिम प्रश्न पूछा – दाऊ जीवन की इस संध्या बेला में और क्या करना शेष रह गया?

उनके चेहरे पर इस तरह के भाव आये मानो इस प्रश्न की उन्हें प्रतीक्षा थी। तपाक से बोले जैसे आचार्य कवीन्द्र केशव ने 'रामचंद्रिका' लिखी है मैं 'ज्ञान चंद्रिका' लिखना चाहता था? परन्तु अब तो ठीक से दिखाई भी नहीं देता। बहुत सी सामग्री एकत्रित कर ली है, मगर कोई सहयोग नहीं करता कुछ लोग सहयोग के बहाने सामग्री ले गये पर वापस करने नहीं आये। एक मजिस्ट्रेट हैं सिंह साहब उन्होंने कुछ रुचि दिखाई कुछ थोड़ा बहुत लिखा भी हैं देखो कब तक क्या हो पाता है? उदास होकर दाऊ ने लम्बी सांस ली। और दुःखी होकर बोले – हम तो बहुत साधारण व्यक्ति हैं साधारण सी हमारी व्यवस्था है। करना तो बहुत कुछ चाहते हैं पर कुछ सहयोग नहीं करते फिर उत्तेजित होकर बोले – कुछ लोग तो हमारा मजाक भी बनाते हैं तब दुःख ज्यादा होता है।

मैं सोचने लगी कितने अभागे होंगे वे लोग जो दाऊ का मजाक उड़ाते हैं। उनके सौभाग्य से तो कई भाग्यशाली लोग भी ईर्ष्या कर सकते हैं। चौबीसों घण्टे रामराजा की शरण में रहकर रोज बाल भोग का नाश्ता, राजभोग की दुपारी और रामराजा की ब्यारी में लगे प्रसाद से ब्यारी उनका भोजन है। और मंदिर प्रांगण में रामराजा के चरणों में उनका निवास है यह परम सौभाग्य कितनों को नसीब है? कल अन्य लोगों की तरह उनमें भी कई कमजोरियाँ और कमियाँ रही होंगी पर आज तो दाऊ का पूरा जीवन तपस्वियों की तरह है। सोलह प्रकार के व्यंजन भी सामने रख दो तो खट्टा, मीठा, नमकीन, सब कुछ एक साथ मीड़कर खाते हैं। कड़ाके की सर्दी में भी एक धोती लपटी थी पूरे तन पै।

चलने के लिये उठी तो दोनों हाथ हमारे सिर पर रखकर आशीर्वाद देते हुये रुंधे गले से कहा – ''हमाई खबर लये रइयो, आउत रइयो और अच्छे से जइयों उनके कमरे से ढेर सारा आशीर्वाद लेकर मैं बाहर आई पर मन के अन्दर कुछ कसक रहा था।

अब तक दाऊ कौ सम्मान ''महारानी कुँवर गणेश साहित्य सम्मान'' (केशव जयंती समारोह–ओरछा) तथा बुंदेली विकास संस्थान बसारी से दीवान प्रतिपाल सिंह सम्मान प्राप्त हुआ है जिसे बड़े गर्व के साथ बताते हैं दाऊ। किन्तु क्या महज एक सम्मान देकर हम अपने कर्तव्य की इति श्री मान लें? ऐसे लोगों को भले किसी मान–सम्मान या पुरस्कार की चाह न हो पर क्या हमारा फर्ज नहीं बनता कि वे बुजुर्ग जिन्होंने जीवन भर साहित्य, कला, संगीत या किसी अन्य क्षेत्र में कला साधना की है, हम उन्हें सम्मान दें?

– श्री हरिकुंज निकुंज, एफ–७, गीत बंगले फेस–दो,
दुर्गेश विहार, भोपाल ☐

परम्परायें क्यों?

– डॉ. डी.आर. वर्मा

बुंदेली संस्कृति में स्थानीय, क्षेत्रीय तथा जातीय परम्परायें पर्याप्त रूप में प्रचलित हैं। कुछ परम्पराओं को (नेंग) भी कहा जाता है। यह नेंग समाज में हजारों वर्षो से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते चले आ रहे है। यह परम्परायें पूर्वजों द्वारा सोच विचार कर बनाई गई होंगी तथा सभी प्रकार की परम्पराओं का कुछ न कुछ अर्थ तथा उद्देश्य भी अवश्य रहा होगा। जिस प्रकार शब्द रूढ़ हो जाने पर अर्थ खो देते हैं उसी प्रकार यह नेंग या परम्परायें रूढ़ हो जाने से अर्थ खो देती हैं। हमारे बुन्देलखंड के लोक जीवन में सामाजिक, धार्मिक क्षेत्रों में अनेक ऐसी परम्परायें हैं जिनका मूल उद्देश्य व अर्थ भावना विलुप्तप्राय हो गयी है। इन परम्पराओं के अर्थ ज्ञापन करने की दृष्टि से प्रस्तुत विचार रखे जा रहे हैं जो अग्रांकित रूप में हैं–

१. **विवाहोत्सव में मुख्य द्वार पर हरे बांस रखना –** चाहे लड़का की शादी हो या लड़की की प्रत्येक विवाह में मुख्य द्वार के दोनों ओर हरे बांस को टिकाया जाता है। हरियाली शुभ सूचक है और मंडपाच्छदन हेतु पलाश, आम, जामुन की टहनियों को मंगाकर शोभा बनाई जाती है। वंदनवार आम के पत्तों के बनते है – परन्तु दरवाजे के दोनों तरफ बांस रखना कुछ न कुछ कारण अवश्य रखता है। इसका तर्कयुक्त मौलिक कारण समाज से खोजने की आवश्यकता है।

२. **कंकन की क्या आवश्यकता है –** वर वधू दोनों के हाथों में लोहे से बने कांटेदार छल्ले पहनाये जाते हैं। इनकी नोंकों पर रक्तगुंजा छेद दी जाती हैं कंकन बांधने के समय की प्रक्रिया कन्नर या कन्नड़ नेंग की परम्परा के बाद सम्पन्न होती हैं विवाह में वर कन्या की पहचान तो पृथक हो ही जाती है। दूल्हा राजा का रूप तथा दुल्हिन रानी स्वरूपा होती हैं प्रश्न है कि कंकन बांधने का क्या औचित्य हैं? क्या कंकन सोने चांदी का नहीं हो सकता था? कंकन बंधन शादी की लोकप्रिय व अनिवार्य प्रथा हैं इस प्रथा के चलने का करण भी ज्ञात करने की आवश्यकता है।

३. **निकासू के समय मलियां फोड़ना –** निकासू अर्थात् बन्ना का तैयार होकर घर से निकलना। निकासू के समय कच्ची मिट्टी की दो मलिया कुम्हार के यहां से ली जाती हैं। कुम्हार नेग लेता है। मलियों को डिब्बीनुमा बनाया जाता है। उनमें चोकर थोड़ा नमक, कोयला, मिर्च, राई, हल्दी आदि रखा जाता है। कच्चे धागे से लपेट कर बंद कर दिया जाता है। बन्ना को निकास के समय आदेश दिया जाता है कि इन्हें लात से फोड़ दो व सीधे बिना पीछे देखे बारात हेतु प्रस्थान करो। बन्ना कथाकथित कार्य करके फोड़कर चल देता है अतः परम्परा का परिपालन अपनी जगह लोक संस्कृति में निर्वाध रूप से होता चला आ रहा है। परन्तु यह सब क्रिया करने का कारण क्या रहा होगा? इसका उद्देश्य वैज्ञानिकता लिये है या धार्मिक कर्मकाण्ड की लोक परम्परा है। क्या है? आदि प्रश्नों के उत्तर वांछित हैं। क्योंकि यह प्रश्न अब पहेली बनकर रह गये हैं।

४. **बन्ना निकासू के समय की अन्य परम्परायें –** विवाह की समस्त गतिविधियों को यदि विहंगम दृष्टि से देखा जाय तो बहुत सी परम्परायें ऐसी है जिनके पालन करने का कोई कारण पुराने लोगों से भी ज्ञात नहीं होता। जैसे – बन्ना के ऊपर चद्दरा तान कर मंडप सा बनाना तत्पश्चात उरई (घास) की तीलियां ऊपर से फेंकना, आजू बाजू से मूसल निकालना, रोटियां फेंककर बरार को देना आदि समस्त प्रश्न बिना सुलझे रह जाते है जब कि इनका कोई न कोई तार्किक कारण अवश्य रहा होगा जिसको खोजने की आवश्यकता है।

५. **नौकटा व मड़वा मारन की परम्परा –** टीका अगवानी, द्वारचार के उपरांत सवासा लड़का का फूफा/बहनोई बन्ना को कइयां लेकर एक बांस के पंखे को तथा बांस की एक थालीनुमा सादी चक्राकार प्लेट सी लेकर जाता है। इसे छिटिया कहते हैं यह नोंकटा है। बन्ना अपनी ससुराल के घर बने हुये मंडप के ऊपर उस पंखे को फेंकता हैं वह नोंकटा भी वही दे देता है। इन सब क्रियाओं नेगों के पीछे की पृष्ठ भूमि भी खोजी जाना चाहिए कि वह लोक संस्कार क्यों बनाये गये?

६. **कन्या धोबिन के पैर छूने जाती है –** विवाह के समय कन्या गांव की धोबिन के पैर छूने के लिये जाती है। गांव की कन्या सभी जाति के लोगों की कन्या मानी जाती है, फिर धोबिन पैर छुआती है और कैसा संस्कार व कैसी परम्परा है जो लोक संस्कृति के विपरीत दिखाई देती है? इसका कारण भी ज्ञात करने की आवश्यकता है। यदि कन्या गौरी पूजन को जाती है तो सर्वथा उचित है। धोबिन के पैर छूने जाने का कोई न कोई ठोस कारण अवश्य रहा होगा। वर्तमान परिवेश में यह परम्परा अनुचित लगती है।

७. **कन्नर की परम्परा –** पिक्रिमा के पूर्व कन्नर की परम्परा अनिवार्य है। लोकरीति में विवाह सम्पन्न कराने से पूर्व लड़का, लड़का का मामा तथा बन्ने की माँ तीनों चौक पुरी जगह में बैठते हैं। तीनों की चोटी एकत्र कर उस पर से पानी डालते हैं तथा मामा उसे पवित्र पान कर नेंग देते हैं व मामा उसका पान करते हैं इसका बड़ा महत्व माना जाता है। इसी प्रकार की कन्नर की क्रिया बन्नी के यहां होती हैं वहां की मामा–माई उस पवित्र जल का पान करते हैं। इसी समय एक धागा तीनों के सिरों को स्पर्श करता हुआ पूरते हैं जिसमें कंकन बांधा जाता है इसे कन्नर क्यों कहते हैं उक्त कन्नर की परम्परा के नेंगे का भी कुछ न कुछ कारण अवश्य रहा होगा। क्यों उक्त तीनों व्यक्ति एकत्र किये जाते हैं? इसके मूल में कोई ठोस सार्थक उद्देश्य अवश्य रहा होगा। वर्तमान समय इन सारी लोक परम्पराओं को भूल रहा है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति की तथा बुंदेली संस्कृति की बहुत सी परम्परायें विलुप्त होती चली जा रही हैं क्योंकि उनका अर्थ लोक मानस भूल चुका है।

८. **सिदोरी सिदौरा क्यों –** चौपर की गोटियों की सकल की सादा गोटें ४,५ प्रत्येक विवाह में खरीदी जाती है। बचाय के सामान में वधू पक्ष को दी जाती है बहू की विदा के समय लड़के वाले को दी

जाती है और मैड़े पर फेंक देने के लिये कहा जाता है। आखिर इन गोटों की क्या आवश्यकता है? यह किसका प्रतीक है। लाखों विवाहों में इन पर विचार कर खरीदा जाता है तथा फेंक दिया जाता है। इस परम्परा का निर्वाह तो हो रहा है परन्तु परम्परा क्यों पाली जा रही है? इसका कारण ज्ञात नहीं है। इस पर भी शोध करने की आवश्यकता है।

९. **रंगौठी या सरिया** – चढ़ाये के कार्यक्रम में सोने–चांदी के आभूषण व कपड़ों को बनवाया जाता हैं इसके साथ लोहे के तार के या रांगा के तार के छोटे–छोटे टुकड़े भी जरूरी ले जाये जाते हैं। इनकी चढ़ाये में क्या उपयोगिता कही जा सकती है। परन्तु यह परम्परा भी स्वस्थ रूप में बिना जाने चल रही है।

१०. **बेरी लाना** – परिक्रमा होने के पूर्व कुम्हार के यहां से ७ सात घैला (छोटे–छोटे घड़े) बारात पक्ष के लोग लाते है। कुम्हार को नेंग मिलता है। सात घैला (डबला) सात भांवरों के लिये होते हैं। एक परिक्रमा हो जाने पर एक दूसरी तरफ रख दिया जाता है इस प्रकार सात फेरे पड़ते हैं और सातों डबला उधर दूसरी तरफ रख दिये जाते हैं। पहले तो प्रश्न उठता है कि इसे बेरी नाम क्यों दिया गया है?

११. **तेल चढ़ाना** – मंडप के दिन से वर तथा कन्या दोनों को घर परिवार के सदस्य–बहिन, भाभी, माई आदि तेल चढ़ाने की परम्परा पूरी करते हैं। यह सात बार तेल चढ़ाने की क्रिया पूरी की जाती है। बन्ना हथेलियों पर घी की चुपड़ी गकरियां तथा उन पर गुड़ रखकर तेल चढ़वाता हैं इसी प्रकार बन्नी को तेल चढ़ाया जाता है विवाह के इस लोक संस्कार का भी अभी कुछ स्पष्ट रहस्य मालूम नहीं चला है। इसे जानने की आवश्यकता है।

१२. **पहली फाग ससुराल में न हो** – पहली विदा पर जब लड़की ससुराल में रहे तो यह ध्यान रखा जाता है कि होली का त्योहार ससुराल में न हो। अतः यदि लड़की ससुराल में हो भी तो उसे घर बुला लिया जाता है। विदा को गई हुई लड़की की वापिसी भी अधिकांश एक ही पक्ष में करने कराने की परम्परा है।

१३. **त्योहारों की परम्परायें** – विवाहोपरांत सावन पर्व को राखी ले जाती है इसमें डब्बा का बब्बा व सोटा अनिवार्य होते हैं। खेल खिलौनों के साथ खड़पुरी व मिठाइयां जाती हैं। वस्त्राभूषण तो लड़का वाले ले ही जाते हैं।

इसके पश्चात् संक्राति के अवसर पर गड़िया घुल्ला व पीतल का घोड़ा ले जाने की प्रथा हैं तथा अक्षय तृतीया के समय पुतरा–पुतरिया भी वर पक्ष वाले ले जाते हैं। वस्त्राभूषण तो चलते ही हैं। तात्पर्य है कि इनके महत्व पर दृष्टिपात किया जाना चाहिए।

१४. **अन्य परम्परायें** – मौर सिराना, मुर्दा को रास्ते में एक जगह विश्राम कराने हेतु क्षणिक उतारना, विशेष दिशा की ओर पैर करना आदि सैकड़ों परम्परायें प्रत्येक क्षेत्र में है। जातीयता के आधार पर भी इनमें भेद विभेद हैं जिनकी बिना कारण जाने लोक मानस मानता चला आ रहा है। इस प्रगतिवादी युग में अब ये स्वतः मिटती जा रही है क्योंकि कोई ठोस कारण ज्ञात नहीं है।

–ग्राम व पोस्ट – स्यावरी, झांसी, उ.प्र. ☐

बुन्देली गारी –

...धोका दै गव नेता

– डॉ. विनोद कुमार खरे

लंका सैं रावण चलौ, थैली भरकैं नोट।
सीता जू के द्वार पै, मांग रओ है वोट।।
करमन खौं रो रय हैं, अपने, धोका दे गव नेता।
पकर पकर जनता के पाँव।
भौत वोट सैं जीत चुनाव।।
अब ठुकरा दव है जौ गाँव।।
वौ निकरौ कारौ कउआ, जो हंस दिखाई देता।
करमन खौं....

किसमत अपनी निकरी खोटी।
तन ढँक वे खौं नईं लंगोटी।।
तरसैं खावैं रूखी रोटी।।
वौ तौ खारव मुरग–मुसल्लम, हमैं चटा दई रेता।
करमन खौं.....

"अब काये खौं रो रय भैया, धोका दै गव नेता....
वामैं नेता की का खोट।
पी सराब गिनवा कैं नोट।।
बैंचो तुमनैं अपनौ वोट।।
वोट बैंच कैं खुद खौं बैंचौ, पैलें काय न चेता।
अब काये खौं रो रय भैया...

मिलै साँप खौं दूदाधार।
तौ बिस बाढ़ै अपरम्पार।।
काय न फैलै भ्रष्टाचार।।
वोट–दूद खौं प्या–प्या, गुण्डा खौं कियौ बिजेता।
अब कायें खौं....

जो चुनाव मैं रुपया बाँटौ।
क्यों नेता सै लैगौ घाटौ?
का पागल कुत्ता नैं काटौ?
व्यापारी तौ करजा दैकें, ब्याज सहित लै लैता।
अब काये खौं...

बोट राष्ट्र की पुन्न धरोहर।
जाय न दै बैठें जिस तिस कर।
बोट देव लख चरितवान नर
जात–पाँत नातौ–रिसतौ लख, तुमनैं चुनौ चहेता।
अब काये खौं...

बोट शक्ति है अपरंपार।
बोटर सैं नेता सरकार।
बोटै दइओ सोच–बिचार।।
जई बोट सैं बोटर अपनौ, भाग खुदइ लिख लेता।
अब काये खौं....

– ७२, चन्द्रशेखर आजाद, झांसी ☐

चतुर दमाद

– संकलन : सरोजा 'शिल्पी'

ऐसें ऐसें – एक गाँव में एक बेटा रहत ते, वे खेती – किसानी कर कैं अपनो गुजारो करत ते। वे अपने लड़का खौं हमेशा समझावें कै तुम भी हमाय संगे खेतन पै काम करबै चलो करे। लेकिन घन्सू रोज कौनऊं न कौनऊँ बहानो बनाकैं घर सैं निकर जावे और अपने दोस्तन के संगे खेलत रये। बाई खौं लड़का के गुन देख कैं बड़ी चिन्ता लगे कै जो कौनऊँ काम में मन नईं लगाउत भगवान जाने इ कौ जीवन कैसें कटहै?

एक दिना बऊ घर के काम–काज में मगन हतीं कै पौर सैं मोगन बाई की आवाज सुनाई परी जिज्जी ओ जिज्जी तुम इतै बैठीं उतै मौड़ा के व्याओ को काम पसरो जल्दी चलो। बऊ ने घन्सू की तरफ देखो और बोली, हम काकी के संगे जा रये कऊँ जाओ तो घर की सांकर चढ़ा कैं जइऔ भलां।

बाई के जातनई घन्सू ने सांकर चड़ाई और काकी के चौतरन पै लड़कन के संगे जा बैठो। सबई लड़का आपस में खूब हंस–गुलगुला रयेते। भीतर सैं गाबे कीं आवाजें सुनाई दे रईंतीं। सबई खौं खूब मजा आ रओ तो बहू के आबे सें घर में एक नई रौनक आ गई ती। सब जनै बैठे व्याव कीं बातें कर रयेते इतने में पंगत बैठी सब जनें हंसी–ठिठौली के संगे खान लगे। पंगत उठी सो सबई जनन ने अपने–अपने घर की गैल देखी।

घन्सू ने घर की सांकर खोली और पौर के चौतरा पै जा परो और सोचन लगो। व्याओ में कितनो मजा आउत, अच्छे–अच्छे कपड़ा पैरवे मिलत, अच्छौ अच्छो खावे खौं मिलत, सबरे रिस्तेदार सोई जुरत, खूब गावो–बजाबो, मौज–मस्ती सबई कछू होत। अब तो हम सोई व्याओ करें। घन्सू ओ घन्सू बाई ने आवाज लगाई, घन्सू ने द्वारो खोलो, काये भइयां सो गये ते का? बाई ने टोको। आं हां अबई तो परे हैं आ कैं घन्सू ने कई।

बाई चैतरा पै घन्सू के पास बैठतीं बोलीं चलो भगवान की कृपा सैं सब व्याऔ काज अच्छे सें निपट गओ। बाई हम सोई व्याओ करैं, घन्सू की बात सुन कैं बाई खों हंसी आ गई। अरे सिररी भओ का, भइया तुमाओ व्याओ तो हो गओ। कबै भओ, जब तुमाये दद्दा हते। अबे गौनो नईं भओ, कल चले जाओ सो करा लिआओ। इतई पास के गांव में तो है तुमाई ससुराल।

दूसरे दिना बऊ ने सबेरें सैं कलेवा बना दओ और घन्सू खौं चलती बैरां समझाओ कै देखो बेटा पैदल जाने है सो तनक सावधानी सें चलिओ। और जहाँ पै रात हो जाये तो उतईं सो जइओ, रात कै न चलिओ भलां। घन्सू बाई की बात सुनकै चल दओ थोड़ी दूर चले सो घन्सू ने देखो कै कछू बुकरियां एक बाड़े में घुसीं, सो ऊने उन बुकरियन खौं उतै बंद कर दओ और आगै बड़ गये।

चलत–चलत आगैं पौंचे सो देखो कै एक गइया की बछिया भटकत फिर रई सो धन्सू ने ऊखौं एक पेड़ सें बाँध दओ और आगैं बड़ गये। तनक आंगे चले सो एक गदा दिखा परो सो ऊखौं नदी किनारें एक झोपड़ी में बंद कर दओ और आंगे बड़े सी चलत–चलत अपनी ससुराल के गांव में पौच गये और जैसई वे ससुराल के पीछें पैंचे सो उनै रात हो गई अब घन्सू खौं बाई की बात याद आ गई, कि जितै रात हो जाये सो उतई सो जइयो। सो वे अपनी ससुराल के पीछें पर रये।

इत: उनकी ससुराल बालन खौं कछु पता नईं हतो, सो रात कौ खाना बनाबे के लाने उनकी घरवाली ने अपनी अम्मा सैं पूंछी, काय अम्मा रात कैं व्यारी में का बना लेबें, सो अम्मा बोली कै उरदन की दाल और रोटी बना लो, सो उनने बना लईं। सब ने खाना खा लओ सो घन्सू की घरवाली ने पूंछी अम्मा तीन रोटीं बच गईं सो का करैं। अम्मा बोली ढांक कै धर दो सो उनने धर दईं।

जब सबेरो भओ सो सब जने उठ कैं घर के काम–काज करन लगे। इतने में घन्सू ने दरबाजे पै आवाज लगाई, सो लच्छू ने बाहर निकर कैं देखो। सो देखतनईं खुशी सैं फूलो न समाओ। बोलो – अरे देखो तौ को आओ, अपने लल्ला जू पधारे हैं लल्ला जू।

भीतर सैं दो तीन मोड़ा–मोड़ी भगत आये जीजा जू आ गये जीजा जू, और लच्छू के पास आ कैं ठांड़े हो गये। लच्छू ने रम्मू की तरफ देखो और बोलो कायरे रम्मू चीन लओ जीजा जी खौं। रम्मू बोलो हओ, तो काय ठांड़े डूड़ से परो पांव, लच्छू ने कई और हंस दओ। बिराजो लल्ला जू बिराजो, घन्सू खटिया पै बैठ गओ लच्छू घर के हाल–चाल पूंछन लगो।

इतने में लच्छू को पड़ोसी भगत आओ। बोलो भइया लच्छू कल सैं हमाये गधा को पता नइयां, जाने किते हिरा गओ, और रोन लगो। लच्छू ने हल्के खौं चुप कराओ बोलो भइया घबराओ नईं अबई चल कैं ढूड़त हैं। घन्सू सबई बातें बैठो–बैठो सुन रओ तो, सो ऊखों ध्यान आ गई, कै गधा तो ऊने नदी किनारें झोपड़ी में बंद करो तो सो लच्छू सैं बोलो इमें कौन सी बड़ी बात है, हम अबई बतायें देत कै इन को गधा काँ हैं और आँख बंद कर कै तनक देर बाद बोलो कै इतै सैं तनक दूर नदिया किनारें एक झोपड़ी में तुमाओ गधा बंद है। सो सुनतनई हल्के ने दौड़ लगाई, सो झोपड़ी में गधा मिल गओ वो भौतई खुश भओ बोलो अरे लच्छू को दामाद तो भौतई जानकार है। गांव के एक आदमी की बछिया हिरा गई ती तो वो भी लच्छू के घरे भगत गओ, बोलो – लल्ला जी हमाई सोई बछिया हिरा गई सो ऊको कछु पतो बता दो तो बड़ी कृपा होय। घन्सू ने आंखें बन्द करीं और बोलो – पूर्व दिशा में

चले जाओ एक पेड़ से बंधी है, तुमाई गइया की बछिया। वो आदमी भगत गओ ऊ खौं बछिया पेड़ सें बंधी मिल गई अब तो पूरे गाँव में लच्छी के दामाद के गुणन कीं बातें होन लगीं।

जब बुकरिया वाले ने सुनी सो वो भी घन्सू के पाँव पकर कै बोलो हमाई बुकरियाँ कऊं हिरा गई सी उने देख कै बताओ कै वे कां हैं। घन्सू ने फिर आंखें बन्द करीं और बोलो इ गांव सै सात कोस दूर एक बाड़े में तुमाई बुकरियाँ बंद है ले आओ मिल जैहैं। अब वो आदमी गओ सो ऊखौं ऊकी बुकरिया मिल गई। अब तो पूरे गाँव में हल्ला हो गओ कै लच्छू के दमाद खौं ऐसौ इलम आउत कै हिरानी चीज को पतो मिनटन में लगा लेत। गांव बारे घन्सू खौं खूब पइसा टका भेंटें देन लगे।

अब एक दिना का भओ कै ऊ गाँव की रानी कौ हार चोरी हो गओ। सब ने खूब ढूंड़ो लेकिन वो हार कऊं न मिलो नौकरन ने राजा सैं कई कै महाराज लच्छू के दामाद खौं बुलाओ जाये वे तुरन्त बता दें कै हार कां है। राजा के सिपाही गये सो घन्सू खौं लिवा लै गये। राजा ने उए बिठारो अउ बोलो कै रानी कौ नौ लखा हार हिरा गओ सो ध्यान लगा कैं बताओ कै कां है। अब तो घन्सू की जान सूक गई हार तो ऊ ने धरो नईं हतो। बुकरियां, बछिया, गधा तो ऊने बंद करेते सो बता दये अब का करै। तोई जान बचाबे के लाने बोलो – महाराज "नौ लखा हार है उके लाने तौ मेहनत सैं देखने पर है समय लग जै", राजा ने कई ठीक है। तीन दिन कौ समय देत हैं तुमे, अगर तीन दिन में हार नईं मिलो तौ तुमाई गर्दन काट दई जै।

अब तौ घन्सू खौं काटो तौ खून नईं भौतई घबरा गओ। अपनी ससुराल आ गये बड़ी सोच में पर ग्ये कै अब का करो जाये कछु समझ में न आवे। पैले दिन तौ रोटी तक न खाई गई। रात हो गई पूरौ घर सो गओ गांव सो गओ अकेले घन्सू रात भर सोचत रओ कै काय खौं तौ आये ते इते। अब तो जान पै बन आई कां सैं पतो करैं जाने की ने रानी को हार चुरा लओ और प्रान हमाये कड़े जात।

एक दिन जैसें–तैसें निकर गओ अब दूसरो दिन हो गओ और हार कौ कछू पतो नईं कै कां है। घन्सू के ससुराल वाले तौ निश्चिन्त हते कै लल्ला जी के लाने जा कौन सी बड़ी बात है। वे तौ पल भर में हार कौ पता लगा लैं। अकेलैं घन्सू के सो प्राण सूके जा रये ते कै कल तौ गर्दन कटनेई है। कोई सैं कछू कै भी नईं पा रये ते। दिन निकर गओ रात हो गई सब सो गये। अकेले घन्सू की नींद तो घन्सू सैं कोसन दूर हती चिन्ता के मारें न आबै। अब घन्सू ने सोची कल तौ गर्दन कटनेई है कम सैं कम आज तौ तनक सो लैवें सो जोर सैं बोले – "आरी निंदिया होत भोर कटे घिचिया" सो उनकी पड़ोसन जी कौ नाम निंदिया हतो और ओइने हार चुराओ हतो। सो वा भगत आई और घन्सू के पाव पकड़ कै बोली लल्ला जी धीरे बोलो धीरे। आप तो सब जानत हमईं निंदिया आयें और हमईं ने जौ हार चुराऔ माफ कर दो गलती हो गई जौ हार आप लै लो और हमें बचा लो।

हार खौं देख कै घन्सू तौ भौतई खुश हो गओ, बोलो जो हार लै जा कैं राज महल के पीछें पथरा के तरैं गाड़ आओ। निंदिया ने ऊसई करो इते घन्सू चैन सें सो गयें। सबेरौ भओ सो राजा के सिपाही आये घन्सू बोलो अबे तौ हम पूजा कर रये, तनक देर में फिर सिपाही आये सो बोलो अबै तो हम खाना खा रये तीसरी बार सिपाही फिर आये तो घन्सू संगे गये। राजा के सामने बैठे आँखें बन्द करी थोड़ी देर बाद बोले – राजमहल के पीछे पथरा के नेचैं गड़ो है रानी कौ नौ लखा हार। सिपाही गये खोदो सो मिल गओ हार। अब तौ राजा भौतई खुश भये और खूब धन–दौलत घन्सू खौं दई।

बोले – अब दो चार दिन तुम हमाये मेहमान बन कैं रओ, राजा ने राज महल में घन्सू की खूब आवभगत करी। दो–चार दिन बाद घन्सू बोले – महाराज अब हमें आज्ञा देओ, सो राजा ने उने खूब सोनो – चांदी, वस्त्र–आभूषण, दै कैं उनकी पत्नी सहित उनें विदा करो। ससुराल वाले बड़े खुश भये कै अब तौ हमाई बिटिया सुख सैं रै है।

जब घन्सू घोड़ा–गाड़ी में बैठ कैं घरै पौंचे सो गाँव वाले बड़े खुश भये कै हमाये गाँव कौ मोड़ा तौ बड़ो हुसियार निकरो राजा ने ई कौ सम्मान करो और जब घन्सू की बाई खौं पतौ लगो सो वे तौ फूलीं नईं समाईं कै बहू भी घरे आ गई और लड़का इतैक कमा लिआओ कै जीवन भर सुख सैं रै है। बाई कीं सब चिन्तायें मिट गईं।

– भोपाल म.प्र.

मोरे मन की हो गई

– साकेत 'सुमन' चतुर्वेदी

धरकें ध्यान हमारौ धन्नो, बरोंटन में खो गई।
मोरे मन की हो गई भैय्या, मोरे मन की हो गई॥

मोय देखकें ज्यू–रैया में, उठे प्रेम–बरबूला।
मोंसें उक्टा लगी चचोरन, बना सपन–घरगूला॥
नेंक झपी न आँख, टकटकी लगा तकत बा, रै गई।
अपने ज्यू की सारी बातें, बिना कअें ज्यों कै गई॥

सैनन बातें भईं मुलक कीं, सिररन सी गत हो गई।
मोरे मन की हो गई भैय्या, मोरे मन की हो गई॥

खुली जबई झक्की, अकबक्की निगां कर लई नैंची।
नेंक चली, पाछें हेरी फिर चली चमक की कैंची॥
पिरिया भर फिर बा! बगिया सें टोर लिआई फूला।
हार बनावे लगी प्रेम सें झूल खुशी के झूला॥

इत्ती परी उलात, फूल की जगां, अंगुइया पो गई।
मोरे मन की हो गई भैय्या, मोरे मन की हो गई॥

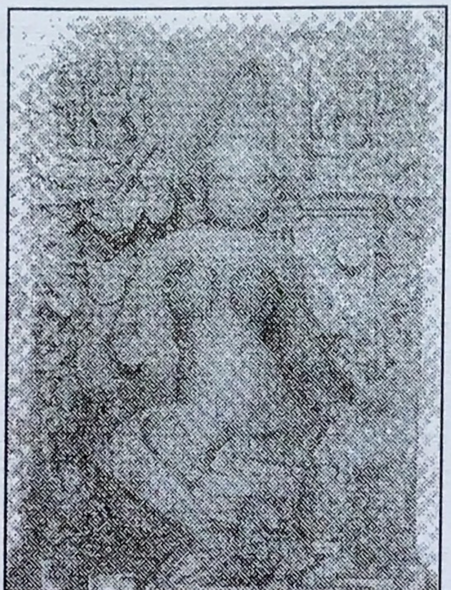
– ७२१, चित्रा चौराहा, झांसी ☐

खजुराहो की शाक्त प्रतिमाओं में पार्वती

– प्रो. चित्रलेखा अवस्थी

हिन्दू धर्म में देवी को विशेष महत्व प्राप्त है वह आदिकाल से ही शक्ति के रूप में पूज्य रही है। इस शक्ति को मातृत्व के गौरवान्वित पद पर सुशोभित किया गया है मातृ–पूजन की परम्परा भारतीय संस्कृति की मूल धरोहर है। माता के रूप में देवी जनसाधारण के मध्य अन्य देवताओं की अपेक्षा अधिक निकट है। इन्हें महीमाता, जगदम्बा अम्बा, अम्बामाई, महामाई माता, मातृदेवी आदि के नामों से जाना जाता है।

शक्ति का घनिष्ट सम्बन्ध मुख्यतः शैव धर्म से है, शक्ति का प्रारम्भिक रूप शिव की पत्नी उमा अथवा पार्वती हैं जो जगज्जननी कही जाती है। वे शिव की अर्द्धांगिनी के रूप में पूज्य हैं, वे ही उमा, पार्वती, दुर्गा, काली आदि नामों से विख्यात हैं। इस देवी को भारतीय दर्शन में आद्यशक्ति प्रकृति के रूप में स्वीकार किया गया है, जो सृष्टि का सक्रिय तत्व है। देवी का वह रूप शाक्त सम्प्रदाय में पूज्य है। हिन्दू धर्म में विष्णु और शिव के अतिरिक्त अगर किसी देवता की महिमा और गरिमा चरम सीमा पर पहुँची तो वह केवल शक्ति (दुर्गा) की। शक्ति की पूजा और उपासना करने के कारण इसके धर्मावलम्बी 'शाक्त' कहे गये।



पार्वती, विश्वनाथ मंदिर, दक्षिण पश्चिम गौड़ मंदिर १००२ ई.

खजुराहो–कला में शक्ति के विभिन्न स्वरूपों का अंकन मिलता है। इनमें कुछ मूर्तियां तो शिल्प शास्त्रीय परम्परा से भिन्न बनी है जैसे सिंह वाहिनी, गजलक्ष्मी तथा हंस और गज के साथ सरस्वती। इन मूर्तियों को देखने से लगता है कि शिल्प कर्म के साथ शिल्पी की कल्पना में जैसे–जैसे स्वरूप आता गया उसने उसे शिल्प में उत्कीर्ण कर दिया। खजुराहो से प्राप्त देवी–मूर्तियाँ इस प्रकार हैं – पार्वती, गौरी, दुर्गा, महिषमर्दिनी, सप्तमातृकापट्ट, सप्तमातृका (ब्रह्माणी, वैष्णवी, वराही, माहेश्वरी, कौमारी, चामुण्डा, इन्द्राणी), नरसिंही, लक्ष्मी, सिंहवाहिनी लक्ष्मी, सरस्वती।

हिन्दू देव परिवार में शिव पत्नी पार्वती का स्थान विशेष महत्वपूर्ण है। प्राचीन साहित्य में इन्हें उमा, आर्या, गौरी, हेमवती, शिवा, भवानी, रुद्राणी, शर्वाणी, अपर्णा आदि नामों से अभिहित किया गया है।

खजुराहो कला में पार्वती का अंकन मूर्तिरूप में शिव के साथ बहुतायत हुआ है। साथ ही पार्वती की स्वतन्त्र मूर्तियों का भी अंकन खजुराहो– कला में हुआ है। पार्वती के अन्य स्वरूपों की मूर्तियाँ भी खजुराहो–कला में मिलती है।

पुरातत्व संग्रहालय खजुराहो में पार्वती की एक प्रतिमा प्रमुख कक्ष में है। इस प्रतिमा में देवी को स्थानक मुद्रा में कमनीय मनोहर रूप में चतुर्भुज बनाया गया है। देवी के ऊपर के दोनों हाथों में कमल अंकित है। नीचे के दोनों हाथ खण्डित हो चुके हैं। मूर्ति के परिकर में नीचे तीन सेविकायें प्रदर्शित हैं। मूर्ति के सिर पर मुकुट का अंकन तथा सिर के पीछे प्रभामण्डल का अंकन हुआ है। प्रभामण्डल के बायें विष्णु तथा दाहिने ब्रह्मा का अंकन हुआ है। मूर्ति के परिकर में अप्सराओं तथा शार्दूलों के भी चित्र बने हैं। पादपीठ के नीचे गोधा का भी अंकन हुआ है।

पार्वती की एक अन्य मूर्ति पुरातत्व संग्रहालय खजुराहो के शैव कक्ष में सुरक्षित है। यह मूर्ति स्थानक मुद्रा में अंकित है। मूर्ति द्विभुज है किन्तु इसके दोनों हाथ स्कन्धमूल से ही खण्डित हो चुके हैं। दाहिना हाथ का कुछ अंश अक्षरसूत्र सहित वरदमुद्रा में शेष है। मूर्ति के पैर के पास पद्मपीठ के नीचे गोधा का अंकन स्पष्ट है। पार्वती की यह प्रतिमा लगभग छः फीट ऊँची है। इसमें देवी को जटामुकुट धारण किये तथा गले में हार के अलंकरण से युक्त दिखाया गया है। पैरों में पायल का भी अंकन हुआ है। मूर्ति पूरी तरह अलंकृत है। मूर्ति के परिकर में दोनों ओर देवी–देवताओं तथा शार्दूल आकृतियों का अंकन है। दोनों ओर एक–एक नारी आकृति तथा कुछ अनुचरों के चित्रों का अंकन है। मूर्ति के सिर के पीछे प्रभामण्डल के ऊपर शिव की ललितासन मुद्रा की एक छोटी सी मूर्ति का भी अंकन हुआ है। पार्वती की यह प्रतिमा खजुराहो की अन्य पार्वती की प्रतिमाओं की अपेक्षा अत्यन्त सुन्दर, विशाल एवं अलंकृत है। पादपीठ के दोनों ओर एक–एक नारी आकृतियाँ हाथ जोड़ें प्रार्थना मुद्रा में बैठी दिखायी गई हैं। मूर्ति में कटिमेखला उत्तरीय का अंकन अत्यन्त सुन्दर हुआ है। प्रतिमा–लक्षण की दृष्टि से यह प्रतिमा बहुत ही सुन्दर प्रतीत होती है।

पार्वती की एक मूर्ति खजुराहो के पार्वती मंदिर के गर्भगृह में प्रतिष्ठित है यह प्रतिमा समभंग स्थानक मुद्रा में अंकित है। पद्मपीठ के नीचे गोधा की आकृति भी अंकित की गई है। इस

प्रतिमा में देवी को चतुर्भुजी दिखाया गया है। देवी के चारों हाथ खण्डित हैं। यह मूर्ति अत्यन्त अलंकृत है देवी के सिर में मुकुट, कानों में कुण्डल अंकित किया गया है। गले में हार, हाथों में भुजबन्ध तथा कटिमेखला का अलंकरण भी हुआ है। मूर्ति के दोनों ओर पैर के समीप तीन–तीन सेविकाओं का अंकन हुआ है। शार्दूल, हाथी तथा अनेक परिवारों के साथ देवी–देवताओं का भी अंकन हुआ है। मूर्ति के सिर के पीछे अलंकृत प्रभामण्डल बना हुआ है। प्रभामण्डल के दाहिने ब्रह्मा तथा बायें विष्णु का अंकन हुआ है। प्रभामण्डल के ऊपर शिव का अंकन एक छोटी रथिका में हुआ हैं। सभी दृष्टि से पार्वती की यह प्रतिमा अत्यन्त सुन्दर एवं अलंकरण से पूर्ण लगती है। पार्वती के मूर्ति के नीचे गोधा का अंकन हुआ है।



पार्वती, पुरातत्व संग्रहालय खजुराहो

दूलादेव मंदिर के गर्भगृह के द्वार शाखा में पार्वती की तीन प्रतिमाओं का अंकन हुआ है। ये तीनों प्रतिमायें चतुर्भुजी बनायी गई हैं। विश्वनाथ मंदिर के प्रदक्षिणा पथ में बायें तरफ पार्वती की एक प्रतिमा स्थानक मुद्रा में बनी है। इस मूर्ति में देवी को चतुर्भुज बनाया गया है। उनके ऊपर के दो हाथों में कमल का अंकन है। नीचे का दाहिना हाथ वरदमुद्रा में तथा बांया हाथ खण्डित हो चुका है। विश्वनाथ मंदिर के दक्षिण–पश्चिम के आयतन के गर्भगृह के भीतर पार्वती की एक मूर्ति उत्कीर्ण हैं। इस प्रतिमा में देवी को ललितासन मुद्रा में बैठे दिखाया गया है। इस प्रतिमा में देवी को अष्टभुजी बनाया गया है। देवी का दाहिने का निचला हाथ वरदमुद्रा में है तथा हथेली पर पद्म का चिंह्न भी है। बायें तरफ के निचले हाथ में कलश अंकित है शेष सभी हाथ खण्डित हो चुके हैं। देवी के पैर के समीप सिंह का अंकन हुआ है। बगल में दोनों तरफ शार्दूल एवं अप्सराओं का अंकन है। देवी के सिर के पीछे प्रभामण्डल बना हैं तथा प्रभामण्डल के दाहिने ब्रह्माणी तथा बायें वैष्णवी का अंकन हुआ है। पार्वती के सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल तथा हाथों में भुजबन्द का अंकन हुआ है। गले में सुन्दर हार एवं लम्बा ग्रैवियक वक्ष पर लटकता बनाया गया है। कमर में मेखला का भी अंकन हुआ है। मूर्ति से ध्यानस्थता का भाव प्रदर्शित होता है।

जगदम्बा मन्दिर के बाहर बायें तरफ, जंघा पर पार्वती की एक चतुर्भुज मूर्ति उत्कीर्ण है यह मूर्ति स्थानक मुद्रा में बनी है मूर्ति के हाथों में क्रमशः वरद, त्रिशूल, कमल का अंकन हुआ है चौथा हाथ खण्डित हो चुका है। कन्दरिया महादेव मंदिर के गर्भगृह के प्रवेश द्वार के चौखट पर मध्य में पार्वती की एक पद्मासनमुद्रा की मूर्ति उत्कीर्ण है। यह मूर्ति चतुर्भुजी है। प्रतिमा के हाथों में अभय, कमल तथा घट का अंकन हुआ है। एक अन्य प्रतिमा कन्दरिया मंदिर पर बाहर दाहिने रथिका में उत्कीर्ण है। यह मूर्ति चतुर्भुजी है तथा इसका पहला हाथ अभय मुद्रा में, दूसरा खण्डित, तीसरे में सर्प तथा चौथा हाथ भी खण्डित हो चुका है। परिकर में देवी देवताओं, अनुचरों एवं व्यालों का अंकन हुआ है। जार्डिन संग्रहालय खजुराहो में पार्वती की तीन प्रतिमायें है। एक प्रतिमा में पार्वती को स्थानक मुद्रा में दिखाया गया है। मूर्ति के ऊपर शिवलिंग का अंकन भी हुआ है। प्रतिमा के सभी हाथ खण्डित हो चुके हैं। यह प्रतिमा चतुर्भुजी है। प्रतिमा के दाहिने गणेश तथा बायें कार्तिकेय का अंकन हुआ है। दूसरी प्रतिमा में पार्वती को स्थानक मुद्रा में चतुर्भुजी दिखाया गया है। पार्वती के ऊपर के दोनों हाथ में कमल का अंकन है तथा नीचे के दोनों हाथ खण्डित हो चुके हैं। पार्वती–प्रतिमा के दाहिने गणेश तथा बायें कार्तिकेय का अंकन हुआ है।

तीसरी प्रतिमा में पार्वती को ललितासन में बैठे दिखाया गया है यह मूर्ति भी चतुर्भुजी है। इसके पहले हाथ में कमल, दूसरे में त्रिशूल का अंकन है तथा तीसरा और चौथा हाथ खण्डित हो चुका है। इन प्रतिमाओं में पार्वती को शक्ति के रूप में अंकित किया गया है।

खजुराहो की शाक्त प्रतिमाओं के अंकन में देवियों के शाक्त मत समस्त स्वरूपों का अंकन किया गया। खजुराहो की कला में पार्वती का अंकन मूर्तिरूप में शिव के साथ बहुतायत हुआ साथ ही पार्वती की स्वतंत्र प्रतिताओं का भी अंकन खजुराहे कला में हुआ। पार्वती के अन्य स्वरूपों की प्रतिमायें भी खजुराहों कला में मिलती है। खजुराहो की कला में पार्वती की प्रतिमाओं का अंकन शाक्त मूर्ति सम्पदा भारतीय कला की निधि है, यह मूर्तियाँ अपने सौन्दर्य के कारण विश्व के सैलानियों का आकर्षण केन्द्र बनी हुई है।

– महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर □

बड़वाई पाँवनन की

– **सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'**

अपनीं नोंनीं भई अवाई,
छाती भई सबाई।
ड्योढ़ौ भवो उराव, दोगुनीं हिम्मत सी भरयाई।
शाँन भई चौगुनी, दसगुनी रौनक जाँ–ताँ छाई।
राखो मान हमाव, अपुन की का करिए बड़वाई।
नेंम 'शिरीष' निभाँयें रइयो जब–तब कर पौनाई।

– शुंक्लाना, छतरपुर □

वीरांगना अवन्तीबाई : साहित्य के झरोखे से

– डॉ. डी.पी. खरे 'प्रसाद'

भारत भूमि वीर प्रसूता है। भारतीय इतिहास वीरों की अमर गाथाओं को संजोये उनके त्याग, शौर्य और बलिदानों से भरा हुआ है। शहादत के प्रति भारतीयों के मन में बहुत मोह है। यदि शहादत किसी नारी की होती है तो यह मोह बहुत गहरा होकर श्रद्धा की पराकाष्ठा तक पहुँच जाता है। देश पर प्राण न्यौछावर करने वाली भारतीय नारियाँ कभी भी पुरुषों से पीछे नहीं रही। वे सदैव पुरुषों की प्रेरणा शक्ति बनकर जनमानस में अमर हो गईं। यह दूसरी बात है कि इतिहासकारों ने उनके बलिदान को कभी कमतर आंकते हुए उन्हें यथेष्ठ स्थान नहीं दिया हो।

ऐसी ही वीरांगनाओं में रामगढ़ राज्य की रानी अवन्ती बाई लोधी का नाम आता है, जिसने अपनी सूझबूझ और कुशाग्र बुद्धि तथा रणकौशल से न केवल अंग्रेजों को अपने पराक्रम का लोहा मनवाया अपितु अनेक देशी राजाओं, जागीरदारों, शूरवीरों में अद्वितीय छाप छोड़ी।

अवन्तीबाई जमींदार गुलजार सिंह [१] की इकलौती बेटी थी। इनका जन्म १६ अगस्त १८३१ को मध्यप्रदेश के सिवनी जिले के मनखेड़ी [२] ग्राम में माँ दुर्गा के आशीर्वाद से हुआ था। गौंड़वाने में इन्हें रानी दुर्गावती का अवतार कहे जाने की चर्चायें हुआ करती थी। वे बचपन से ही वीरों की कहानियाँ सुनने, अखाड़ों में तलवारबाजी के खेल देखने में न केवल अपनी उत्साहपूर्वक भाग लेतीं अपितु अपनी सहेली मुगिया के साथ अपने घर के अखाड़े में तलवार, कटार, भाला आदि चलाने का अभ्यास करते हुए प्रवीण हो चुकीं थी।

अवन्तीबाई ने बचपन में ही घुड़सवारी सीख ली थी। एक बार उन्होंने अपने गाँव के ही साथी राखनसिंह को, जिसने इन्हें घुड़सवारी सिखाई थी, तेंदुए के मुँह में से बचाया था। इस घटना से उनकी बहादुरी और पराक्रम की चर्चायें घर–घर में होने लगी थी। उन दिनों राजा शंकर शाह गढ़ मण्डला के यशस्वी राजा थे। उनका सभी दूर आदर और सम्मान था। वे अवन्तीबाई के पिता से मित्रवत व्यवहार किया करते थे। मित्र की इच्छा जानकर उन्होंने अवन्ती बाई का विवाह रामगढ़ के राजा लक्ष्मण सिंह के इकलौते राजकुमार विक्रमाजीत लोधी के साथ शिवरात्रि को सम्पन्न कराया था।

रामगढ़ के प्राचीन दुर्गा मंदिर में नवदुर्गा की पूजा के समय राजकुमार विक्रमाजीत के कहने पर इन्होंने तलवार के एक ही वार से भैंसा की गर्दन काट कर बलि दी तब उपस्थिति जन समुदाय ने रानी की वीरता की भूरि–भूरि प्रशंसा करते हुए जयनाद किया था।

रानी अवन्ती बाई के दो पुत्र पैदा हुए थे। बड़े पुत्र का नाम जगावर सिंह [३] तथा छोटे का नाम शेर सिंह था। कालान्तर में राजा विक्रमाजीत का मन राजकाज से उचट गया और उन्हें कुछ वैराग्य सा होने लगा। वे घण्टों नदी में स्नान करते रहते थे। उन्हें कुछ मानसिक विक्षिप्तता भी होने लगी थी। डलहौजी की हड़पनीति ने रामगढ़ को भी कोर्ट आफ वार्डस कर अपने अधीन ले लिया था। रानी अवन्तीबाई पर एक साथ विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा। इधर अंग्रेजों ने उनके राज्य को हड़प लिया और उधर उनके पति का स्वर्गवास हो गया।

रानी ने हिम्मत नहीं हारी और उन्होंने अंग्रेजों से बदला लेने के लिए कमर कसली। उनकी वीरता, देशप्रेम, शौर्य और बलिदान को लेकर हिन्दी साहित्य में उपन्यास, काव्यादि लिखकर साहित्यकारों ने यथेष्ट सामग्री प्रदान की।

ऐतिहासिक उपन्यास सम्राट वृन्दावन लाल वर्मा ने रानी अवन्तीबाई पर आधारित एक उपन्यास लिखा था। दूसरा ऐतिहासिक उपन्यास 'रक्त गंगा' इकबाल देवसरे ने सन् १९८१ में प्रकाशित कराया। यह एक श्रेष्ठ उपन्यास है जो रानी अवन्तीबाई के जीवन पर पर्याप्त प्रकाश डालता है। काव्य के क्षेत्र में डॉ. दुर्गा प्रसाद 'दुर्गेश' ने रानी अवन्ती बाई पर केन्द्रित वीर रस का एक उत्कृष्ट खण्डकाव्य 'बलिदान' की रचना की जिसे पढ़कर कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान द्वारा रचित रानी लक्ष्मीबाई पर आधारित कविता 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी' की याद ताजा हो जाती है।

रामगढ़ [४] की रानी अवन्तीबाई विलक्षण प्रतिभा और कुशाग्र बुद्धि सम्पन्ना नारी थी। बात उस समय की है जब गढ़मण्डला के राजा शंकर साह अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह करने हेतु विजयादशमी की तिथि निश्चित कर चुके थे और अपने विश्वसनीय सरदारों के माध्यम से मौखिक रूप से समीपस्थ राजाओं, जागीरदारों तथा योद्धाओं को भिजवाना प्रारम्भ कर दिया था।

यद्यपि कुछ लोग इतनी देर तक इंतजार करने के पक्ष में नहीं थे, किन्तु संदेश सभी जगह भेजने और सैन्य संगठन को सुदृढ़ करने की दृष्टि से यह आवश्यक भी था। 'रक्त गंगा' के आधार पर रानी अवन्ती बाई की सूझबूझ से संदेश भेजने का एक विलक्षण तरीका बड़ा कारगर हुआ। रानी ने कपड़े की छोटी–छोटी थैलियों में चूड़ियाँ, बिन्दी तथा एक छोटी गोली जिसमें दो पंक्ति का संदेश लिखा रहता था अनेक जागीरदारों, वीर क्षत्रियों, ५२ नम्बर की पलटन के जवानों तथा अंग्रेजों के विरुद्ध जय स्वदेश का नारा देने वाले स्वतंत्रता प्रेमियों [५] के पास भिजवाना प्रारम्भ किया। इन थैलियों को सिवनी, मण्डला, सागर, जबलपुर, दमोह, नसिंहपुर, बुंदेलखंड तथा बघेलखंड के उत्साही वीरों के पास भी भेजा गया। इस संदेश की भाषा पढ़कर वीरों में एक नई चेतना जाग उठी। वे अंग्रेजों के खिलाफ यथाशीघ्र विद्रोह करने के लिए तैयार हो गये। यहाँ तक कि जब राजा शंकर साह को इस संदेश की भाषा पढ़ने को मिली तब वे रानी की विलक्षण बुद्धि की प्रशंसा करते न

अघाते। संदेश में लिखा था कि – "देश हित के लिए हथियार हाथ में पकड़ो, प्राणों की बलि चढ़ाओ या हाथ में चूड़ियाँ पहनकर और माथे पर बिन्दी लगाकर घर में घुसे बैठे रहो।" विश्व इतिहास में ऐसे कम ही दृष्टांत मिलते हैं। स्काटलैण्ड के पहाड़ी प्रदेशों में सलीब भेजकर लोगों में उत्तेजना फैलाई जाती थी। इधर अस्कॉइन ने भी लिखा है कि उन्हीं दिनों जनवरी मास में जिले के अधिकांश भाग में छोटी–छोटी रोटियाँ भेजी जाती थी।

'वही' कण्डिका ११.१३ में इस बात का उल्लेख किया गया है कि मई १८५७ में ऐसी कथायें प्रचलित की गई थी कि शासन के आदेश से घी, आटा और शक्कर में क्रमशः सुअर की चर्बी, गाय का रक्त तथा हड्डियों का चूरा मिलाया गया है।

इधर अंग्रेजों को जबलपुर में विद्रोह की कुछ सुगबुगाहट की खबरें मिलने लगी थीं। राजा शंकर साह जो गढ़मण्डला छोड़कर जबलपुर के समीप 'पुरवा' ग्राम में रहकर क्रांति के लिए आधार तैयार कर रहे थे। शंकर साह द्वारा अपने राज्य से निष्कासित कारिन्दा गिरधारी दास और जमीदार शेरअली ने डण्डेशाह बनकर शंकर साह द्वारा विजयादशमी की तिथि का भण्डाफोड़ किये जाने से जबलपुर के डिप्टी कमिश्नर क्लार्क ने १४ सितम्बर १८५७ को पुरवा ग्राम में पिता पुत्र को गिरफ्तार कर लिया था। गिरधारी दास और जमीदार शेरअली की गद्दारी से राजा शंकर शाह और उनके बेटे रघुनाथ शाह को १८ सितम्बर १८५७ को मेजर असकिन जो मध्यप्रदेश का प्रधान कमिश्नर था, ने एक फर्जी कोर्ट का नाटक रचते हुए मौत की सजा देकर तोपों के मुंह से बंधवाकर दोनों बाप बेटों को तोप के गोलों से उड़वा दिया था।

अंग्रेजों के उक्त नृशंस कार्य ने भारतीयों में खासकर ५२ नम्बर की पलटन के सैनिकों में विद्रोह की लहर दौड़ पड़ी तथा उसी रात्रि सूबेदार बल्देव तिवारी के नेतृत्व में ५०० सैनिकों ने कैम्प छोड़कर समीप के पाटन थाने पर हमला कर अपने कब्जे में कर लिया।

थैलियों वाले संदेश ने गौंड़याना क्षेत्र में इस प्रकार की जागरूकता की लहर दौड़ाई कि सभी ओर से रानी अवन्तीबाई को नेतृत्व करने और उनके साथ मर मिटने को तैयार हो गये। इधर उत्तर भारत में झांसी, कालपी, ग्वालियर, लखनऊ, कानपुर, दिल्ली में पहले से बगावत प्रारम्भ हो चुकी थी।

नवम्बर १८५७ को सोमवार के दिन रानी अवन्ती बाई ५०० किसानों के साथ रामगढ़ का किला छोड़कर क्रमशः धुघरी, रामनगर, बिछिया, नारायण गंज थानों को अपने कब्जे में करती हुई मण्डला की ओर कूच कर गई। मण्डला का डिप्टी कमिश्नर वाडिंगडन किला छोड़कर समीप की पहाड़ी पर रानी अवन्ती बाई से मोर्चा लेने को तैयार खड़ा था। भीषण लड़ाई छिड़ी, अवन्तीबाई की वीरता के सामने अंग्रेजों के पैर उखड़ने लगे। रानी मारकाट करती हुई अपने घोड़े पर सवार होकर आगे बढ़े, अंग्रेज सैनिक भागते हुए नजर आ रहे थे। सामने वाडिंगटन दिखाई दिया। रानी ने तलवार का वार करना चाहा। वहाँ अपनी मौत पक्की समझ कर वाडिंगटन रानी के चरणों में अपना सिर झुका कर प्राण दान की याचना करने लगा–

"मुझे बचा दो हे रण चण्डी, मैं खुद ही थर्राया हूँ।
आज आपसे निज प्राणों की, भीख मांगने आया हूँ।।
(बलिदान)

रानी की तलवार उठी ही रह गई। वाडिंगटन को रानी ने प्राणदान दिया। उसे जबलपुर लौट जाने दिया गया। रानी की उदारता और हृदय की विशालता की जितनी प्रशंसा की जाय कम ही है। बाद में वाडिंगटन के बेटे को जब रानी के कुछ सैनिक पकड़कर लाये तो रानी ने उसे भी तत्काल सुरक्षित उसकी माँ के पास भेज दिया। अपने बेटे हार्डी को पाकर वाडिंगटन की पत्नी ने रानी अवन्तीबाई की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए सच्ची वीरांगना निरूपित हुए कृतज्ञता व्यक्त की।

इतिहास पुनः दोहराया गया। पृथ्वीराज चौहान के साथ जिस प्रकार विश्वासघात हुआ था ठीक उसी प्रकार रानी अवन्तीबाई के साथ भी हुआ। वाडिंगटन ने जबलपुर पहुंचकर रानी अवन्तीबाई से बदला लेने की योजना बनाई और कुछ ही दिनों में अंग्रेजों को जैसे ही कामठी और नागपुर से गोरों की छावनी में सहायता मिली, वह रामगढ़ की रानी द्वारा जीते गये सभी स्थानों को रौंदता हुआ रानी से बैरता का बदला लेने रामगढ़ आ धमका।

रानी ने अपनी योजनानुसार रामगढ़ किला खाली कर दिया था। वह अपने विश्वसनीय सरदारों और लड़ाकों के साथ समीप की पहाड़ी देवहार गढ़ के जंगलों में अंग्रेजों को छापा मार युद्ध से पराजित करने के लिए मोर्चा सम्हाले थीं। वाडिंगटन के पास बहुत अधिक सैन्यबल व भारी तोंपे थी। २० मार्च १८५८ को एक मुठभेड़ में रानी को एक अंग्रेज सैनिक की गोली ने पाँव में जख्मी कर दिया। वह घोड़ों से नीचे आ गई। उसने अपनी बन्दूक से वाडिंगटन को निशाना बनाया। फायर थोड़ा चूक गया और वाडिंगटन का हेट उड़ाती हुई गोली निकल गई। रानी चारों ओर से अंग्रेज सैनिकों से घिर गई। उसने अपने समीप खड़े ठाकुर उमराव सिंह की तलवार छीन कर अपना हृदय चीर डाला।

वाडिंगटन ने युद्ध बंद कर दिया और रानी अवन्तीबाई की चिता को अंतिम सलामी दी। धन्य है वीरांगना अवन्ती बाई का बलिदान, जिसने भले ही अंग्रेजों से झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के बाद विद्रोह किया, किन्तु रानी लक्ष्मीबाई से पहले शहीद [६] हो गई।

हिन्दी साहित्य में 'बलिदान' खण्डकाव्य तथा 'रक्तगंगा' ऐतिहासिक उपन्यास यद्यपि दोनों ही श्रेष्ठ हैं, किन्तु कुछ तिथियों सम्बन्धी भूलें इन दोनों में परिवर्तित होती हैं जो खटकने वाली हैं।

इन पंक्तियों के लेखक का उद्देश्य इन भूलों की ओर इंगित करने का आशय इन ग्रंथों को कमतर आंकना नहीं है, बल्कि भावी शोधकर्ताओं को तिथियों की वास्तविकता से अवगत कराते हुए इन ग्रंथों को दोष रहित कर भावी प्रकाशन हेतु सुझाव देना है।

'बलिदान' खण्डकाव्य में डॉ. दुर्गेश के निम्नांकित छंद दृष्टव्य हैं –

तेइस नवम्बर सन् सन्तावन पावन पर्व हमारा है।
बलिदानी वीरों की बहती शिर शोणित की धारा है।
रानी बढ़ी रामगढ़ पहुँची अपना झण्डा फहराया।
मार भगाया दुश्मन दल को उन अरियों को थर्राया। (११४)

(इसके आधार पर रानी अवन्ती बाई ने २३ नवम्बर १८५७ को अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का शंखनाद किया)

"हँसते हँसते बीस मार्च को स्वयं भोंक ली तीक्ष्ण कटार।
मार्ग प्रदर्शित कर वीरों का रानी गई थी स्वर्ग सिधार।"(२१४)

"बीस मार्च सन सन्तावन को एक श्रेष्ठ बलिदान हुआ।
युगों युगों तक याद रहेगा, ऐसा कार्य महान हुआ।
महापुण्य मय तीर्थ क्षेत्र पर वीर निरन्तर आयेंगे।
वीर अवन्ती बाई जी के यश के गीत सुनायेंगे।।" (२२३)

(इस पद्यांश के आधार पर अवन्तीबाई का बलिदान २० मार्च १८५७ दिया है, जो निश्चित ही त्रुटिपूर्ण है)

यह २० मार्च १८५८ होना चाहिए।

इसी प्रकार पद्यांश क्रमांक २०३ में प्रयुक्त शब्द 'अबला' भी रानी अवन्ती बाई के लिए उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। पंक्ति दृष्टव्य है –

"लड़ते लड़ते उस अबला का घोड़ा स्वर्ग सिधारा था।"

ज्यादा उपयुक्त होता –

"लड़ते लड़ते रणचण्डी का घोड़ा स्वर्ग सिधारा था।"

'रक्तगंगा' उपन्यासकार ने रानी अवन्तीबाई के पिता का नाम न लिखकर उन्हें 'जमींदार' सम्बोधित किया है। ऐतिहासिक उपन्यास में नाम व तिथियां सही–सही लिखने से इसकी प्रामाणिकता बढ़ जाती है।

इसी उपन्यास में रानी के बलिदान की तिथि शनिवार १८ मार्च १८५८ लिखी गई है। हिसाब लगाने से १८ मार्च १८५८ को बुधवार का दिन पड़ता था।

दूसरा तिथि सम्बन्धी दोष 'रक्त गंगा' के पृष्ठ क्रमांक ३१२ पर दिये गये निम्नलिखित कवित्त से परिलक्षित होता है –

"प्रबल प्रचण्ड विकराल कालिका सी दौर,
मोरचा फिरंगिन को मार मार जीते हैं।
बैरी तज युद्ध चलयो मारग में घेरियो धाय,
सूत्यो मुख छटपटात प्राण भय भीते हैं।
गहि पग जीवदान माँगत सो छाँड़ दियो,
रामगढ़ की रानी के कारज पुनीते हैं।
धन्य मदन योग युद्ध दया दान आयु अबे,
बरस छब्बीस गये सात मास बीते है।"

उक्त कवित्त का तात्पर्य है कि रानी अवन्तीबाई ने वाडिंगटन को जब प्राण दान दिया तब रानी की उम्र २६ वर्ष ७ माह की थी। इसे रानी की जन्मतिथि १६ अगस्त १८३१ में जोड़ने पर यह तिथि १६ मार्च १८३८ आती है।

उपन्यासकार ने पृष्ठ ३१९ पर यह उल्लेख भी किया है कि रानी को अभियान से लौटे दो ढाई महीना हो गये थे। इसका तात्पर्य है कि वाडिंगटन ने दो ढाई महीने बाद ही रामगढ़ पर चढ़ाई की तब फिर उपन्यासकार द्वारा १८ मार्च १८५८ को रानी के बलिदान की तिथि लिखना संदिग्ध हो जाता है।

हाँ, यदि उक्त कवित्त की अंतिम पंक्ति में सात मास के स्थान पर चार मास कर दिया जाय तो यह विसंगति समाप्त हो सकती है।

इन पंक्तियों के लेखक को टीकमगढ़ नगर में शासकीय वीरांगना अवन्ती बाई लोधी कन्या महाविद्यालय के प्रांगण में स्थापित प्रतिमा के नीचे उनकी जन्मतिथि १६–८–१८३१ तथा बलिदान की तिथि २० मार्च का लेख पढ़ने को मिला। बलिदान की तिथि तो सही है, पर ज्यादा अच्छा होता कि वहाँ पर सन् १८५८ भी लिख दिया जाता।

रानी अवन्ती बाई का बलिदान भारतीय प्रथम स्वतंत्रता संग्राम जो सन् १८५७ में प्रारम्भ हुआ था, के इतिहास में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई के पूर्व हो चुका था [७] और वह भी बहादुरी से अंग्रेजों से टक्कर लेने तथा उन्हें परास्त करने उपरान्त उतना ही महत्व रखता है, जितना रानी लक्ष्मी बाई का बलिदान। इस प्रकार अवन्तीबाई के बलिदान को इतिहास में स्थान न देकर न्याय नहीं किया गया, जिसे पुनः लिखने की आवश्यकता है।

– प्रसाद कॉलोनी, शहीद स्टेडियम के पास टीकमगढ़

संदर्भ संकेत –

१. अवन्तीबाई के पिता का नाम डॉ. दुर्गेश ने 'बलिदान' खण्डकाव्य में राजा जुझार सिंह लिखा है। देखे छन्द क्र. २२

२. मनखेड़ी ग्राम का नाम अवन्तीबाई पर केन्द्रित ऐतिहासिक उपन्यासकार इकबाल बहादुर देवसरे ने 'रक्तगंगा' में 'मन कहड़ी' तथा डॉ. दुर्गेश ने 'बलिदान में मनकेड़ी दिया है जो वास्तव में मनखेड़ी के ही अपभ्रंश है।

३. रानी अवन्तीबाई के बड़े पुत्र का नाम ':बलिदान' खण्ड काव्य तथा 'रक्तगंगा' उपन्यास में अमान सिंह लिखा है जबकि म.प्र. पाठ्य पुस्तक निगम द्वारा प्रकाशित कक्षा ५ की हिन्दी भाषा की पुस्तक :'भारती' में पृष्ठ क्रमांक १०१ पर जगावर सिंह दिया गया है।

४. इतिहासकार रामगढ़ को पृथक राज्य ही नहीं मानते। यह एक जागीर थी जिसे लक्ष्मण सिंह के पूर्वजों को महाराजा निजाम साह ने एक नर भक्षी सिंह/बाघ को मार डालने के उपलक्ष्य में प्रदान की थी। यह मण्डला राज्य की जागीर थी। बाद में अन्य जागीरों की तरह यह भी स्वतंत्र राज्य बन गया था।

५. जय स्वदेश का नारा 'सलेमानाबाद' की छांवनी में ५२ नम्बर की पलटन के सिपाहियों ने अंग्रेजों से बगावत कर छाँवनी छोड़ते समय दिया था ('रक्तगंगा' पृ. २४८)

६. रानी झांसी – लक्ष्मीबाई का शहीद/बलिदान दिवस बुंदेलखंड का वृहद इतिहास पृ. ३७२–७३ में डॉ. के.पी. त्रिपाठी ने १९ जून १८५८ लिखा है। यद्यपि ग्वालियर गजेटियर पृष्ठ क्र. ३८ पर जो लेख है, उसके अनुसार यह १७ जून १८५८ है।

७. रामगढ़ की रानी अवन्ती बाई का बलिदान दिवस २० मार्च १८५८ है। 'रक्तगंगा' उपन्यास में यह १८ मार्च १८५८ दिया गया है। (देखें पृ. ३५२)

प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर पलेरा

—चिन्तामणि वर्मा

महुआ मेवा बेर कलेवा, गुलगुच बड़ी मिठाई।
इतनी बातें चानें होय तो, पलेरा करौ सगाई।।

कहावत लगभग सारे बुंदेलखंड क्षेत्र में आज से तीस वर्ष पहले तक प्रचलित रही है। यह क्षेत्र इतना निर्धन और उपेक्षित रहा कि यहां के अधिकांश लोगों का जीवनयापन का मुख्य साधन केवल प्रकृति द्वारा प्रदत्त जंगलों के फल फूल ही थे।

इस क्षेत्र में सिंचाई के साधन भी नहीं थे जिनकी सहायता से यहाँ का परिश्रमी कृषक दो फसलें तैयार कर लेता। ज्वार, बाजरा, कोदो, कुटनी, समा आदि मोटे अनाजों की केवल एक फसल पर ही उसे सन्तोष करना पड़ता था। वर्ष के केवल चार महीने ही वह कृषि कार्य करता था शेष आठ माह वह निठल्ला बैठा रहता था तथा बीड़ी तम्बाकू के नशे में अपनी गरीबी भुलाए रहता था।

यहाँ की महिलाएं जब चक्की पीसने बैठतीं थी तो अवश्य गाती ''जलेबी, दूधा के लड़ुवा'' गा भर लेती थी। काजू, किसमिस बादाम आदि मेबों के नाम उन्होंने सुने अवश्य थे लेकिन खाने की बात तो दूर देखते तक को भी नहीं मिलते थे।

यहाँ का तो मेवा एकमात्र महुआ के फूल ही थे। वही यहां के अंगूर थे जिन्हें यहां के नर—नारी जंगलों में रात रात भर विचरण कर बीन लाते थे। उन्हें सुखा कर भी रख लेते थे जिनसे 'लटा' और 'मुरका' बनाकर उन्हें खाकर मेवा का स्वाद लेकर सन्तोष कर लेते थे। नाश्ता (कलेवा) के लिये वे जंगल से बेर बीनकर लाते थे, उन्हें भी सुखाकर बिरचुन (बेर चूर्ण) बनाकर नाश्ता करते थे। महुआ का फल जब, पक जाता है तो उसके ऊपर का छिलका मीठे स्वाद का हो जाता है उसे 'गुलगुच' कहते हैं मिठाई के नाम पर उन्हें यहाँ केवल 'गुलगुचे' ही प्राप्त होती थी।

यह क्षेत्र शायद देश के अत्यन्त निर्धन क्षेत्रों में से एक था। जहां न कोई कल कारखाना थे न स्वास्थ्य रक्षा के लिए कोई औषधालय थे। लोग झाड़ फूंक, जादू—टोना तथा देवताओं के दरबार लगाकर उनके कहे अनुसार स्वास्थ्य रक्षा के उपाय करते थे। बरसात में मलेरिया आदि संक्रामक रोगों के अनेक लोग शिकार हो जाते थे। कुपोषण के कारण यहां के अनेकों नौनिहाल असमय ही काल के गाल में समा गये थे।

शिक्षा के लिये पूरे क्षेत्र में केवल एक प्राथमिक पाठशाला थी जहां केवल दो शिक्षक नियुक्त थे जिनमें इने गिने बच्चे ही थोड़ा बहुत पढ़ लेते थे। अधिकांश लोग निरक्षर ऊँठा छाप थे। जिनका पंडित, साहूकार तथा शासकीय कर्मचारी पंडित, साहूकार तथा शासकीय कर्मचारी भरपूर शोषण करते थे तथा बिना पारिश्रमिक दिए अपने कई काम बेगार में करा लिया करते थे। यह पूरा क्षेत्र चारों ओर नदियों से घिरा हुआ था वर्ष के आठ माह पूरा क्षेत्र एक कारागार के समान बना रहता था। पैदल यात्रा करने तथा नदियों को प्राणों की परवाह न कर मटकों तथा लकड़ी के लट्ठों के सहारे केवटों के द्वारा पार करने के अलावा अन्य कोई साधन नहीं था। शेष चार माह अवश्य घनघोर जंगलों में होकर भयंकर जंगली जानवरों के बीच तथा डाकुओं और चोरों से बच बचाकर बैलगाड़ी द्वारा बाहर जा पाते थे।

मुझे अपने बचपन की याद है जब मेरी आयु केवल बारह वर्ष थी मैं अपने तीन अन्य साथियों और अपने स्थानीय शिक्षक के साथ प्रत्येक सोमवार को प्रातःकाल चार बजे उठकर बरसात में भीगता हुआ बाढ़ में आई नदियों को रामीरोसे मिट्टी के मटकों तथा लकड़ी के लट्ठों के सहारे पार कर घनघोर जंगल की पतली गलियों में भयंकर जानवरों से डरता हुआ पच्चीस किलोमीटर दूर जतारा सात दिन का आटा दाल तथा नाश्ता लादकर पैदल दस बजे पहुंचा करता था तथा प्रत्येक शनिवार को उसी प्रकार काली रात में बरसाती नदियों को पार करता हुआ रात को दस बजे पलेरा आया करता था। इस प्रकार तपस्या कर चौदह वर्ष की आयु में जतारा मिडिल स्कूल से सन् १९४४ में मिडिल की परीक्षा उत्तीर्ण की थी।

विज्ञान और विकास की इस क्षेत्र को हवा तक नहीं लग पाती थी। जब कोई बाहर किसी शहर में जाता था और वहां से लौटकर जो वह देश दुनियाँ के समाचार बताता था बस उन्हीं पर वह विश्वास कर लेते थे।

मुझे अपने विद्यार्थी जीवन की याद है गांव के एक जंगल के ठेकेदार झांसी से जब वापिस लौटे तो गांव वालों ने उन्हें घेर लिया और उत्सुकता पूर्वक देश दुनियां के समाचार पूंछने लगे तो उन्होंने बताया कि देश के एक बड़े नेता गांधी जी की किसी ने हत्या कर दी है। जब उनकी चिता में आगी लगाई गई तो वे हिरण बनकर चिता में से उठकर जंगल में भाग गए हैं। लोगों ने इस समाचार पर पूरा विश्वास कर लिया।

मैं उन दिनों टीकमगढ़ में पढ़ता था मैंने लोगों को सही बात समझाई पर किसी ने मेरी बात पर विश्वास नहीं किया। यह कहकर झुठला दी कि अभी तुम बच्चे हो तुम क्या समझो?

प्रकृति ने तो इस क्षेत्र को दिल खोलकर प्राकृतिक सम्पदा लुटाई थी। भरपूर फल तथा फूलों से लदे हुए घने जंगल जिनमें स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करते हुए अनेक प्रकार के जीव जन्तु, मीठी वाणी में कलरव करते हुए विभिन्न प्रकार के पक्षी, नाचते हुए मोर तथा पेड़ों पर कूद फांद करते हुए बन्दर, सुन्दर स्वच्छ जल के पहाड़ों से झरते हुए झरने लेकिन राजनीति की इस क्षेत्र में सदैव अनकृपा रही।

— चेतगिरि कॉलोनी, छतरपुर □

ऐतिहासिक पाण्डुलिपि –

हरदौल चरित

(पं. श्री घनश्याम पाण्डेय बिजावर द्वारा विरचित ''भीमपुराण के खण्ड तृतीय के अध्याय १७ में वर्णित)

– सौजन्य से : मनमोहन पाण्डेय

दोहा – कहों सप्तदश में कथा, आपुस की विष–बौल।।
ठाकुर–ठाकुर हितकरी, पियो गरल हरदौल।।
अब सुनिये हरदौल की, भूप–रूप–करतूत।।
जियत कार्य यश के करे, दे गये अन्त विभूत।।

चौपाई –गादी आदि ओड़छा नगरी–कीरत बेल जहाँ तहँ बगरी।।
रहे जुझार सिंह त्रय भाई–कथा यथा मति प्रथम सुनाई।।
छोटे श्री हरदौल कहावें–तिनके तुमको सुयश सुनावें।।
सती जुझार सिंह महरानी–प्रीत–पुनीत तासु से मानी।।
लघु–देवर पर प्रीति घनेरी–रानी जियत सदा मुख हेरी।।
चौपर खेल सदा सें खेलें–येक सेज सोवहिं भुज मेलें।।
मन में मनसा पाप न जिनके–चीन परत नहिं जे पति किनके।।
रानी भोजन सदा कराबै–ठाकुर हरि कौ भोग लगावै।

दोहा – येक समय महराज कौ, घुमड़ लगो दरबार।।
चतुर कूट यक आयकें, कहीं, सुनहु सरकार।।

चौपाई –महराज रानी की बातें–देखी सुनीं प्रेम की घातें।।
लघु भ्राता हरदौल तुमारे–सो रानी के प्राण–पियारे।।
चौपर खेल होत रसरंगा–भोजन–भजन होत इक संगा।।
येक घरी उन बिन नहिं राबें–नजर नजर सें नजर मिलावें।।
जो कहुँ इक क्षण भर नहिं देखें–ललक–पलक जुग सम जुग लेखें।
जैहै वीर बुन्देला–पानी–बरजो बहुत न मानत रानी।।
नाथ बात मैं तुम्हें जताई–अब चित चाहु करहु सोई राई।।
सुनी कूट मुख सब–करताई–नृप जुझार मुख क्रोध–ललाई।।
महाराज की आन अबाई–स्वागत हित रानी उठ धाई।।
सिंहासन आसन घर आँगें–चरन पखार उमग हिय पागें।।
देख भूप रानी की करनी–कूट नीति पुन आपन बरनी।।
कुल कलंकनी हौ तुम रानी–करे मलीन बुन्देला–पानी।।
तुम हरदौल एक तन दोई–अब तौ संशय रहो न कोई।
लाला की माला सिर पहरी–प्रीत प्रतीत भई अब गहरी।

दोहा – विसवासन विसवास दै, कीन्हौं सत्यानांस।
सत्य सती के प्रेम लख, परी उदर विच गाँस।।

चौपाई –सत्य सती जो साँचहु रानी–सांची करहु एक ममबानी।
खट–रस बिंजन लेहु बनाई–विषम गरल पुन देहु मिलाई।
प्रात काल लालै विष दीजै–इतना कहा हमारौ कीजै।।
पतिव्रता जे जग महँ नारी–पति आज्ञा सिर केहिं विचारी।।
निज भ्राता लघु ताहि निहारौ–पुत्र भाँति प्रानन सें प्यारौ।।
बिना विचार करहिं सोई कामा–जातें पति पावहिं विश्रामी।।
सुन पति–वचन कहत भई रानी–महाराज मुख–बानी मानी।।
आज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी–एक बात सुन लेव हमारी।।
मनसा–पाप न नाथ बिचारौ–निज भ्राता लघु ताहि निहारौ।
प्रीत–पुनीत अनीत न स्वामी–जानत हिय की अन्तरयामी।।
इन अपराध कियो ना कबहूँ–देखी खुनस करी न कबहूँ।।
दंडी की बातन नहिं लगिये–अनुचित देख न रिस रस पगिये।।
निज करनी पर पुन पछितैहौ–कुल कलंक सिर अपयश लैहो।

दोहा – जान अजान सुजान मत, कीजे जान अजान।
नर–हत्या नहिं लीजिये, कही हमारी मान।।

चौपाई –यातें कही हमारी कीजे–भ्रातै देस–निकारे–दीजै।
जातें होय न पुन उर दाहू–विनती करहुँ सुनहु नर नाहू।
जिम जिम रानी कहै सुनीती–तिम तिम होय नृपहिं परतीती।।
नृप कर क्रोध करी मनचाही–तूँ तौ नार हमारी व्याही।।
करने परै कहें हम जैसी–नहिं गति करहों भावति तैसी।।
सुन नृप वचन कही पुन रानी–होंनहार कछु होत दिखानी।।
महाराज करहों अब सोई–मोर पतिब्रत भंग न होई।।
षट–रस भोजन सकल बनाऊँ–अति हित रुच सन उन्हें जिमाऊँ।।
सुन अस भूप भये दरबारी–रानी नाउन तुरत हँकारी।।
आज राव रन बनी रसोई–रानी कही जोर कर दोई।।
भोजन ठाकुर सब मिल करहें–सविनय विनय मान दुख हरहें।।
रानी आय विनय सोई भाषी–दुविधा कछू न ठाकुर राखी।।

दोहा – प्रात काल अस्नान कर, पहलवान बलवान।
समय देख कसरत करी, मल्ल युद्ध पुन ठान।।

चौपाई–लगे लँगोट जोट बजरंगी–अभिरे जोन जोट कर संगी।।
पेल दंड भुजा दंड अपारा–चकरदंड मुगदर कर धारा।।
ताल ठीक कर कीन सलामी–पेंच खेंच मुख बाँधी नामी।।
कियो परिश्रम स्वेद बहायो–पुन ठाकुर निज मंदिर आयो।।
ठाकुर–ठाकुर–पूजा कीन्ही–रामनाम की मानिका लीन्हीं।।
भाभी ने इत तपी रसोई–इंजन बिंजन रोष न कोई।।
पराधीन दुख दुखी विचारी–पतिव्रता पति आज्ञाकारी।।
सोचन मोचत लोचन नीरा–प्रेम–विवस हिय भई अधीरा।।
भोजन परस धरों कस प्यारी–मर न जाऊँ उर हूल कटारी।।

दोहा – दुबिधा में रानी भइ, सोचत हिये उपाय।
ज्ञात घात हिय होय नहिं, नहीं पतिव्रत जाय।।

चौपाई–जब ठाकुर भोजन हित अैहें–सत्य–सत्य उनसें कह दैहें।
अघ–विश्वास–घात नहिं यामें–आज्ञा भंग न हूहै तामें।।
अस विचार उर धर परतीती–नहीं अनीत रीत रस प्रीती।
कहर कहर कर जहर मिलाये–हहर–हहर–अँसुवा भर आये।
नाउन ठाकुर ढिंग पठुआई–जारी! लालै ल्याव लिवाई।।
नाइन सुन रानी मुख बानी–बेग लियावन चली सियानी।।
विनय सुनाय कहत कर जोरी–नेक नजरिये दासी ओरी।।
चलवौ होय राव रन माहीं–भोजन हेतु विलंब सुनाहीं।
नव–सत ठाकुर ठाकुर संगी–भये तयार बुंदेला रंगी।

ठाकुर समुझ न मन में आयो–सीताराम सुमिर सिर नायो।।
सकल बुलाय लिये संग साथी–ज्वान–स्वान सज–बज लए हँथी।।

दोहा – चले वीर हरदौल सज–रावर भोजन हेत।
छयल–छबीले छवि लसै – गंग धार जिमि सेत।।

चौपाई– कंचन तोड़र पाँवन राजें–रेशम काठी कछनी काछें।।
तरें लँगोट कसें बजरंगी–सीस दुलारी लसै तिरंगी।
खोर लसै नरसिंगी माथें–पाग पेंच में मनमथ नाथें।
सने–सनेह–केश घुंघरारे–नयन विशाल सोहँ रतनारे।
कंचन कुंडल–कानन बाला–हिलुरें हिय हीरन की माला।।
जड़ित नगीना अँगुरिन मुँदरी–बाजूबंद रेशमी फुँदरी।।
ढाल कँधा सोहै कर भाला–तीर कमान मूँठ रँग लाला।।
कमर कटार सिरोही चमकै–सैला फेंट–भेंट कर दमकै।
सुंदर बाज–ताज सिर सोहै–मोंतन की कलगी मन मोहै।।
ललित लगाम जीन जरतारी–पगन पैजना ठनकत भारी।।
महदी पुच्छ गुच्छ रँग नीके–कोमल बाल अयाल मनी के।।
फरफरात पगधरत न धरनी–बाज मनोज बेग समकरनी।।

दोहा – वीर बुंदेला वंश की, बगरी कीरत बौल।।
नृप–रानी के प्राण–धन, जे लाला हरदौल।।

चौपाई– या विधि गये वीर रनवासन– चरन पखारे मुदित खबासन।।
सुचि चौकन–चौकन बैठारे–सुंदर वरन परे पनवारे।
तरन–तरन–बिंजन के दौने–मिरच मसाले–दार–सलौने।।
क्षीर–खीर पचमेर मिठाई–चटनी चार भाँत मन भाई।।
बरा–बरी पुन कढ़ी सलौनी–दार–भात की मृदु कालौनी।।
फुलका मांड़े घेबर पापर–घृत में सनी शर्करा जापर।।
सुरुवादार मँगौरा नीके–छोंके कोंच मनोहर घी के।।
कोमल सरस इंदरसे परसे–सुटक जात मुख नावत कर से।।
हरी–हरी परसी तरकारी–भरी अचारन दुनियाँ न्यारी।।
पुरी फुलौरी और कचौरी–मेंदा की रोटीं अति कोंरी।
परस करी सकल भौजाई–लाला के ढिंग थार लियाई।।
छाती उमंग–उठे दृग नीरा–प्रेम – विवस भई हृदय अधीरा।।
ठाकुर–ठकुर भोग लगायो–ध्यान–धरो चरनन–सिर न्यायो।।
तुलसीदल गंगा जल फेरे – पुन लाला भौजी–मुख हेरे।।
धारा बहत द्रगन में पानी – सिसकी भरत दिखानी रानी।।

दोहा – व्याकुल रानी देखकर, कहें वचन हरदौल।।
कुसमय के कारण कहौ, तुमें हमारौ कौल।।

चौपाई– सुन बानी रानी कर जोरे–देवर प्राण–पियारे मोरे।
भंग पतिव्रत बंधु–विरोधू–जोन कहों हिय होत न बोधू।।
प्रेम–प्रीत–रस में विष घोरे–घर–फोरन घर के घर फोरे।।
कूट–नीति सुन प्रीत छुड़ाई – प्रीत रीत की भीत गिराई।।
कही सुनी बातें अनदेखी– सत्य–सुजान–प्रान–पति–लेखी।।
जियत रहें मुख देख तुम्हारौ–मनसा पाप न हतो हमारौ।।।
तन–मन की प्रभु जानन हारे – कपट सनेहन मीतहमारे।।
अयश पिटारी मोहि बनाई – कुल अकलंक कलंक लगाई।।
मै तुव भई मृत्यु की भाजन–गड़ी जात लाजन की लाजन।।
मनसा पापी नाथ हमारे–लैन प्रान अब चहें तुमारे।।
गरल सनी यह तपी रसोई–यातें मृत्यु आपकी होई।।
यातें भोजन आप न कीजै–विनय हमारी चित धर लीजै।

दोहा – रानी मुख बानी सुनी, मानी सत्य सुजान।।
भैया सें प्यारे नहीं, भौजी हमें पिरान।।
करम लिखी सो होयगी, मेंट सकै नहि कोय।।
राई घटै न तिल बढ़ै, हौनी होय सो होय।।

चौपाई– तात समान भ्रात निज मानें–मातु समान तुम्हें पहचानें।।
कीन्हों दूध पिवा कर पालन–कियो सपक्ष पक्ष उर लालन।
कारन कछू न तेरौ माई – करम लिखी सो अब भरपाई।।
अब नहिं सोच करहु हिय भाभी–उदर तुम्हारे सुत हो आबी।।
या में कछू न संशय करिये – दो दृष्टि सन नहीं नजरिये।।
कछू दोष भ्राता के नाहीं – पाई लिखी भाल के मांही।।
प्रीत पुनीत करें अस रहियौ – हिये हमारे सोच न सहियौ।
भाभी राम राम लै लीजै–अस कह लाला अँसुवन भींजै।।
पंच ग्रास कर भोजन कीने–अँचवत पर गये बदन मलीने।।
लिये भवन आसन डरवाई – गंगा तुलसी मुख में नाई।।
जहर कहर कर दीनों तन में–चिंता करी न नेकहु मन में।।
स्वान ज्वान जितने संग साथी–पशु पंछी घोड़ा अरु हाथी।।

दोहा – जिन जिन भोजन विष करे, गये काल के गाल।।
प्रेत जौन भे तौन ये, जिनके मरण अकाल।।

चौपाई– रोवहिं सिर धुन धुन भौजाई – नगर कबीला लोग लुगाई।।
जो जहँ सुनहि सुजन पछतावहिं–नृप रानी कहँ दोष लगावहिं।।
कठिन कठोर हिये भौजाई – भ्रात कठोर अरि सुन माई।।
ढारहिं सकल द्रगन से नीरा–बिन लाला के धरहि न धीरा।।
रानी सहन कलेश न कीनो – धर्म पतिव्रत पूरन चीनों।
बिन प्रेमी संसार बिहूने – प्रेम प्रीत बिन जीवन सूने।।

सवैया– प्रेम में नेम निभात नही–सो सुहात है बात लगी उर गाँसी।
जात की पाँत कौ लेखौ नहीं–सब ईश्वर अंस सबै ब्रजबासी।।
प्रीत की रीत यही कहिये–चहिये उर भीतर वासना सांसी।
पान करें विष जान सुधा–छवि माधुरी के घनस्याम उपासी।।

चौपाई– कीनो प्राननाथ प्रनपालन – धिक जीवन अपने प्रिय लालन।
प्रान हंस उड़ गे सुरधामा – तन पिंजरा सूने बिन कामा।।
हिये जुझार सिंह पछतावे – अपनी करी कौन सें कावें।।
प्रेत क्रिया कीनी मनमानी – भये विशुद्ध वेतवा पानी।।
जग–जीवन–जीवन फल दीन्हें, अन्त समय परमारथ कीन्हें।।
प्रेत–योनि में रहें निरंतर–दान मान में परै न अंतर।।

दोहा – विजयादशमी के दिवस, और दिवारी रात।।
कढ़ै सवारी वीर की, आँखन सबहिं दिखात।।

चौपाई– जो मन में इच्छा कर जावै – दान मान सम्मान सुपावै।।
परचै लये हजारन जिनके – परें फेर कबहूँ ना तिनके।।
जग हरदौल रहे नहिं रानी – प्रेम–प्रीत की रही कहानी।।
प्रेम–प्रीत ऐसी इक अंगी–जैसें कीट–जोत के संगी।।
धन–धन रानी प्रीत निबाही–प्रेम–पुनीत अनीत न चाही।।

हरि–पद–प्रीत करहिं जो ऐसी–बिगरी बनी होय फिर कैसी।
सदा एक रस रहै निरंतर – राम भजन में परहि न अंतर।।
बिगरी सुधर जाय सब बाकी–कीरत अचल होय जग ताकी।।
भोगहिं मृत्युलोक सुखपूरे – अंत अमर पुर जाहिं जरूरे।।
जो जस करहि मनुज जग करनी–सो तस पावत अंतहि भरनी।।
जो हरदौल बुन्देला गावहिं–व्याह उछाह सदा सुख पावहिं।।
प्रेत जौन से छूटहिं जोई – आवागमन न पुन जग होई।।

दोहा – सुनहु वीर हरदौल के प्रेत समय के हाल।।
जग जौहर करनी करी, दुख मेंटत ततकाल।।
जेठी बहिनी वीर की, कुंजावती सुनाम।।
सो व्याही दतिया नगर, रूपशील गुन धाम।।

चौपाई– वीरन भये स्वर्ग के वासी – सुनी खबर मन भये उदासी।।
आई करन वीर के फेरे – रोवै हाय सहोदर मेरे।।
कहाँ गये गति हो गई कैसी–छवि झूलत आंखन में वैसी।।
हाय कितै अब गये लटकनियाँ – सूने भवन भये छरथनियां।।
चिता–भूमि पुन जाय निहारै – रुदन करत दै टेर पुकारै।।
व्याकुल बदन धरत ना धीरा–तन मन व्याप रही उर पीरा।।
मूर्छित गिरी धरनि–तल माँही–तन–मन व्याकुल सुध–बुध नाही।।
भगिनी जब हरदौल निहारी – मम वियोग में मरत बिचारी।।
भूत–रूप–पंडा सिर बोले – कर परितोष भेद सब खोले।।
सुनी जुझार सिंह की करनी – प्रीत–रीत रानी की बरनी।।
बोली बहिन बहुर सुन भइया – व्याह भनेजन को करवैया।।
रही जुझार सिंह से अनबन–वाकौ कछू और हो गओ कन।।
मड़वा मामा नहीं दिखैहें, तुम बिन शोभा कैसी रैहैं।।
रहै भनेजन क्वांरी बारी – बीरन बिन सूनी संसारी।।
सिर कलंक अपने लै लैहौं–तुम बिन जियत न दतियै जैहों।
हठ हरदौल बहिन समझाबे – कहूँ भूत अरी नेवते जावें।।

दोहा – शुभ करतूत न भूत सें, होत सुनी हम कान।।
व्याह भनेजन के करहु, बहिन कही लेव मान।।

चौपाई– मानहु वचन करहु शुभ काजा –निवते आवहिं गे महाराजा।।
सुन्दर चीकट सोई लै जैहैं। पाँव परवार दायगे दैहैं।
हिय संशय कछु करहु न वाई–करम लिखी गत हमने पाई।।
सुन बानी कुंजावति रोई – क्षत्री भये व्याकुल सब कोई।।
लै कटार उर हूलन लागी – पकर लई लाला बड़भागा।।
चरनन शीश नाय कर जोरे – वचन कहे करुणा रस बोरे।
मैं नेवते आंहो सुनं बाई – अपने परिचय दैहों आई।।
सकल नेंग अरु चीकट करहों–पाँव पखार धार–भव तरहों।।
पंडा घुरला सूंकी धरनी – अंतर ध्यान भये कर करनी।।
कुंजावती सासुरन आई – नेवते लालै दये पठाई।।
सजबज लाला नेवते आये – संगी वीर बुन्देला ल्याये।।
नगर सेठ को तुरत बुलायो – लालाने हस हुकम सुनायो।।
करिये चलौ भनेजन काजा–कछु आवन पावै नहिं काजा।
गजरथ तुरंग पाल्की डोली – अनधन थैली भरी अमोली।

दोहा – वासन–वसन अनेक विधि – अरु चीकट सामान।
मान – पान सन्मान सब – मंडप धरे सुजान।।

चौपाई– देख दायजे लहर पटोरे – वासन–वसन अनेकन जोरे।।
अन–धन पनक कनक ना चॉवर–अगनित गिनती करै सो बावर।।
झिलमिल जोत जिंस की फैली–खुली धरी मुहरन की थैली।।
कहूँ कोउ नहि धरत दिखावै–नजर तरें कोउ मनुज न आवै
चीकट नेंग करन की बेरा–कुंजावती हियें अवसेरा।।
रोवन लगी वीर–सुध आई–कहँ गे हाय सहोदर भाई।।
लख करुना–करुना रस पागे–भगनी–वचन–बज्र सम लागे।।
कोमल–हृदय गगन–धुन छाई–जयति खंभ सन भेंटहु बाई।।
धुन सुन भरे खंभ भुज जबहीं–प्रगट दिखाने लाला तबहीं।
सुंदर रूप भूप सम आछे – नौ सत ठाकुर तिनके पाछे।
चीकट दई नेग सब कीन्हे – दरसन उतै लये सबही ने।।
अंतरध्यान भये पुन सोई–यह शुभ चरित लखो सब कोई।

दोहा – सगुन सुमंगल सब भये, आई नगर बरात।।
अगवानन आगें लई, जनवासें लयें जात।।

चौपाई– भई मिरचवानी सब डेरन – टींका कों नाऊ गये टेरन।।
टींका में दये हाथी घोड़ा–कुंडल कानन कंचन–जोड़ा।।
रतन–जड़ित–चुलिया सोने की–चढ़ी व्याह की इक गौने की।।
मड़िय–खंभ भाँवरी फेरी – पुन पंगत को भई न देरी।।
परसी सुंदर सविधि रसोई – परसन हार दिखाय न कोई।।
थारन–धरे–नेंग मनमानें – बिन मामा दूल्हा नहिं माने।।
भोजन अब हम करहैं नाही–जब लग मातुल देखे नाहीं।।
प्रेम–विवस सब भये बाराती–जग–थक–बैठे सकल घराती।
हठ दूल्हा की देखी ऐसी – बनी बात बिगरी अब कैसी।।
मंगल समय अमंगल देखो–अनरथ हौन चहत कछू लेखो।।
प्रगट भये हरदौल बुन्देला – सबहिं दरस–दीने अलबेला।।

दोहा – दूल्हा ने भोजन किये, दरसन किये अघाय।
सकल बराती मुदित मन, नेंगिन नेंग चुकाय।।

चौपाई– पंगत की जस कछू विधि बरनी–तस हरदौल करी सब करनी
षट–रस विंजन परस जिमाये–दये दायजे पुन मन भाये।
गजरथ–तुरंग विविध विधि दीने–दान–मान परिपूरण कीन्हे।
बिदा करी रस राख बहोरी–समदी विनय कीन नहि थोरी।
सकल बरात गई निज धामा–हितुअन के परिपूरण कामा।।
तब हरदौल कही सुन बाई–चलन चहत अब करहु विदाई।।
तब कुंजावति रोवन लागी – लीने मन वांक्षित वर मांगी।।
जो जन करहिं सुता कर काजा – सुमरें तुमें बुँदेला राजा।।
आँधी पानी तहाँ न आवै – कौनऊँ बिघन हौंन ना पावै।।
जीत बुंदेला गावहिं जोई – नाव लछारे सुमरै कोई।।
हुइयौ सदा सहायक वाके, बिघन हरन करियौ सब ताके।
येवमस्तु कह लाला बोले – बचन बहिन के दिये अमोले।।

दोहा– कियो कूच हरदौल ने – प्रेम सैन सब संग।।
आप तरन–तारन भये – जिमि–जग–बैनी गंग।।
कियो कूच हरदौल ने, प्रेत सैन सब संग।।
कर पयान गज–पुर चले, पूत–भूत–विरसिंग।।

चौपाई— मग महँ परत नगर अरु खेरे—जान निशागम डारहिं डेरे।।
कलरव करत बजत करि घंटा—हिनहिनाट घोरन के बंटा।।
अनहद से कछु बाजहि बाजे—छीतन के छल—छंद सु साजे।।
श्रवण—सुनहिं नहिं नैनन देखहिं—नर नारि हिय अचरज लेखहिं।।
सुनी श्रवण जिन कुंवर कहानी—बंधु विरोध दियो विष रानी।।
आय—आय ते करहिं जुहारें — पूजा लेत न कोऊ निहारें।
कर परतोष विभूति लगावें — अभयदान दै स्ववस बसावें।।
पूछें नाँव गाँव कुसलाई — रहे भूमियाँ हो सब भाई।
गजपुर पहुँच गये जब लाला—सुजन सुनहु अब चरित रसाला।।
सोरह सौ नृप विक्रम शाके—राज रहे भुव अकबर शाके।।
जहाँगीर के समय बुन्देला — येरछके राजा अलबेला।।
सहनपाल राजा की गादी — नगर ओड़छे की सो आदी।।

दोहा — भगत राव तिनके तनय, तिनके सुत मलखान।।
तिनके रुद्रप्रताप सुत, तासुत द्वादश जान।।

चौपाई— उनके मधुकर शाह दिमाने, तिनके विरसिंग देव बखाने।
जिन मथुरा में सुला कराई, ई व्यासी मन मुहर चढ़ाई।
जा विश्राम घाट पर देखो, यैसी और न दूजी लेखो।।
तिनके तीन पुत्र गुण आगर—वीर बुन्देला वंश उजागर।।
वीर जुझार सिंह पुन दूजे — वीर पहाड़ सिंह दुज दूजे।।
तृतिय कुँवर हरदौल सुजाना—जग जाहिर तिन—चरित बखाना।।
भूप जुझार सिंह मख कीनी — विप्र पूजवर आसन दीनी।।
भृगु मुनि कानकुब्ज दुज मूला—विप्र वंश के तरण दूला।।
बने अग्निहोत्री तिरवेदी—बड़कुल भयं ब्रह्म के भेदी।।
सरवरिया भये सरयूपारी — खाम पार अरु धुरियापारी।।
नृपत जुझारसिंह पद पूजे — ते जुझौतिया दुजवर दूजे।।
रहे जुझौत देस में सोई — सो जुझौतिया दुजवर दूजे।।
भये तीन तेरा तिनकेरे — शिखा सूत्र पुन प्रवर घनेरे।।
पद—पखार जागीर लगाई — गुरु सराय की देखी भाई।।
कुटुम समान मान व्योहारा—सने सनेह सने सह—दार।
सने सनेह सनाढ्य कहाये—तीन वरन कुल पूज्य बनाये।।
जिनमें भूप जुझार जिठेरे — पृथ्वीराज तनय तिन केरे।।

दोहा — शाहजहाँ बन्धन कियो, दुर्ग ग्वालियर माह।।
परिवर्तन सिंसारिक — अकबर दहली—शाह।।

चौपाई— बदलौ लैबे की जिय ठानी — क्षत्री वीर बुन्देला पानी।।
सोवत ताह जगायो वाकौ — कनक—पलंग उलटायो ताकौ।।
सकल कथा निज ताहि सुनाई — दीनो विष भैया—भौजाई।।
कैद हमारे सगे भतीजे, पृथ्वीराज दुर्ग में सीजे।।
बाके बदले लेहुँ चुकाई — सनमुख हो मैं खबर कराई।
भई अकाल मृत्यु मम हेरौ, भूत—रूप धरतुम कहं घेरौ।
शहंशाह सहमे मन माहीं, डारहिं मार कछू बस नाहीं।
सविनय विनय करन सोई लागो—माफ कसूर करहुँ वर मांगो।
आज्ञा सिर पै नाथ तुमारी — दान—प्रान के चहत भिखारी।।
कुँवर थापना करहुँ तुम्हारी — राज्य जहाँ लग भूल हमारी।।
नगर ग्राम नहि बच है खेरौ — जहाँ चौतरा होय न तेरौ।।
भवन माह थापो पुन तोही — अब कलेश दीजै ना मोही।।

दोहा — दर्शन दै कर पुन दियो, अभयदान वरदान।।
घुरदमा सिर आगे गये, फिर भये अंतरध्यान।।

चौपाई— शहंशाह की प्रबल दुहाई — गाँवन गाँवन भई कहाई।।
करहु यापना बचै न खेरौ — है हरदौल पूज कुल मेरौ।
आज्ञा शहंशाह की मानी — बचो ग्राम ना जहाँ निशानी।।
व्याहु काज में प्रथम मनावें — गीत बुन्देला के प्रिय गावें।।
लेतीं नाम लछारे नौने — जे लाला हरदौल निरौने।।
जिनकी जाहर जग करतूतें—अब लग बनी गई नहि भूतें।।
मंदिर महल ताल रजधानी — झलक तेग—तेगन के पानी।।
देश धर्म हित प्राण गँवाये — जर जमीन जोरी सुख पाये।।
पुत्र समान प्रजा प्रतिपाले — मम अनीत पर कबहु न हाले।
अब सोइ बने वीर बर बंडा — फहरा रहे सवाई झंडा।।

दोहा — बही रुधिर रग—रग भरी, वही हाथ तरवार।
वही देश अरु भीष के, लगत अबै दरबार।।
जग जाहर बनी कछुक, कवि भूषण घनश्याम।
वीर बुंदेला वंश की, कीरति ललित—ललाम।।

००

इति श्री भीम पुराणे तृतीयखण्डे भारतांतर्गत।
श्री लाला हरदौल बुन्देला चरित्र पं. घनश्याम पांडे साहित्य
भूषण कृत सप्तदशोध्यायः।
शुभमस्त।

— मऊ चुंगी नाका, सुधाकर रोड, टीकमगढ़ म.प्र. ☐

गीत

— गोविन्द सिंह यदुवंशी

बदरा घिरे गगन में, हवा चले पुरवइया
खेती की मेड़ पे बैठी श्याम चिरइया
घास फूस कौ प्यारो छाजन
धोती फटी पुरानी, गंगा जल सो मीठो पावन
काठ कठोता पानी।
चन्द्रमुखी हँसती खेतन में लेती पवन वलइया
वंशी बजती खलिहानों में घर—घर में गोरइया,
ज्वार बाजरा की रोटी पे
षटरस व्यंजन वारे,
महुआ मेवा वेर कलेवा — पे ही मस्ती मारे,
हीरा मोती की हातन में चल रये लैय पगइया
इनके श्रम से सोना चांदी उगले धरती मइया
इनके तपसो सूरज तप रओ
हँस रइ रात जुषइयां
इन्हें रिझाने रात आंख में काजर दें लव लइया
गोधूली की बेरां आ रये गोकुल गांव कन्हैया
दूधन धार चुआती आरइ घोरी कजरी गइयां

— अध्यक्ष, कवि कुल साहित्य परिषद, पन्ना ☐

बुंदेलखंड के प्रमुख महल और उनका स्थापत्य

– रामप्रकाश गुप्त 'साकेत'

बुंदेलखंड में राजप्रासादों का निर्माण प्राचीन काल से ही होता रहा है, परन्तु प्राचीन काल में निर्मित कोई भी राज प्रासाद आज देखने को नहीं मिलता है, किन्तु मध्यकाल में निर्मित महल आज भी अपनी पूरी शान के साथ सिर ऊँचा किये खड़े हैं। बुंदेलखंड के राजमहल अपनी विशालता, भव्यता, सुन्दरता, स्थापत्य एवं कला के लिए विख्यात है। चंदेलकाल में निर्मित बारादरी एवं आल्हा की बैठकें महलों का ही लघु रूप थी जो बड़ी संख्या में पूरे बुंदेलखंड में आज भी देखने को मिलती है। गढ़ा मण्डला राज्य का 'मदनमहल' भी प्रसिद्ध महलों में गिना जाता है।

ग्वालियर के किले में स्थित गूजरी महल अपनी भव्यता और इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका निर्माण राजा मानसिंह तोमर ने अपनी प्रियरानी मृगनयनी के लिए कराया था। मृगनयनी गूजर जाति की थी इसलिए इसे उसी के नाम से 'गूजरी महल' कहा जाता है। कटावदार पत्थर के काम में निर्मित यह दुमंजिला महल ३३२ फुट लम्बा तथा १९६ फुट चौड़ा है। इसके भीतरी भाग में एक विशाल आंगन है, जिसके चारों ओर खुदाई के काम से युक्त ब्रेकटों तथा मेहराबदार दरवाजों से युक्त अनेक छोटे कक्ष बने हुए हैं। इसके सादे किन्तु भव्य बाहरी भाग में गुम्बजदार बुर्ज हैं। छज्जों के नीचे सुन्दर घुमावदार ब्रेकटों की पंक्ति हैं और कुछ चौरस आकृतियाँ हैं, जिनमें किसी समय मीनाकारी युक्त टाइल जुड़े हुए थे। ग्वालियर के किले में निर्मित राजा मान सिंह का महल भी अत्यन्त गौरवशाली स्मारक है जिसे फर्गुसन ने भारत के प्रारम्भिक काल में निर्मित हिन्दू प्रासादों में अत्यन्त भव्य एवं आकर्षक उदाहरण माना है। यह चार मंजिला है इसकी दो मंजिलें जमीन के नीचे और दो मंजिलें जमीन के ऊपर हैं। महल आयताकार है जिसकी लम्बाई उत्तर से दक्षिण की ओर ३०० फुट तथा पूर्व से पश्चिम की ओर १६० फुट है। महल अत्यन्त कुशलता पूर्वक अलंकृत किया गया है।

चन्देरी का कोशक महल भी अत्यन्त प्रसिद्ध राजप्रासाद है। इसका निर्माण मालवा के सुल्तान महमूद खिलजी ने जौनपुर की जीत में खुशी में सन् १४४५ ई. में कराया था एवं इसका नाम 'कौशके हफ्त मंजिल' रखा था। फारसी में कौशक का अर्थ है 'आलीशान महल'। कौशक महल ११६ फीट की वर्गाकार इमारत है, इसकी संयोजना क्रास जैसी हुई है। वस्तुतः कोशक महल की बराबर दूरी पर स्थित बराबर माप के चार महलों का संयुक्त रूप है और वे सभी एक चौड़े रास्ते से जुड़े हुए हैं। ऊपर का भाग टूट गया है, पर इसमें गुम्बद नहीं थे। सम्भवतः प्रत्येक कोने पर एक छतरी थी, प्रवेश द्वार महराबदार है और उन्हें महराबदार आलों से सजाया गया है। सभी महल तीन मंजिले है। पहली मंजिल की छत में आड़ी–तिरछी महराबों का सिलसिला है और दूसरी मंजिल की छत ढलवां है। तीसरी मंजिल की छत सपाट है और भारवहन करने के लिए टेकों तथा खम्भों का प्रयोग किया गया है। प्रत्येक मंजिल लगभग १५ फुट ऊँची है। महल का बाहरी भाग खिड़कियों और छज्जों से युक्त हैं महल के सामने का भाग सफेद चूने के पत्थर का बना हुआ है। पहले महल के चारों ओर एक सुन्दर बाग था। महल का स्थापत्य सादगीपूर्ण है।

ओरछा बुंदेला राजवंश की कई शताब्दियों तक राजधानी रहा है बुंदेली नरेशों ने अनेक महलों का निर्माण कराया था जो अपनी भव्यता एवं कलात्मकता के लिए आज भी विख्यात हैं। ओरछा में राजमहल का निर्माण महाराजा मधुकरशाह ने लगभग १५७५ ई. में कराया था। यह बाहर से देखने में विशेष प्रभाव नहीं डालता है। यह लगभग वर्गाकार हैं, इस महल का भीतरी भाग दो हिस्सों में बँटा हुआ है, पहले छोटे से सहन को पार करने पर मुख्य बड़े सहन में पहुँचते हैं। इस सहन या आंगन के चारों ओर की मंजिलों पर आवासीय कक्ष दालान और बीच–बीच में हवा तथा प्रकाश के लिए खुली छतें और खिड़कियाँ या झँझरियाँ हैं। महल में सुन्दर चित्रकारी की गयी है।

ओरछा में सबसे सुन्दर राज प्रासाद 'जहाँगीर महल' है। कहा जाता है कि इसका निर्माण ओरछा के राजा वीरसिंह देव प्रथम ने अपने मित्र मुगल सम्राट जहाँगीर के स्वागतार्थ करवाया था। किन्तु हाल के शोधों में इसके निर्माण कार्य को प्रारम्भ करने का श्रेय महाराजा मधुकरशाह को दिया जा रहा है। सम्भवतः इसका निर्माण राजा मधुकरशाह के समय से प्रारम्भ होकर वीरसिंह देव द्वारा पूरा कराया गया होगा। जहाँगीर महल २२० वर्गफीट की वर्गाकार जगह में बना हुआ है, यह तिमंजिला है। आठ सुन्दर गुम्बदों पर यह वर्गाकार भवन आधारित है। इसके बीचों–बीच में १२५ फीट भुजीय वर्गाकार आंगन है। इसके चारों ओर इमारत बनाई गई है। आंगन में छज्जों की सजावट हाथियों की आकृति वाले टेकों से की गई है। आंगन के मध्य में फब्बारा है ऊपर के कमरे व कगार आँगन को घेरे हुए है। सभी कमरों के आगे लटकता हुआ छज्जा है। ऊपर की छत में कोनेदार रास्ते बने हुए हैं। सुन्दर विभिन्न प्रकार की जालियाँ बनी हुई है। जालियों के ऊपरी भाग में सर्पाकार डिजायन है। इसका मुख्य दरवाजा पूर्व की ओर है। इसके नीचे तलघर भी है, अपनी मजबूती, सजावट और निर्माण की योजनायें यह जहाँगीर महल बेजोड़ है। महल को पशु–पक्षियों, कमल, फूल पत्तियों आदि के द्वारा एवं सुन्दर चित्रकारी के द्वारा सजाया गया है।

ओरछा के अन्य महलों में शीशमहल, पालकी महल, एवं राय प्रवीण महल भी प्रसिद्ध है। रामराजा मंदिर भी वस्तुतः राजमहल ही था। रायप्रवीण महल का निर्माण ओरछेश रामशाह के काल में उनके अनुज इन्द्रजीत सिंह ने कराया था। इस महल का

निर्माण इन्द्रजीत सिंह ने अपनी प्रेयसी, रूपवती गायिका एवं कवयित्री व नृत्यांगना रायप्रवीण के आवास हेतु कराया था। निचली मंजिल (भूतल) पर मध्य में एक विशाल हाल है जो दो विशाल मेहराबों द्वारा तीन भागों में बंटा हैं पिछली दीवार में सजावट हेतु मेहराबदार कई ताखें हैं। इस हाल के अलावा इस मंजिल में पांच कक्ष हैं, हॉल के दोनों ओर से ऊपर जाने के लिए सोपान हैं। ऊपरी मंजिल में मध्य में स्तम्भों पर आधारित बारादरी है। इसमें राय प्रवीण एवं घोड़े पर सवार इन्द्रजीत सिंह के चित्र बने हैं। बारादरी के दोनों ओर एक–एक कक्ष है। कक्षों के सामने बरांडे हैं। पश्चिमी ओर छत पर जाने के लिए सीढ़ी है। निचली मंजिल के आगे चबूतरा है, जिसके नीचे तलघर में एक विशाल हाल है, जो स्तम्भों द्वारा तीन भागों में बंटा है। इस महल का मुख्य आकर्षण इसका मनोरम उद्यान है। यह उद्यान एक दीवार द्वारा दो भागों में बंटा है। पालकी महल हरदौल से सम्बन्धित है। पालकी महल एक दो मंजिला आयताकार इमारत है। इसकी ऊपरी मंजिल पालकी के आकार की है। ऊपरी मंजिल में तीन कक्ष हैं।

दतिया का 'सतखण्डा महल' भी अपनी भव्यता एवं स्थापत्य–कला के लिए प्रसिद्ध है। इस महल का निर्माण ओरछा नरेश वीरसिंह देव ने कराया था। इस महल की आधारशिला सम्वत् १६७५ वि. में रविवार माघ सुदी पंचमी को रखी गई थी। महल के निर्माण पर ३५ लाख रुपये व्यय हुए थे और यह नौ वर्षों में बना था। यह महल सात मंजिला है। ग्रेनाइट की चट्टानों को काटकर भवन निर्माण का धरातल तैयार किया गया है। प्रत्येक कोने पर तथा प्रत्येक ओर मध्य में बड़े–बड़े गुम्बद हैं। मध्य भाग के ऊपर एक वर्गाकार वीथिका बनी है। मुख्यद्वार पूर्व की ओर है जो पूर्णरूपेण अलंकृत है। स्वास्तिक आधार में बने इस चौकोर महल के प्रत्येक खण्ड में चार चौक हैं, बीच में मण्डप है जो नीचे से ऊपर तक क्रमशः उठता गया है। महल में छतों के नीचे गचकारी एवं फारसी दरी शैली की चित्रकारी है। स्तम्भों की उकेरियाँ, पत्थर की जालियाँ, गुम्बद, भारणी, कंगूरे आदि देखते ही बनते हैं।

सागर जिले के किलों में अनेक सुन्दर महलों का निर्माण तत्कालीन कला प्रेमी शासकों ने कराया था। इनमें कुछ महल आज भी अच्छी अवस्था में प्राप्त होते हैं। राहतगढ़ के किले में स्थित 'बादल महल' ऊँचाई पर स्थित है। इस महल में पहुंचने के लिए पाँच दरवाजों को पार करना पड़ता है। इसका निर्माण में गोंड राजाओं ने करवाया था। दांगी राजाओं की राजधानी गढ़पहरा का किला भी अत्यन्त, महत्वपूर्ण है। गढ़पहरा झांसी–सागर मार्ग पर सागर से छह मील उत्तर की ओर स्थित है। गढ़पहरा दुर्ग में दांगी शासकों द्वारा निर्मित 'शीशमहल' अत्यन्त महत्वपूर्ण इमारत है। शीशमहल एक चौकोर भवन है। इसमें दो तल्ले हैं। प्रत्येक कक्ष के चारों ओर बरामदा है। विभिन्न रंगों के चमकदार खपरे दांतेदार प्राचीर की पटिया में और गुम्बद की तीलियों में एक के बाद एक लगे हैं। यहाँ वर्तमान में रंगों के कांच भी उपलब्ध होते हैं। गहरा नीला, हलका नीला जो कि डोम की छत पर एवं दीवारों पर एक के बाद एक उपयोग किये गये हैं। खुले बरामदे में प्रत्येक ओर स्तम्भ एवं सहस्तम्भों के बीच के दो स्तम्भों के ऊपर से भवन का गुम्बद उठाया गया है। इसी तरह के गुम्बद भवन के प्रत्येक कोने पर आये हैं। इस प्रकार दो गुम्बदों के मध्य खुली जगह छोड़ दी गयी है। गुम्बद नीचे बेलनाकार हैं एवं ऊपर गोलार्द्ध जो कि मोटे पलस्तर युक्त हैं। चारों ओर कोने के गुम्बद लम्बवत् खजूर आकार में हैं जबकि मध्यका गुम्बद चक्राकार आकार में अलंकृत हैं। इस महल का निर्माण दांगी नरेश जयसिंह ने करवाया था। सागर जिले के मध्यकालीन इतिहास में प्रसिद्ध नगर खिमलासा के किले में निर्मित 'नगीना महल' जिसे 'कामे–ओ–पेविलियन' के नाम से भी जाना जाता है, आज एक जर्जर भवन के रूप में अवस्थित है। किसी समय यह एक सुन्दर भवन रहा होगा, जिसमें उत्तरी और पूर्वी पार्श्व में स्तम्भदार बरामदे और दक्षिणी तथा पश्चिमी पार्श्वों में अभिवारों पर एक चौड़ी आगे को निकली छत रही होगी। केन्द्रीय गुम्बदाकार भाग कुल बारह स्तम्भों पर टिका है जिसका कोने का भाग एक साथ जुड़े हुए चार स्तम्भों और बीच का भाग एक साथ जुड़े हुए दो स्तम्भों का है। महल में ज़ाली का सुन्दर काम दर्शनीय है।

छतरपुर जिले के मनियागढ़ दुर्ग में 'राजगढ़ महल' पहाड़ की उत्तरी तलहटी में स्थित है। राजगढ़ महल का निर्माण पन्ना के राजा हिन्दूपत ने कराया था। राजगढ़ पैलेस का दरवाजा उत्तर की ओर भव्य चबूतरे पर है। जिस पर आने–जाने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। दूर से देखने पर यह महल किला प्रतीत होता है। इसके चारों कोणों पर षटपाली मीनारनुमा गुर्जे हैं। प्रांगण के चारों ओर सुन्दर कक्ष है। प्रांगण के पृष्ठ भाग के नीचे तलघर में भव्य दरबार हॉल है। महल की दूसरी मंजिल पर दो बड़े भव्य कक्ष हैं तथा चारों कोनो पर चार (अटा) कक्ष हैं। कमरों पर सुन्दर छतरियाँ बनी हुई हैं। दरवाजे की छत पर दस–दस छतरियाँ क्रमशः के उतार–चढ़ाव में बनी हुई है।

शिवपुरी जिले में स्थित 'नरवर' का किला अत्यन्त विख्यात है। इस दुर्ग में 'कचहरी महल' एवं 'सुनहरी महल' सुन्दर राज प्रासाद हैं। कचहरी महल को बड़ामहल भी कहा जाता है। यहाँ एक हाल में लकड़ी का सिंहासन अभी भी सुरक्षित रखा है। यह राजा नल का सिंहासन बताया जाता है। इन महलों में आंगन दरबार, अन्तःपुर, उद्यान एवं तैरने व स्नान के तालाब विशेष दर्शनीय हैं। सुनहरी महल में सुनहरे रंग की स्वर्ण चित्रकारी है।

बाँदा जिले में स्थित कालजयी कालिंजर दुर्ग में राष्ट्रकूट महल, चौबे महल, राजा अमानसिंह महल भी अपनी कला एवं स्थापत्य के लिए जाने जाते हैं। बुंदेलखण्ड के अन्य महलों में कुल पहाड़ का सेनापति महल, पन्ना का महेन्द्र भवन, जैतपुर का बादल महल, चरखारी का ड्योढ़ी दरबाजा, धामौनी किले का रानी महल पिछोर (शिवपुरी) का सतखण्डा महल, धुबेला का मस्तानी महल एवं बाबन चौकिया महल, चन्देली का बुन्देला कालीन 'राजा का महल' एवं 'हवा और नौ खंडा महल' प्रसिद्ध इनके अलावा और भी अनेक छोटे–छोटे महल विभिन्न किलों में विद्यमान है।

– गृहपति सदन, विद्यानगर कॉलोनी,
चिरगांव, झांसी उ.प्र. ☐

कुछ भूली–बिसरी बुँदेली पहेलियाँ

– संकलन : पंकज तिवारी

१. एक चिरैया रंग–बिरंगी, जब देखो, देखो सो चंगी।
– बैजनाथ की लट

२. एक रूख अदबरो, ऊके नैचें जल भरो।– लालटेन/दीपक

३. एक खेत की माटी कारी, ऊमें बीज डरो है भारी।
होय न सियारी फसल उनारी, तोऊ पै होय उपज है भारी।
– दुधारू भैंस

४. एक ताल मे घोंगू बियानी, ऊकी तेली भौत मिठानी।
– मधुमक्खियों का छत्ता जिसमें शहद होती है

५. एक अचम्भौ हमने देखौ, मुरदा रोटी खाय,
टेरे में बो जुवाब नैं देबै, मारें तो चिल्लियाय। – मृदंग

६. एक नार ऐसी खूबसूरत, मुंह में बाके दाना।
बाके करमा ऐसे फूटे, खसम मिलो है काना। – बंदूक

७. एक गल्ले में दायें नुबीती, हाँकें प्यारेलाल
तरें–तरें पियांर डरीती ऊपर मोतीलाल। – मक्खन/घी

८. एक गैल की बारा गैलें बारा की बत्तीस
जाने जो कोऊ तो मिलें ऊये टका छत्तीस।
– कद्दू की बेलें/लतायें

९. एक टठा में धरे टका, नै लगै काऊ कौ उतै ढका।
– आसमान के तारे

१०. एक चिरैया रंग–बिरंगी, भरे कुआ में नाच भाबै
वृन्दावन की बोले बोली, गीत किशन के गाबै।
– फूल मथानी

११. एक रूख झबरा–झबरा के तरें मिलका
मिलका के तरें सुनका–सुनका के तरें भरका
भरका के तरें लरका–लरका है लार टपका। – जीभ

१२. एक लकरिया अंगुल चार बड़ई कै डारी
बड़ई पूनैं का कर डारी। – मानी

१३. दुई दिया जलें, दुई सूप चलें, हुई फटर–फटर चार खंब चलें
संग अजगर महाराज चलें, राम की बेटी सलाम कर चलें।
– हाथी

१४. चार खूंट कौ चौपरा अस्सी गज की डोर
राजन ठांड़े मझघटा देखों नाचत मोर। – पतंग

१५. चार खूँट कौ चौंतरा ऊपै जेठ की लेट
जेठ के आंगू बहू निकर गई रै गव ऊकौ पेट – रोटी

१६. चार डबुलियां रस भरीं, बिन ढक्कन औंदीं डरीं
– गाय–भैंस केथन

१७. पांच पांडव घने खजूर, कोऊ आरव कोऊ जारव दूर।
– उंगलियां

१८. तनक सौ लरका लयें गुटान, हल–हल कांपै बासें जुवान।
– बिच्छू

१९. तनक से गुल्लू मम्मा, तनक सी पूंछ
जियायें गये गुल्लू मम्मा जियाई गई पूंछ। – सुई धागा

२०. तनक सौ लरका बम्मन कौ तिलक लगायें चंदन कौ।
– उड़द

२१. तनक–सी लठिया में फूल गुठौ, हो गव सुवागत चलौ उठौ।
– लोंग

२२. तनक सौ सौनों घर भर नौनौं। – दीपक

२३. तनक सौ लरका लयें गुटान, गुटान के मारें हले जुवान।
– बिच्छू

२४. आठ कुलारी नौं तरवारें मरै न तोई मारें–मारें। – परछाई

२५. पटा–पिंडी सब गड़ लियौ, बचै लकरिया फेर दियौ।
– बढ़ई

२६. वन की लकड़ी हाथ सफाई, बन्नी–ठनी इक जोड़ी आई।
– उरसा–बिल्लां

२७. डब्बा के भीतर डब्बा निकरो, बाप सें गोरौ लरका निकरो।
– नारियल

२८. हम गांव में कुश्ती देखतते बत्तीस मर्द उतै लौटतते
जब कुदऊं मम्मा जीतते सब भाई छमाछम नाचतते।
– दांत

२९. औंदे लाला सरके लाला, साल भर में लौटे लाला– खपरा

३०. नायें–मायें डोल आई लाल बट्टू गाड़ आई। – आग

३१. झांसी से महारानी आई, तर–ऊपर उन्ना ओड़े आई।
बारन कौ झुतरा काड़ें आई, संगै दांत निपोरत आई।
– मक्का की भुट्टियां

३२. इतै ठसे उतै ठसे कक्का जू कहाऊत हैं
फूटी कौंड़ी खुटी में नईया, बेड़नी नचाऊत हैं।
– बिच्छू

३३. सर्रा रूख सियानौ झौंरौ, बिना डार कौ पत्ता कौंरौ।
– केले का पेड़

३४. बेला भर राई ऐसी बिर्राई, जां देखौ तां सबै नजर आई।
– आसमान के तारे

३५. बेला भर है भात कौ नाप, न खाय काऊ न काऊ कौ बाप।
– नमक

३६. कछवारे में खात–पियत, उर कछवारे में रात।
पेड़न–पेड़न टंगे फिरत, उर पत्तन में छुप जात। – भटा

३७. मचली उर रो चली मनचली धायं धैयां
बाप की लाड़ली सो चड़ गई कदैयां। – बंदूक

३८. कभऊँ रीती कभऊं भरी, झूलै भारी ठाट तरी। – अरगनी

३९. हल्कौ सौ गोला टिकटिका टिकौला। – घड़ी

४०. नायें गई मायें गई दोरै खौं छेंक गई।
धर–दोरै बाई चौखरे खौं टांग गई। – ताला

४१. माटी कौ मटका सोने कौ ढकना
बामें बैठे चिमाने चार हिन्ना – तेन्दू का फल

४२. झांसी में महारानी आई, लाल पिछौरा ओड़ें आई। – प्याज

४३. ससुर का देखत करौ बियारी, सास की सारी बहू तुम्हारी। – साड़ी

४४. कारे पहार पै गलगल बियानी
ऊकी तेली भौत मिठानी।
– मधुमक्खियों का छत्ता जिसमें शहद होती है।

४५. बाप करिया, लरका गोरौ, डरो पहारन–हारन हेरौ। – महुआ

४६. सांकर टोर समुंदर नाकौ, कारे पठा पै बैल दलांकौ। – बंदूक

४७. हारे जाय हरीरौ खाय, सबके भारी कामें आय। – हंसिया

४८. गोल–गोल चकरी बामें मीठौ रस
जानें कोऊ तो ऊये टका मिलें दस। – जलेबी

४९. बैल बैठो थान पै सर्राय पगैया चौतरपै। – कद्दू की बेल (लता)

५०. बऊत नदी तट गौ चरै, रीती नदी तौ गौ मरै। – लालटेन/दीपक

५१. कोऊ ठाड़े सो ठांड़े उर बैठे सो ठांड़े। – सींग

५२. कल्लू कुतिया कोदौं खाय
लई डकार उर धूम मचाय। – बंदूक

५३. अंदयाये मड़ा में बहू खड़ी, बा खाबे–पीबे खूब अड़ी। – कुठिया

५४. अली कौ लरका भौत बली, खपरन में से करी गली। – धुआं

५५. आई नदी को आये कौ पेड़ौ, बऊत जात है टेड़ौ–मेड़ौ। – धुआं

५६. लाल लड़ैया लंबी पूंछ, नै मानें तो काऊ सें पूछ। – मिर्च

५७. बैला छोड़न गई ती बिन्नू सींग हार में मारो,
ऐंसौ सींग लगो बिन्नू खौं निकरो नईं निकारो। – कांटा

५८. करिया मटका में कुदई भरी, पूंछत काऊ सें कितै धरी। – भटा

५९. धरती माड़न मेघ रिति सभा लजावन कंत
हे सखी बे हमें देव, हमाये आये संत। – हंसिया

६०. नौ सौ कोलू नौ सौ लाठ, रांटा गड़े तीन सौ साठ। – मधुमक्खियों का छत्ता।

– शिवजी का बाड़ा, इटावा नगर
बीना जिला सागर □

चौकड़ियाँ

– भारतेन्दु अरजरिया 'इन्दु'

दोहा – राधा की सुध आ गई, रटो सुआ नें नाँव।
ऊधौ बृज खाँ जाव तुम, जाँ बरसानों गाँव।।
चौकड़ियाँ रच 'इन्दु' नें, कओ गोपिन कौहाल।
कब कैसी करहै कृपा, कैसे हैं गोपाल।।

चौकड़ियाँ – ऊधौ का कारन तम आये, केशव के पठवाये।
ल्याये अपुन संदेसौ जिनकौ, ने ही हते हमाये।।
सुनतन बैन झुरानो सब तन, ठांड़े रान न पाये।
'इन्दु' दशा राधा की लखकें, आँखन अँसुआ छाये।।

ऊधौ काँ हैं श्याम हमाये, संगै काये न आये।
हम जानत हैं उन गुपाल खाँ, गउधन इतै चराये।।
डाटत हते गैल धर सूनों, माखन चोर कहाये।
'इन्दु' सुनी बे राजा हो गये, हम गरबि बिसराये।।

ऊधौ कैसे किसन तुमाये, हारे नैन कहाये।
चरचा सुनी राज के मिलतन, गोप–ग्वाल बिसराये।।
रथ बिठार अकरूर लिवा गये, मोहन बहुर न पाये।
'इन्दु' रैन दिन बिसरत नइयाँ, नैन पुतरियन छाये।।

ऊधौ काँलौ तुमें बताबें, चैन कहूँ नईं पावें।
बाब नंद जसोदा मइया, सोचन सूखे जावें।
वंशी बिना कुंज बन सूनें, ग्वाल वाल अकुलावें।
'इन्दु' छली गोपाल चले गये, हम अँसुवा बरसावें।।

ऊधौ पीर जगी मन भारी, विरह बढ़ावन वारी।
वंशी मोह गई गोपिन खाँ, विसरत नईं विसारी।।
श्याम मिलैं जो उनसे कइओ, राधे–श्याम हमारी।
'इन्दु' बालपन से हम जानत, छलिया छैल विहारी।।

ऊधौ प्रेम परीं बृजबाला, पठैदेव नंदलाला।
कारी इतई कमरिया रैगाई, ओढ़त हुयें दुशाला।।
जा वंशी उनखाँ दै दइऔ, हमें देव मृग छाला।
इन्दु ग्यान हम ध्यान न जानें, जपैं श्याम की माला।।

दोहा – राधा जू बोलीं नहीं, आँखन अँसुअन धार।
लख ऊधौ हिलकी बँधी, अँसुआ बे रये ढार।।

चौकड़िया –ऊधौ देख दशा सकुचाने, गोप ग्वाल जुरयाने।
गोपी सुनत दौरती आवें, श्याम सखा के लानें।।
कीखाँ का ऊतर अब देवै, काये श्याम रिसाने।
काँ हैं 'इन्दु' श्याम मनमोहन, ऊधौ सोच ससाने।।

– मैथिलीशरण गुप्त मार्ग, महोबा उ.प्र. □

कुटैला कौ कटारा

बनाम एक निर्धन दानवीर 'बुँदेली बालक' की, करुण कहानी

— भानुप्रताप शुक्ला

(जब १९६२ में हमारे पड़ोसी चीन ने देश पर हमला किया तो देश की सैनिक तथा आर्थिक दशा दयनीय हो गयी। ऐसे में देशवासियों ने तन–मन–धन से दान व उपहार देकर राष्ट्र की मदद की। ऐसे ही एक सीमा सुरक्षा बल के शहीद सिपाही के अबोध बालक की करुण कहानी है यह)

सन् बासठ की बात, चीन नें जब दै करी चढ़ाई।
सुन, जन जन कौ खून खौल गओ, गम, गुस्सा भर आई।।
गाँव गाँव में, जनबच्चे सें, सबनें खबरें पाई।
'चाऊमाऊ' की घर घर ठठरी, बाँदन लगीं लुगाँई।।
गरजन लगे किसान, देश में करें, अन्न की पूरी।
दो दो दिन की, मजदूरन नें, छोड़ी खुद मजदूरी।।१।।
साधू–सन्तन नें 'ज्वानन' हाँ, कमरा, शाल पठाये।
'नगर सेठ' की बउअन, बिटियन नें गानें पोंचाये।।
मँगनारे ने 'कूरे कक्का' लौ, कुड़ेल दई झोरी।
पंचायत के द्वारे, ख्वारें, धर गओ 'कलुआ' कोरी।।
'डरुआ काछी' आज भटन कौ बेंच गाँठ में वाँदे।
सबसें पूछत फिरै, काये जू! की हाँ हम जो काँदें?
सबखाँ बड़ो उमाव, 'कलहर' की है आज अबाई।
भरी खचाखच, बरियावाली, लोगन गजब 'अथाई'।।
नईयाँ तनकऊ साँस, रामधई तिल धरबे हाँ ठउआ।
उतईं जुरें बैठे, 'ढड़कोले', 'बूचे', 'गिल्ले', दउआ।।
खेलत हतो 'कुटैला' ऐंगर ऊनें! देखो साँसो।
घर खाँ भगो, बाई सें पूछन, होनें कौन! तमाशो?
हाँपत–सीपत, गिरत गली में, दौर पोंर में आओ।
देरी सें, सिर्री सौ, कस कें, बाई!बाई! चिल्लाओ।।
सुनत टेर ऊ! की, शंका से, माँ कौ माँथौ–घूमों।
फेर मूँड़ पै हाँत, मताई नें सुतकौ मों–चूमों।।
'बोली' – 'अथय हती, ना रोटी, करी न तेंने! ब्यारी।'
चल! मैं, तोय गकरिया, पै दों पीसी तनक 'समारी'।।
वो! बोलो – 'मोय खाने नइयाँ' बता आज का होंनें?
भीर पची काये? अथाई पै? जुर रयें चाँदी, सोंने
भरें पिसी छिटिया में बैठी, मई 'बलुआ की बाई'
'डकाबुआ' पैरकें कड़ गई, सुआपंख–इकलाई।।
ओरी! का होनें अथाई पै? हमें! बतादो, नोंनें?
कैसौ! रक्षाकोष? काये कौ? कौन! तमाशौ होंने?
बोली माँ – ''बेटा! चौपटया चीन, आज चढ़ आओ।
अपने 'अविनाशी' कौ ऊनें! आसन आन डिगाओ।।
आँचर छोर जोर फिर दोउ कर, बोली – ''दिनकर दाता।
नाश करौ वैरी की! अपनी दुखिया 'भारत माता'''

बोली – 'बेटा! आज देश पै, संकट पर गाओ भारी।'
सीमा पै, प्रानन की बाजी, लग गईं ऐंन करारी।।
जी बेंननने, बेटा! लरबे खाँ, पति, पूत पठाये।
उन! बीरन के लानें जे! सब जुर मिलकें जौ ल्याये।।
आज ओई के लानें आरये, अपने गाँव 'कलट्टर''
एक साँस में कैगई धनियाँ, लम्बी साँसें भर भर।।
सुन बेटा की बात, तरईयाँ विधवाकीं भर आई।
मन मसोस रह गई, न निकरी, मों सें हाँई, नाईं।।
मातृभूमि–सीमारक्षा में, पुँछ गई ती सिंदूरी।
गाँव पुरा कौ कूट पीस कें, कर कर मेंन्तमजूरी
'महामाई!तौरो! लतरोंदा, मों! अनाथ कौ हूँ का।'
कै कै पालो तो अबला नें, दुखिया दिल कौ टूँका।।
छः जाँगा सें डणी लपेटें, धुतिया लाल–गुलाबी।
सोच सोच जौ–दिन काटत ती, कैसें लाज बचावी?
मन में उठी हिलोर, दान खाँ हतो न घर में दानों
पेटभरत ती कैसूँ, देखो कीने! जेवर–गानों?
नजरें दौराईं दुखियानें, 'घर हो रओ घरघूला'
टूटी खटिया पै लटकत तो, सामें फटो–कथूला।
दो थैलन में मिठवाँ–मउआ, भरेगरेट धरे ते।
मई कोंने में रीते भाँड़े, ओंदे अलग परे ते।।
इक पटका पै, पोलक 'सकसा', सूकें हाँ बगरो तो।
खुटिया पै मई, उदरो सूपा, सामें अलग टँगो तो।।
फौरन कौरन खाँ हो गई ती, आकें इते! गरीबी।
को! देखत तो? कैसें जीरई? जा! दुखिया, श्रमजीवी
फूटी तरी, बगल में पिचको, ओंठ कटे चहुँओरा
आँगन में करिया सिलबर को, फूटो डरो कटोरा।।
ऊ! पै रुकी निगाह, उठाकें माँज माँज चमकाओ –
रक्षा हेतु, पुत्र के हाँतन, दुखिया नें पौंचाओ।।
हालो फूलो भगो, कटोरा! घर सें दाब कुटैला
भरी सभा में दओ 'कलट्टर' खाँ ऊने! कर फैला।।
बोली बुली, देश रक्षा हित, खुली दान की पेटी।
एकबेर में छैसौ, कै गई, साहुकार की बेटी।।
सौ सौ बढ़े, रकम नौं सौ भई, रे गये सब भौचक्का।
टोरौ डाक, हुजूर! जोर कर, बोले–कूरे कक्का।।
बोले–ई!में साब! ठीक सें मिलेंन, गरी–छुआरे।
तब लौ, नौ सौ से, तेरा सौ, हाँकन लगे हँकारे।।
पच्चीस सौ पे बोली टूटी, फूटो बिको कटोरा।
'दानवीर सिरमौर कुटैला' पिट गओ गाँव ढ़िंडोरा।।

— संदीप सदन, कंचनपुरा
निवाड़ी, जिला टीकमगढ़ म.प्र. ☐

सीताराम की कहानियां नीकी लगती

– डॉ. (श्रीमती) गायत्री वाजपेयी

भारत भूमि के महनीय गौरव पतितपावन मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का चरित्र लोकसाहित्य में अपनी समग्रता के साथ अभिचित्रित हुआ है। लोक साहित्य की पावन पयस्विनी राम के निर्मल चरित्रांकन के साथ प्रवहमान हो जन जन का कल्याण करती रही है। राम सीता की पुनीत लीलायें वंदनीय, मननीय एवं अनुकरणीय हैं। वे सार्वदेशिक, सार्वभौमिक तथा सार्वयुगीन हैं। जो युग युगान्तर तक लोकमानस को त्याग, समर्पण, सेवा, प्रेम एवं उत्सर्ग के शाश्वत मूल्यों की शिक्षा देती रहेंगी। पुण्यधरा भारत की मोक्ष प्रदायिनी सर्ववंदिता आध्यात्मिक नगरी अयोध्या में चैत्र शुक्ल नवमी को जगतोद्धारक परम प्रभु जगदीश्वर का प्राकट्य हुआ है। जगत के पालनहार जगत उद्धार हेतु भूलोक पर अवतरित हुये हैं। अतः समस्त लोकों में आनन्द का सागर लहलहा उठता है। सुर नर मुनि सभी हर्षाभिभूत हैं। देवगण पुष्प वर्षा कर रहे हैं। मानसकार तुलसी लिखते हैं –

सुमन वृष्टि अकास तें होई। ब्रह्मानंद मगन सब कोई।।

राजराजेश्वर दसरथ के राजभवन में मंगल बधाइयां बज रही हैं। लोक कवि के हृदय का उल्लास इन शब्दों में प्रस्फुटित हुआ है –

बाजत आजु आनंद बधाई
कौशिल्या के राम जन्म लियो
देखहू नयन अघाई
सब नर नारि सुमंगल गावहिं
नाचहि ताल बजाई।

प्रभु श्रीराम का जन्म धर्म संस्थापनार्थ हुआ है। अतः राम जन्म की सूचना से जहां धरती मां आनंदित व प्रमुदित है वहीं अधर्मी आततायी असुर शोकाकुल हैं। पृथ्वी ने अपनी प्रसन्नता की सूचना प्रकृति को सजा संवारकर प्रकट की है। चारों ओर हरीतिमा छा गई है, वृक्षों में नवकोपलें आ गई हैं, वनांचल में दूर्वा लहलहा उठी है, आम की शाखायें फल–युक्त हो उठी हैं। वसुधा की यह प्रसन्नता स्वाभाविक है, क्योंकि उसे ज्ञात हो चुका है कि भू भार को हल्का करने वाली शक्ति का, प्रकट्य कौशिल्या के गृह में हो चुका है। लोककवि ने पृथ्वी की प्रसन्नता, अवध के आनंद एवं असुरों की चिन्ता का प्रकटी करण इस प्रकार किया है –

जहां जनमें हैं राम धन्य भाग दसरथ के।
सो मोरी सखि पहिलो सपन हमने देखो अंगना में हरी दूब।
सो मोरी सखि दूजो सपन हमने देखी फूली है फूलवाद।
सो मोरी सखि तीजो सपन हमने देखी लोढ़ा से आम।
सो मोरी सखि चौथो सपन हमने देखौ पिरगट भये राम।
लंका के हल गये कंगूरा असुरन खां भये सोस।
जहां जनमें....

घर–घर आनन्द बधाई बज रहीं हैं, बंदनवार घरों की शोभा बढ़ा रहे हैं। सम्पूर्ण नगरी आनन्द में निमग्न है। महाराज दसरथ के द्वार पर मंगल बधाई बज रही है। पुत्र जन्म की सुखदसूचना उनके लिए ब्रह्मानंद के समान है। उसके उल्लास की सीमा नहीं है। तुलसी कहते है –

परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजाबहु बाजा।

मुदित राजा दान दे रहे हैं जो जिस प्रकार की अभिलाषा लेकर आता है आज उसको सभी कुछ मनोनुकूल प्राप्त हो रहा है मानसकार के शब्दों में– तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा।
दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा।

अवध नगरी एवं अवध नरेश के इस उत्साह का वर्णन लोककवि ने भी किया है। साकेत वासी सुख, सिन्धु में आकंठ डूबे हैं, वे ब्रह्मानंद में मग्न हैं। उनका यह आनंद अवर्णनीय है। राम जन्म की सूचना पाते ही जो जैसा बैठा है वैसा ही दौड़ पड़ता हैं साकेत नगरी में शुभ और मंगल के प्रतीक कंचन कलश द्वार पर सजे हुये हैं। सभी के हाथों में मंगल कलश सुशोभित हो रहे हैं। सखियां नगर की इस अनुपम सुन्दरता का बखान परस्पर कर रही हैं। लोक कवि इस आनन्द की अभिव्यक्ति करते हुए लिखता है–

चल देख सखी नृपति दरबार बधाई बाज रही।
राजा राम अवध में प्रगटे भवभूवन सुखदाई।
गान दानसुर कते नवेली बाजत मधुर बधाई।
कहाँ लो बरनो सुख सिन्धु वृषभान अली बन जाई।
जे जहां ते तहां से उठ आई मंगल थार सजाई।

आम्रपत्र के बने बंदनवार भवन की शोभा को द्विगुणित कर रहे हैं। अयोध्या के राजभवन की शोभा तो आज अवर्णनीय है जहां जगत को अलौकिक करने वाले प्रकाश पुंज का अवतरण हुआ है वहां की शोभा किस प्रकार वर्णित हो सकती है यथा –

जन्में राम लला जी अवध में जनमें राम सलोना
रानी कौशिल्या के लाल भय हैं राजा दसरथ के छोना।
रानी कौशिल्या की कूख जुड़ानी राजा दसरथ के नैना।
बंदनवार बंधे दरवाजे जन्में राम छलोना
हीरा लाला परे पलना में रेशम टंगे टंगना

नगर की मालिनें बंदनवार लेकर भूप दरबार की ओर चल पड़ी हैं चहुं ओर राम जन्म की चर्चा है। नगरवासियों की चिर प्रतीक्षित अभिलाषा आज साकार हुई है। युवराज के दर्शन हेतु तृषित नेत्र आज तृप्त हो गये हैं। संतृप्त हृदय शीतलता का अनुभव कर मुदित हो उठा है –

जो बंदनवारों कहां लयें जाती जो बंदनवारौ।
नगर अयोध्या में सुत भये सजनी राजा महीपति के नाती।
राजा दसरथ के सुत भये हैं रघुकुल जोत उजयार दई बाती।
उजयार दई बाती जो बंदनबारो कहां लयें जाती।

रानी कौशिल्या की कूख जुड़ानी

सब सखियन की शीतल भई छाती।

नगर अयोध्या में दान भये हैं लै लै दान मगन भई सखियां

मगन भई सखियां जो बंदनबारो कहां लयें जाती।

अवध में जहां राम जन्म का उछाह है, वहीं जनकपुरी के निमिकुल में जगत जननी सीता का अवतरण हुआ है। सीता का प्राकट्य होते ही सम्पूर्ण मिथिला नगरी आलौकित हो उठी है। सीता शब्द का अर्थ ही है "सविति इति सीता" अर्थात जो सबको प्रकाश व ऐश्वर्य प्रदान करे वही सीता है। सुख ऐश्वर्य एवं दिव्य आलोक प्रदान करने वाली आदि शक्ति के अवतरण से सम्पूर्ण नगर हर्षित प्रफुल्लित एवं उमंगित है। मंगल वाद्य बज रहे हैं धीरे-धीरे मंगल गीत गाये जा रहे हैं –

अली निमराज को बधाई है बाजे सुर दुन्दुभी सुहाई है।

चली गजगामिनी पुर भामिनी सज उमग जनु सिंध को नदी धाई है।

महल के बिच सौहले बहुभांति सोहे नृपमन जानकी प्रकटाई है।

सिरानी कूंख श्री महारानी जू की अली नर नारियन सुखदाई है।

पृथ्वी के गर्भ से अवतीर्ण जगत जननी जानकी के संस्कार मिथिला नगरी में मिथिलापति जनक कर रहे है वहीं अयोध्यापति दसरथ जगत पिता जगदीश्वर श्रीराम के विविधसंस्कार अयोध्या नगरी में सम्पन्न करवा रहे है। आज दसरथ नंदन का यज्ञोपवीत संस्कार है। जहां त्रिभुवन नायक सकल सुमंगल दायक का ही मांगलिक कार्य सम्पन्न हो रहा हो वहां की अनुपम शोभा का वर्णन किस प्रकार सम्भव है। लोककवि का उल्लास इन शब्दों में प्रकट हुआ है। यथा–

जनेऊ आज पैरत दसरथ के लाल दसरथ घर मोद बढ़े।

तीन पगा में बिरमा बांधें दसरथ घर मोद बढ़े।

ब्रह्म ठाड़े विष्णु ठांड़े त्रिपुरारी दसरथ घर मोद बढ़ै।

जनेऊ आज पैरत दसरथ के लाल दसरथ घर मोद बढ़ौ।

अनुपम शोभा के आगार, प्रभु को निहारते नेत्र नही थकते यह रूप माधुरी ही ऐसी है जिस पर तन मन बलिहारी है। राम का तिलकोत्सव है राम के रूप का वर्णन करते हुए लोककवि ने अपनी भावानुभूति इन शब्दों में प्रकट की है –

सो आज मोर राम जू खों लगुन चढ़त है

लगुन चढ़त है आनन्द बढ़त है।

कानन कुंडल मोरे राम जू खों सोहें

सो गालन बिच मुतियन लर सरकत है।

सो आज रघुवर वसन सजे कुसुभानी सो

भूषण पर आज मो रो हिय हुलसत है।

सो आज जनक भवन ते लगुन जो

आई तो सुन सखी मोरो हिय हुलगत है।

हे प्रिय सखि नृपति दसरथ ग्रह

मंगल लख मोरो हिय हुलसत है।

त्रिभुवन नायक असुर संहारक श्री राम की वरयात्रा की तैयारी हो रही है सभी के मन में अतुलित उत्साह है। भाईयों के हृदय में उमंग की तरंग हिलोरें ले रही है। इस लोकगीत में भाइयों की बारात में जाने की उत्सुकता दृष्टव्य है –

दरसथ के दुबारे एक पीपर का पेड़वा मुतियन करती डार।

ओइ तरे राम की सजत पलकिया लक्ष्मन साजे लीला घोर।

बार बार में बरजोरे लक्ष्मन हमरी बरतियां न जाव।

भूखन मरहों पियासन मरहौ मर जैहों धूप लुबार।

भूख भय सहबे पियास भल सहबे सहि लेवे धूप लुबार।

सीता ऐसी भौजी यहि धर त्याइवे देख आइहें जनक दुआर।

रघुकुल नन्दन श्रीराम आज बनरा बने हैं। गजराज पर सवार रघुनन्दन ऐसे शौभायमान हो रहे हैं, मानो नील घनों के मध्य सुमेरु शिखर से सूर्योदय हो रहा हो। श्रीराम की अनुपम आभा से आलोकित मिथिला नगरी की शोभा एवं आनन्द का वर्णन गीत में दृष्टव्य है –

रघुवंश राज बनरा गज पर सवार आता।

जनु नील धन सुमेरु शिखर भानु उगा आता।

मिथलेश नगरी नारी मन मोद को बढ़ाता।

रनिवास सिन्धु अलियन दृग कुंज को फुलाता।

रतनों के बगले में रास माधुरी दिखाता।

झुकते जुहार लेते छबि अभी को पिलाता।

हंस अनुज तनु बिलोके सखी वचन को सुनाता।

त्रिलोक वशीकरण मोर चित को चुराता।

त्रिलोक के अधिष्ठाता सभी के मन को मोहने वाले दुल्हा श्रीराम और दुल्हिन बनी जगत जननी जानकी की छबि अनोखी है। सभी की अभिलाषायें आज इस युगल रूप को निहार कर पूर्णतः को प्राप्त हुई है। इस अनुपमेय शोभा पर तो सर्वस्व न्यौछावर है –

बने दुल्हा छबि देखौ भगवान की दुल्हिन बनी सिया जानकी।

जैसे दुल्हा अवध बिहारी, जैसो दुल्हिन जनक दुलारी, जाऊं तन मन से बलिहारी।

मंसा पूरी भई सबके अरमान की दुल्हिन बनी सिया जानकी।

ठांड़े राजा जनक के द्वार, संग में चारों राजकुमार, दर्शन करते सब नार

धूम छाई अब डंका निशान की दुल्हिन बनी सिया जानकी।

पंड्त ठांड़े सगुन बिचारें, कोउ कोउ मुख से वेद उचारें,

सखियां करती हैं न्योछारें

माया लुट गई अब हीरा के खान की दुल्हिन बनी सिया जानकी।

सखियां फूली नहीं समावें, दसरथ जू को गारी गावें,

दसरथ खड़े खड़े मुसकावें।

गारी गाती है गीता और ज्ञान की दुल्हिन बनी सिया जानकी।

सिर पर क्रीट मुकुट को धारें, बागों बारम्बार समारे,

होरई फूलन की बौछारे।

शोभा बरनी नई जात धनुषबान की दुल्हिन बनी सिया जानकी।

कहैं जनक दोउ कर जोरे सुनियो सुनियो अवध किसोर,

कृपा करो हमारी ओर

मोसे खातिर न सध है जलपान की, दुल्हिन बन सिया जानकी।

बरनन कहां तक कहैं बजीर, बनरी सिया बना रघुवीर,

कैसे सुन्दर बने शरीर।

ये शोभा है सारे जहान की, दुल्हिन बनी सिया जानकी।

जनकपुरी में राम सीता का विवाह सम्पन्न हो रहा है। समस्त लोकाचारों एवं लोकरीतियों को सम्पन्न कराया जा रहा है। विवाह के अवसर पर वर–वधु के हाथ में बांधे जाने वाले कंकन को सखियों द्वारा हास–परिहास के मधुर वातावरण में छुड़वाने की रीति का परिपालन किया जाता है। इस कंकण की गांठे बड़ी रहस्यमय होती है, जिसे खोलना साधारण नहीं है। कंकन में बंधी वस्तुयें स्वर्ण, हल्दी, सुपाड़ी, जौ, अक्षत, दूर्वा, लोहे के कण आदि अपना प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं। स्वर्ण एवं हल्दी सम्पन्नता के प्रतीक हैं, जौ, देव अक्षत एकता एवं धवलता के प्रतीक हैं, जो पति पत्नी के बीच एकत्व, त्याग, समर्पण एवं विश्वास की दृढ़ता के द्योतक है। दूर्वा की हरितिमा जीवन में समरसता की प्रतीक है। सुपाड़ी संयम का प्रतीक है तथा लोहे के नुकीले कण जीवन पथ पर आने वाली कठिनाइयों के प्रतीक हैं, जो यह सन्देश देते हैं कि जीवन की कंटीली–नुकीली राह पर चलने के लिये लौह जैसी कठोरता एवं दृढ़ता की आवश्यकता है। तभी जुगल जीवन यात्रा सुख सम्पन्नता एवं ऐश्वर्य से परिपूरित हो सकती है। जनकपुर की सखियां श्रीराम के हास–परिहास करते हुये कंकन छोड़ने का कार्य मारीच सुबाहु वध से भी अधिक दुष्कर निरूपित करती है। गीत का भाव दृष्टव्य है –

जो ने होय धनुष को टोरबो, कठिन कंकन गांठ छोरबो।
तुमने जनकपुरी पग धारे, शिव के धनुष टोरकें डारें।
जौ न होय मारीच मद मोरबो कठिन कंकन गोठ छोरबो।
सबरी जनकपुरी की नारी, आखिर सारी लगे तुम्हारी।
जिनको बिन हथयारन मारबो, कठिन कंकन गांठ छोरबो।
वे तो जनकपुरी की नारी, लाला हांसी करें तुम्हारी।
अब तो सीखों सिया खां कर जोरबो कठिन कंकन–

अयोध्या नरेश दसरथ वर वधु सहित अवधपुर आ गये हैं। प्रमुदित मातायें अति उमंगित हो नेगचार कर रही हैं। हृदय में प्रेम का सागर लहलहा रहा है मानसकार तुलसी लिखते हैं –

बन्धुन्ह समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी।
पुनिपुनि सीय राम छबि देखी। मुदित सकल जग जीवन लेखी।

सुन्दर सुलक्षण पुत्र वधु को प्राप्त कर माता कौशिल्या गदगद हो रही है। मर्यादा एवं लज्जा की सीमाओं में आबद्ध पुत्र वधु सीता परम्परानुगामी हैं। प्रातः काल ब्रह्ममुहूर्त में उठकर पूर्ण लोकरीति का अनुपालन कर मातृतुल्य सास से आशीष प्राप्त करती है। गीतकार ने अत्यधिक भावानुपूरित चित्र इन पंक्तियों में उपस्थित किया है।

चिड़ियन के चुंहचुहात प्रात जाग दुलहिन
सास ननद सकुचमान जागी है बड़े भोर
ठुमक ठुमक जाये के कौशिल्या के पांच लागी।
कौशिल्या रानी दैखं असीस अचल सुहाग तेरो।
तोरो सुख बदन देख जिय जुड़ात मेरो, चिड़ियन....

अवध के राजभवन का यह आनन्द अल्प समय में ही विषाद में परिणित हो जाता है। महारानी कैकेई द्वारा महाराज दसरथ के पास धरोहर रूप में सुरक्षित दो वरदान प्रथम राम को चौदह वर्ष का वनवास तथा द्वितीय भरत को अयोध्या का राज्य सिंहासन मांगा जाता है। 'गई गिरामति केरि' से अनुप्रेरित महारानी 'कैकेई सभी अनर्थों एवं अमंगल की सूत्रधार बनती हैं।'

यद्यपि कैकेई का सम्पूर्ण चरित्र साधारण है। देवासुर संग्राम में अद्भुत कौशल का प्रदर्शन कर युद्धरत महाराज की जहां प्राणरक्षा करती है, वहीं संसार में अपयश के कलंक तथा वैधव्य के अभिशाप को शिरोधार्य कर पुत्र मोह में आबद्ध दशरथ के जीवन को राममय बना, उनके मोक्ष कामाध्यम बनती है तथा राम के लिये चौदह वर्ष का वनवास मांग उनके भूलोक में अवतरण के उद्देश्य की पूर्ति की पृष्ठभूमि गठित करती है। श्रीराम इस तथ्य को इन शब्दों में प्रकट करते हैं –

मुनिगन मिलनु विसेषि वन, सबहि भांति हितमोर।
तेहिं मंह पितु आयसु बहुरि, समंत जननी तोर।।

कैकेई के इस त्यागमय रूप की झलक मानस में सर्वत्र श्रीराम के मुखारबिन्द से उच्चरित कैकेई विषयक प्रसंगों में मिल जाती है। यथार्थतः कैकेई का चरित्र निन्दनीय नहीं अपितु अपनी त्यागमयी गरिमा से अभिनन्दनीय है। श्रीराम स्वयं उनके सरल सहज स्वभाव की प्रशंसा सर्वत्र करते हैं। राम के लिए वे सदा सर्वदा प्रथम पूज्य हैं। चित्रकूट में प्रथम वे उनको ही प्रणाम करते हैं–

प्रथम राम मेंटी कैकेई। सरल सुभाएं भगति मति भई।
पग परि कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम विधि सिर धरि खोरी।

रामकथा के तीनों नारी पात्र माता कौशिल्या, कैकेई एवं सुमित्रा अपने चारित्रिक उत्सर्ग में उच्चतम हैं। वे वेदना एवं करुणा की साक्षात प्रतीक हैं। माता कौशिल्या का हृदय पुत्र के चौदह वर्ष वन वन भटकने की कल्पना मात्र से विदीर्ण हो जाता है। पुत्रों सहित पुत्रवधु को वल्कल वस्त्र धारण किये देख उनका रोम–रोम पुकार उठता है। मां की विकलता का अत्यन्त ही मार्मिक चित्रण इस बुंदेली लोकगीत में दृष्टव्य है –

छोड़ी माई मोह जांय हम वन खौ तुमरे खड़े मोरे पग न चलत हैं।
होय आये बान धाम होय हम खों छोड़ो....
जब रथ हांक दीन्ह मधुवन खां दसरथ प्राण तजै इक क्षण मां छोड़ों.
खा के पछाड़ कौशिल्या गिरी अंगना नाजुक शरीर हैस नहीतन मां छोड़ो।

जिस अयोध्या के राजभवन में हास विनोद एवं आनन्द का सिंधु हिलोरे ले रहा था आज वहीं भयावह स्तब्धता छाई हुई हैं सम्पूर्ण नगर शोकाकुल है। मातायें जब बिन पानी की मीन की भांति तड़प रही है। माता की ममता असंख्य स्वरों में पुकार उठती है–

मोरे नगर अयोध्या के राज राम बिन सूने रे माई।
अबै तौ पूता मोरे अंगना फिरत ते, कढ़ गये जोगिया की नाई।
कौन बन हुई हैं री माई मोरे....
अस्सी कौस लो झाड़ी परत है, बंदर रीछ पहाड़कौन
वन हुई है री माई मोरे...
चलो री सखियां जुर मिल चलियें कौशिल्या रानी हाल बेहाल
उन्हें समझाइये री माई मोरे....
अब का समझो अवध की सखियां पति से प्यारे पुत्रके

बैमुख देखौरी माई मोरे....
उलट कै सीता कौशिल्या समझाये मोरी बारह बरस की
उमरिया पार कैसे लागे री माई। मोरे.....

अयोध्या के विकल समाज की मर्मान्तक अभिव्यक्ति ही बुंदेली लोकगीतों में नहीं हुई है अपितु श्रीराम की वनयात्रा के कष्टों, व्यवधानों, ऋषिगण मिलन, चित्रकूट मिलन प्रसंग, राम रावण युद्ध आदि प्रसंगों का भी सजीव वर्णन इन लोकगीतों में प्राप्त होता है। राम गंगा के तट पर खड़े केवट से गंगा पार हेतु नौका लाने का आग्रह कर रहे है, परन्तु केवट बिना पग प्रक्षालन किये उन्हें नौका में चढ़ाने के लिये तैयार नहीं है। इस प्रसंग को बुंदेली लोकगीत में अति सुन्दर रूप में मुखरित किया गया है। जो प्रभु की भक्त वत्सलता एवं भक्त के अटल अनुराग का प्रतीक है–

कहत निषाद सुनो रघुराई तुमसे न कछू लैहैं उतराई
बिन पग धोये चढ़न न दैहों तर जैहै मोरी काठ की नाव।।
पांव की रज से गौतम नार अहिल्या तारी
तर जैहें मोरी काठ की नाव तो और नहीं मोर कूर कवारा।
काठ कठौता गंगा जल पानी घिस घिस हरि के चरन पखारे।
चरन पखार चरणामृत लीनों सबरे सफल परिवार पियाये।
आपन तरे सकल कुल तारे और सकल परिवार तरायो
तुम हम प्रभु अब एकई जाति दो तुमसे न कुछ लैहों उतराई।
क्रोधित बानी लखन उठ बोले तू अपनी हमें जाति बनाई।
मैं तो प्रभु नदी नारे को खिवैया तुम प्रभु भौ सागर के तरैया।
सीता उतारी हाथ की मनि मुदरी लेवो केवट अपनी उतराई
जब प्रभु वन से तुम लौटो जो कछु दैहो लैहो सीस चढ़ाई।

राम वनगमन पिता का गोलोकवास भरत के हृदय पर वज्राघात करता है। सभी अनर्थों की जड़ स्वयं को स्वीकार कर के आत्मग्लानि से भर उठते हैं। धर्मधूरीण भरत श्रीराम को मनाने चित्रकूट पहुंचते हैं। इस प्रसंग को लोकगीत में इस प्रकार मुखरित किया है–

लौट भरत घर जाव भाग ऐसे ही बदी।
बदी करावे पुत्र बदी ले आये धावे।
बदी नरक के जाय बदी बैकुण्ठ पठाये जी
बदी बढ़ाइ ने हरे उर बदी लेन को जाय
जहां पनछी को गबन नहीं, तहां बदी ले जाय।

भवितव्यता प्रबल है। इसी चक्र में फंसा, प्राणी निरन्तर भटकता रहता है। श्रीराम भवितव्यता को सहर्ष स्वीकार कर रघुकुल रीति पर अनुगमन करना चाहते हैं। कर्तव्य मोह भ्रातमोह से गुरुतर हैं भरत भी अग्रज आज्ञा के अनुगामी है। पितृतुल्य अग्रज की चरण पादुकायें ही उनका सबसे बड़ा अवलम्ब है। चौदह वर्ष की अवधि को पार करने का अवलम्ब उन्हें मिल गया है। प्रेममूर्ति भरत प्रभु की चरण पादुकाओं को मस्तक पर धारण कर अयोध्या लौटते हैं–

राम ले वन को जाय भरत घर को न लौटे।
भर भर लोचन नीर उमग नैनों में ल्याये जी।
बालापन के हिले मिले अब बिछुरे दुःख होय।
अब के बिछुरे कबै मिलो भैया अब गत कैसी होय।

भरतधर्म मूर्ति है। अग्रज की आज्ञा का अनुपालन अनुज का परम कर्तव्य है तब फिर वे कर्तव्य विमुख कैसे हो सकते है? गीतकार के शब्दों में –

लौट भरत घर जाव खुसी आनन्द से रहियो।
पालागें परणाम मात तीनों से कहियो।
अवधपुरी रक्षा करो और दिल को आनन्द होय।
फैरो पीठ सिधारो भैया छोड़ो हमारे मोह।

बुन्देली लोकगीतों में भरत द्वारा की गई कैकेई की उपेक्षा, भर्त्सना एवं तिरस्कार का चित्रण मिलता है। यथा –

लौट भरत घर जाय मात से करी लड़ाई।
बिछुरे राजा राम सिया और लक्ष्मन भाई।
जे कंचन के महल बने हैं माया मोल अमोल।
हो रहे तो कौन करे जो राज।
भाग सें कहे कौसल्या माय
हमई तो तुमको जाने हमें छोड़ कहां जाव।
हमई तो तुमसों लागे जी कुल में एक कपूत
उर सबरे कुल के आधार राजा दसरथ ने प्रान तजे।
सो अवध भई बेहाल जू लौट भरत घर...

वनमार्ग पर जाते राम, लक्ष्मण एवं सीता की वनांचलों में निवास करने वाले ग्रामीणजनों से भेंट होती है। वे जिस ग्राम से गुजरते है लोग अपलक इस अनुपमेय सौकुमार्य एवं रूप माधुरी को निहारते रह जाते हैं। वे इन विभूतियों को अपने नेत्रों से विलग नहीं करना चाहते हैं। जन्मजन्मांतर के सुफल आज साकार हुये हैं। नयनों की सार्थकता आज सिद्ध हुई है इस विश्वमोहिनी मूर्ति के दर्शनका लाभ वे सतत लेना चाहते हैं। कुछ ऐसे ही भावों को अभिव्यंजित करता यह गीत दुष्टव्य है –

जान न देवी हा पिया हो इने जान न देवी हो।
गंगा तट पे तीन मूर्ति जिनमें तपसी दो
अरे जिनके संग परम सुन्दरी रूप आगरी हो। पिया...
ठाड़ी सुहागन अरज करत है सुनो सुहागल हो।
कौन जो कहिये पति तुम्हारे कौन देवरा हो। पिया...
गोरे बदन के लक्ष्मन दूवरा देवरा हमारे हो।
माथे जिनके मुकुट बिराजे बेई पति हमारे हो। पिया...
आज की रेन रहो मोरे प्यारो भोर पठैहो हो।
भोर भए धाम लगे काया कुमल्यावे निग गलियां को।
आज बसे नियरे नियरे काल बसे रे दूर
तुलसीदास आस रघुवर की लौट मिलेंगे हो। पिया...

असत्य पर सत्य एवं अधर्म पर धर्म की विजय का प्रतीक राम रावण युद्ध रामकथा का प्रमुख सोपान है। रावण वध से पूर्व राम लक्ष्मण का अनेक महारथियों से युद्ध होता है जिसमें लक्ष्मण मेघनाथ युद्ध दो अपराजेय योद्धाओं का अविस्मरणीय समय है मायावी व अनीति पथ का अनुगामी मेघनाथ देवताओं द्वारा, प्रदत्त शक्तियों का स्वामी है। लक्ष्मण पर उसके द्वारा प्राणाघातिनी शक्ति छोड़ी जाती है, जिसके लगते ही लक्ष्मण अचेत हो जाते हैं। भाई

की इस दशा को देख राम व्याकुल हो उठते हैं। सदा सर्वदा छाया की भांति साथ रहने वाला भाई आज भूमिशायी है राम का करुणा विगलित हृदय पुकार उठता है –

गोद लय भाई सोचत राम
माता सुमित्रा से कहा बताइये
जिनके सुता हम वन में गंवाये सोचत राम
को मोरी चौकी का पहरा लगावै
कहाँ पावी लखन तुमारी चतुराई। सोचत राम।
लंका से उन वैद्य बुलाये वैद्य बताये संजीवन बूटी।
सोचत राम।
बाँट प्याई श्री लखन लाल खां लछमन भाई उठे धहराई।

राम की ऐसी ही विकलता को चित्रित करता यह गीत जिसमें राम हनुमान से संजीवनी बूटी लाने का आग्रह करते हैं। गीत दृष्टव्य है –

शंका हो रई लखन जू के प्रान की,
हमें फिकर हनुमन की।
देखौ लछमन मोरो भाई, जूझे मेघनाथ से जाई,
उनने धनुष बान चलाई।
लगतन उन्हें मुरछा आई, सुध नइयां उने अपने प्रान की।
अब तुम उत्तर दिस को जावो, हनुमत मूर संजीवन लाओ
प्यारे अब न देर लगाओ
ऊगन पावे न किरन भैया बान की। हमें...
नख से पर्वत लेत उठाई,
अब तो करलई बहुत एक ज्ञान की।
ल्याये मूर संजीवन प्यारे, जिन पर हीन लगे उजियारे।
देखत बान भरत ने मारे, लगतन हरि के नाम पुकारे।
हो गई धौखे में मेर पिरबान की। हमें फिकर हनुमान...
गुन गुन गावे सब संसारी, कह दई मुन्नी लाल पुजारी,
भूल माफ करियो हमारी; चले जइयो गैर गुरु ज्ञान की।

मेघनाथ वध के पश्चात् उसकी पत्नी सुलोचना के सती होने.का प्रसंग अत्यधिक जागरूक है। बुंदेली लोकगीतों में इस प्रसंग को अत्यधिक मार्मिक रूप में चित्रित किया है। मेघनाथ के कटे हाथ से प्राप्त सूचना के उपरान्त सुलोचना राम के दल में सती होने के उद्देश्य से पति का शीश लेने पहुंचती है। गीत दृष्टव्य है–

पति मोरे की समर में जूझ गये मन दोवर परवाना भेजे सुलोचन.
मोरे पति खां लक्ष्मन मारो खाय के पछाड़ गिरीहै डोला से जूझ गये
साज पालकी चली है सुलोचना रामादल में आई राम लखन दोनों रण में बैठे
खाय के पछाड़ गिरि है डोला से जूझ गये। पति.....
इहो तुम्हारे कौन काम हैं रामादल में मां आई असुर तुम्हारे रावण गबी। नित उठ लंका में लेत लड़ाई जूझ गये।
तीन लोक के नायक सुन कै रामादल में आई मोरे पति का सीस दिवा देयो।
लये के सीस सती हुई जाइ पति मोरे रे...
चंदन लकड़ी कटाई सुलोचन सरजू सर रचवाये चुंअ चुंअ
आंसु गिरे धरनी मां भींजत चीर दक्खिन दर आई। पति मोरे....

श्री राम की उदारता कृपालुता व हृदय की विशालता की लीला ही निराली है। शत्रु पुत्र के शव को भी वे सम्मान एवं आदर सहित शत्रु पत्नी को हस्तगत करते हैं। भक्त वात्सल्य भगवान की आचरण संहिता अनुपम एवं अद्भुत है।

मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु राम का चरित्र श्रवण कालिदास के कुचक्र में फंसे मानव को मुक्ति प्रदाता है। सीता राम की आदर्शानुप्रेरित प्रेरणास्पष्ट लीलायें आज की उपभोक्तावादी संस्कृति, के व्यामोह में घिरे मानव को दिशा निर्दिष्ट करने में सहायक हैं सीताराम की कहानी आज के परिग्रह लिप्त रागद्वेष के दलदल में फंसे स्वार्थी एवं कर्तव्य विमुख प्राणियों को त्याग, समर्पण, अपरिग्रह एवं नैतिकता की शिक्षा प्रदान करती है। मानवीय मूल्यों के ह्रास के इस युग में मानवता की उपासना मे निरत राम सीता की लीलायें मननीय एवं अनुकरणीय हैं राम सीता की कहानी युग युगान्तर तक जनमानस को लुभाती एवं रिझाती रहेगी। लोककवि के शब्दों में यही अनुगूंज सुनाई दे रही है –

सीताराम की कहानियां नीकी लगती सीता राम की कहानियां
नीकी लगती
दरस घर अवतार लियो है नाम धरै रघुराई
राजपाट तज बनको निकरे छोड़े बाप मताई
संग में लीन्हीं न उड़निया नीकी लगती सीता राम...
केवट के दो वचन निमाये चित्रकूट में आये
भरतराज को दीन्ही उखाड़ आगे चरण बढ़ाये
मारी मृगा को कमनिया नीकी लगती सीता राम....
दसकंधर सीता हर लीन्हो रहे न लछमन भाई
राम लखन ढूंढन को निकरे बोले गीधजटाऊ
गयी हैं लंका को दुल्मियां नीकी लगती। सीता राम....

– ३०, तमराई मुहल्ला, छतरपुर □

होली गीत –

होरी–होरी कहौ लाला

– वीरेन्द्र सिंह परमार 'वीर'

मोसें होरी न खेलौ सुनौ लाला
लग जैहै नजरिया दिखौ लाला
मैं अलबेली सरस नवेली, मोहे छुइयो न तुमकों कसम लाल।
अंग–अंग हाढ़े रखवारे, मोरे बलमा सगुनियाँ सुनौ लाला।
जौं कहुँ इत्ती चित्ती लागै, भौरइँ हका मचै लाला।
दूरइँ सें रोली तुम फैंकौ, होरी–होरी कहौ लाला।
'वीर' अबीर चीर सें छेंको, हँसतइँ मुरकी मन माला।।
मोसें होरी.........।।

– ग्राम उटियाँ, पोस्ट धरौन
महोबा उ.प्र.
□

पहेली संसार

– संकलनकर्ता : अम्बिकेश पटेल एवं ऋषिकेश पटेल

बुन्देली संस्कृति एक समृद्ध संस्कृति है। इसका साहित्य लिखित एवं मौखिक दोनों रूपों में फलफूल रहा है। जहाँ लिखित साहित्य पुस्तकालयों एवं बुंदेली साहित्यकारों के पास संकलित है, वहीं मौखिक साहित्य सम्पूर्ण बुंदेलखंड के जनमानस में छाया हुआ है। यह पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होता चला आ रहा है। हमारा प्रयास यह है जो पहेलियों के रूप में बुंदेली साहित्य जनमानस में बिखरा है उसे संकलित किया जाये कहीं ऐसा न हो कि हमारे बुजुर्गों के साथ इन पहेलियों का भण्डार भी लुप्त हो जाये।

१. पेड़ न पत्ता, ऊपर छत्ता – अमरबेल

२. ताला मा गोपाला नाचे – पुड़ी

३. टेढ़ी–मेढ़ी लकड़ी पहाड़ चढ़ी जाय – धुआँ

४. भरे कुआँ मा कण्डा उतराँय – नैनू

५. एक खड़ी, एक पड़ी, एक छमाछम नाच रही – रोटी

६. एक लरका की टेढ़ी नाक – चना

७. एक लरका का पेट फटो – गेहूँ

८. एक लरका खेत में करया बाँधे डरो – चारे का पूरो

९. हारै गये, पतारे गये, मार कै गूलर टांगे गये – ताला

१०. टेढ़ी–मेढ़ी बांसुरी बजाने वाला कौन,
सीता गई माइके, लौटाने वाला कौन – नदी

११. पन्द्रह फुट की एक टाँग है, तीन रंग की चोली।
बीच पेट में चक्र है मेरे, बूझो एक पहेली। – तिरंगा झंडा

१२. हमने देखा ऐसा बन्दर, जो उछले पानी के अन्दर– मेंढक।

१३. अगर कहीं मुझको मिल जाता, बड़े प्रेम से तोता खाता।
बच्चे बूढ़े यदि खा जाते, व्याकुल होकर जल मंगवाते।।
– हरी मिर्च

१४. तीन दिन में जवान हो, और तेरह दिन में बूढ़ा।
तीन दिन वह कैद रहे, और चौथे दिन हो पैदा। – चन्द्रमा

१५. ऐसा इक फुटबाल मंगा दे, जिसमें हो यह सारा।
शरबत, मिसरी, साग, चबैना, और मकरी जारा – तरबूज

१६. नाए गई माँय गई, चोखरियन से टाँग गई – ताला

१७. नाए गई माँय गई, लाल बीजा छोड़ गई – आग

१८. बीन बजाता आता हूँ, खून पिया उड़ जाता हूँ – मच्छर

१९. छम्मक छम्मक मेरी चाल, सूपे जैसे मेरे कान।
लम्बे लम्बे मेरे दो दाँत, बतलाओ मेरा नाम – हाथी

२०. आसमान में रहता हूँ, दिन में चमका करता हूँ।
किरणों से गरमी देता हूँ, बताओ मैं कौन हूँ – सूर्य

२१. मै चलता तो वह भी चलती, मैं रुकता तो वह भी रुकती
– परछाई

२२. काठ के गिलाफ में बैठी है सूर्य रंग
जिगर इनका देखिए दूध का सा ढंग। – बादाम

२३. बाबा बैठो इस घर में, पाँव पसारे उस घर में। – दीपक

२४. एक थाल मोतियों से भरा, सबके सिर पर औधा धरा।
चारो तरफ वह थाल फिरे, उससे मोती एक न गिरे।
– आकाश और तारे

२५. हरा शरीर हरी है डाली, गोरी खाए चाहे काली।
इसकी बात निराली, हरा खुद, पर देता है लाली। – पान

२६. चढ़े नाक पर पकड़े कान, बोलो लोगों कौन शैतान
– चश्मा

२७. आगे आगे बहना आई, पीछे–पीछे मैया।
दाँत निकाले बाबा आए, बुरका ओढ़े मैया। – भुट्टा

२८. जिसको भी मिल जाती है, मन उसका खिल जाता है।
मोह लगन और हिम्मत पर, बस उसका दिल आता है
– सफलता

२९. सिर पर पत्थर, मुँह पर उंगली।
पैर नहीं, पर बैठे मार कुंडली – अंगूठी

३०. एक पहेली मैं कहूँ, सुन ले मेरे पूत।
विन पंखों के उड़ गई, बाँध गले में सूत – पतंग

३१. दो अक्षर का मेरा नाम, आता हूँ खाने के काम।
उलटा करो तो नाच दिखाऊ, सबके मन में भाव जगाऊं।
– नाचना

३२. चोर नहीं, डाकू नहीं, नहीं कहूं की रानी।
बत्तीस सिपाही घेरे रहते, तन मन पानी पानी – जीभ

३३. देने से घटती नहीं, करिए जी भर दान।
छीने से छिनती नहीं, देते बढ़ता मान। – विद्या

३४. एक नारी ने अचरज किया, साँप मारि पिंजरे दिया।
ज्यों ज्यों साँप ताल को खाए, सूखे ताल सांप मर जाए।
– जलता हुआ दीपक

३५. हरी डिब्बी, पीला मकान, उसमें बैठे कालू राम।
– पपीते के बीज

३६. तीन अक्षर का मेरा नाम, गरमी में मैं आती काम।
प्रथम बिना राही कहलाऊँ, बिना अंत के नाश कराँऊ।
– सुराही

३७. राजा रानी सुनो कहानी, एक घड़े में दो रंग पानी
– अंडा

३८. हूँ मैं तुम्हारे चारों ओर, दिखे न मेरा एक भी छोर।
मेरे बिन तुम जी न पाओ, नाम बताओ, नाम बताओ
– हवा

३९. धूप लगे, पर सूखे नहीं, छाँव लगे कुम्हलाए।
उल्टी इसकी बात, हवा लगे मर जाए – पसीना

४०. तीन अक्षर का मेरा नाम, आता हूँ खाने के काम।

अंत कटे बन जाऊँ खग, प्रथम कटे हो जाऊँ कम।

— बाजरा

४१. एक छोटा सा राजकुमार, कपड़े पहने साठ हजार — प्याज

४२. मेरा ऐसा धुआं, जो सबके मन को भाए।
गंध मेरी ऐसी, जो घर आंगन महकाए — अगरबत्ती

४३. हरी–हरी मछली, हरे–हरे अण्डे।
जल्दी से बताओ, नहीं तोड़ेंगे डंडे — मटर की फलिया

४४. एक प्लेट में दो अण्डा, एक गरम एक ठण्डा।

— सूरज चन्दा

४५. अलमारी में चिरैया नांचे — जीभ

४६. कुत्ता की पूंछ मेरे पास, कुत्ता भूखे इलाहाबाद — बंदूक

४७. हारे गये पतारे गये, लाल पथरिया गाड़े गाए। — आम

४८. हाथ नहीं, पैर नहीं, द्वार खिड़कियाँ खोल दे — हवा

४९. तीन अक्षर का मेरा नाम, उल्टा सीधा एक समान

— डालडा

५०. इतनी बड़ी हुइ गयो, या टोला से वा टोला न गयों।

— दीवार

५१. हाथ नहीं पैर नहीं, तन नहीं रेखा। — जूं–जूं

५२. छोड़ छोडत्र हमें मम्मी बुला रई। — काँटा

५३. चुनू बादी नटिया, जोत आई पटिया — सुई

५४. एक गाँव में ऐसी रीत, आधे उलटे आधे सीध — खपरा

५५. एक गाँव में ऐसा हुआ, आधा बक्का आधा सुआ — मूली

५६. मैं गोरी मेरे बच्चे काले, मुझे छोड़ मेरे बच्चे खाले—लायची

५७. टेढ़ी मेढी लकड़ी टेढ़ा द्वार, घुस गया जोगी मारे गुहार

— बिच्छू

५८. एक सुअर के ३२ अण्डे, गुमछव सुअर बिखर गये अण्डे।

— बेर

६०. ऐत कैत काई, बीच में मिठाई — कलींदा

६१. बड़े सबेरे उठती हूँ मैं, सैर गगन की करती हूँ मैं।
आलस सुस्ती तनिक न करती, हरदम ही कुछ करती हूँ मैं।

— चिड़िया

६२. लगता है वह भोला–भाला, पर है बड़ा आग का गोला।
सब पर रोब जमाए, जोरो की गरमी फैलाए — सूर्य

६३. हरी थी मन भरी थी, लाख मोती जड़ी थी।
राजा जी के बाग में, दुशाला ओढ़े खड़ी थी। — भुट्टा

६४. नीचे पानी ऊपर आग, मुँह से निकला काला नाग— हुक्का

६५. लंबी पूंछ पीठ पर रेखा, दो–दो हाथों खाते देखा— गिलहरी

६६. बचपन में रही हरी, हुआ बुढ़ापा लाल।
जिसने मुझे याद किया, उसका बिगड़ा हाल — मिर्च

६७. पानी का मटका, पेड़ पर अटका।
हवा का हो झटका, उसको नहीं खटका — नारियल

६८. काठ का एक घर बनाया, जल में दिया उतार।
सबको अपने दिल में बिठाया, कर दिया पार। — नाव

६९. चार अंगुल का पेड़ है, सवा मन का पत्ता।
फल लगे अलग–अलग, पक जाए इकट्ठा। — कुम्हार का चाक

७०. गोल गोल सा चेहरा, पेट से रिश्ता गहरा — रोटी

७१. पहले था मैं भोला भाला, तब सहता था मार।
अब पहनी है लाल चुनरिया, अब न सहूँगा मार।

— मिट्टी का घड़ा

७२. रात होने से पड़ने लगी, मोती सी दमकने लगी।
सूरज से उड़ने लगी, छूने से वह मरने लगी। — ओस

७३. दो किसान लड़ते जांए, उनके खेत बढ़ते जाएं।

— ऊन–सलाई।

७४. कहलाती है रात की रानी, आग जले, टपकाती पानी।

— मोमबत्ती

७५. मैं पैरों के नीचे आती, और रास्ते में बिछ जाती।
उठा नहीं तुम मुझको पाते, सोचो जल्दी क्या हो बताते।

— छाया

७६. धरती में मैं पैर छिपाता, आसमान में शीश उठाता।
हिलता हूँ पर चल नहीं पाता, पैरों से हूँ भोजन खाता।

— पेड़

७७. तीन अक्षर का मेरा नाम, सिर के ऊपर मेरा स्थान।
अंत कटे तो पग बन जाऊँ, मध्य कटे तो पड़ी रहूँ।

— पगड़ी

७८. पहाड़ है पर पत्थर नहीं, नदी है पर जल नहीं।
शहर है पर जीव नहीं, जंगल है पर पेड़ नहीं।

— नक्शा

७९. दिन में सोये, रात में रोये, जितना रोए, उतना खोय।

— मोमबत्ती

८०. दो दुबले कोल्हू के बैल, दोनों पड़े काँच की जेल।
चक्कर बारह मील लगाएं, फिर भी जेल से भाग न पाएं।।

— घड़ी की सुइयां

८१. सोने की सलाई ब्रिज मोहन की बनाई।
टूटे ना फाटे जनम भर खटाई। — गोदना

८३. अटक सटक सोने कीसटक भड़या आये उठा ना पाये।

— सांप

८३. सोने की सलाई भींत में अड़काई — नांक

८४. एक फूल है काले रंग का सिर पर सदा सुहात।
तेज धूप में खिल–खिल जाता, छाया में मुरझात।।

— छाता

८५. तीन पाँव है, हाथ नहीं, तन है बड़ा कठोर।
आती जाती कही नहीं, खड़ी रही नितठोर — तिपाई।

८६. एक हथेली तीन का गुच्छा, इसमें एक सिकंदर है।
ये सखि मैं तुझसे पूछौ, दो बाहर एक अन्दर है। — डोली

८७. पैरों में जंजीर पड़ी है, फिर भी दौड़ लगाए।
पगडंडी पर चले झमके, गाँव–गाँव पहुँचाये। — साइकिल

८८. लोहे का मैं ऐसा हल, बटन दबाओ देता चल।
जान फोरलिच है निर्माता, खेती की मैं उपज बढ़ाता।

— ट्रैक्टर

९९. बीमार नहीं रहती, फिर भी खाती गोली।
बच्चे बूढ़े डर जाते, सुनके मेरी बोली। – बन्दूक

९०. काटते हैं, पीसते हैं, बांटते हैं पर खाते नहीं।
– ताश के पत्ते

१००. छोटा सा फकीर, उसके परी लकीर। – गेहूँ

१०१. पानी जैसा मेरा रूप, सुखा न पाये मुझको धूप – पसीना

१०२. ऊपर का हिस्सा खाकर, बीच का हिस्सा ठुकराते हैं।
सर्दियों में मुझे न पाकर, तुम उदास हो जाते हो – आम

१०३. आते–जाते दुख देते हैं, बीच में देते हैं आराम।
कड़ी नजर रखना है इन पर, सदा सुबह और शाम।– दाँत

१०४. कड़ी धूप में पैदा होता, छाव देख मुरझाता।
मै हूँ कौन बताओ भइया, हवा लगे मर जाता।– पसीना

१०५. थल में पकड़े पैर तुम्हारे, जल में पकड़े हाथ।
मुर्दा होकर भी रहता मैं, जिन्दा लोगों के साथ। – जूता

१०६. एक खड़ी है, एक पड़ी है एक छमाछम नाच रही है।
– चकला, बेलन और रोटी

१०७. कागज का घोड़ा, धागे की लगाम।
छोड़ दो धागा, तो करे सलाम।। – पतंग

१०८. जो छूता है खुश, उनके मुख में रहती हूँ।
जो छूते हैं दुख, उनके मुख से जाती हूँ। – हंसी

१०९. दो अक्षर का मेरा नाम, आता हूँ मैं सबके काम।
चोरों से मै रक्षा करता, अब तो बताओ मेरा नाम।।– ताला

११०. टेढ़ी–मेढ़ी गलियाँ, बीच में कुआँ – कान

१११. फले न फूले, डलियन टूटे – राख

११२. जारी जारिया जौहरी, पचनेही सिर मैर।
भाँवर पुरवा भुज धरा, बसै सुरीली ठौर। – सुलोचना

११३. तारा तो है सही, बे बादल सिर लाग।
तीन लोक ढूढहौ नही, है शंकर के पास – तारा

११४. बैठ जा मेरे यह मा। – बाण

११५. छूछे कुवाँ मुरागै बोले। – दोहनी

११६. एक घर के कमरे हजार, हर कमरे में पहरेदार।
कैसा अजूबा घर बनाया, न मिट्टी न चूना लगाया।
– मधुमक्खी का छत्ता

११७. मध्य कटे तो कम हो जाऊं, अंत कटे तो कल हो जाऊँ।
आती हूँ मैं कितने के काम, बताओ क्या है मेरा नाम
– कंघी

११८. हरा चोर लाल मकान, इसमें बैठा काला पठान – तरबूज।

११९. एक माँ के दो बेटे, दोनों रहते संग।
एक चले और एक रुके, फिर भी दोनो संग – चक्की

१२०. चार पांव पर चल न पाऊँ, बिना हिलाये हिल न पाऊँ।
देती है हुँसबको आराम, बोलो क्या है मेरा नाम।। – कुर्सी

१२१. तीन खूट की तितली, नहा धो के निकली – समोसा

१२२. छोटी–सी छोकरी लाल बाई नाम।
पहने वह घाघरा, एक पैसा दाम – लाल मिर्च

१२३. लाल डबिया पीले खाने, उसमें रखे मोती दाने। – अचार

१२४. गोल–गोल घर है मेरा, हर कमरे में रस।
यो ही मुँह में रखोगे, हो जाओगे मस्त।। – जलेबी

१२५. अनपढ़ लोग मुझे न भाते, पढ़े लिखो से करती प्यार।
हाथ पकड़कर चलू तुम्हारा, अब तो बतलाओ मेरा नाम।
– कलम

१२६. लाल–लाल पर रंग नही, गोल–गोल पर गेंद नही।
आता हूँ खाने के काम, झट बूझो तो मेरा नाम।– टमाटर

१२७. करता है जो बुद्धि विकास, बिखराता है ज्ञान प्रकाश
– अखबार।

१२८. जी भरकर हिन हिनाता हूँ, दाना भूषा खाता हूँ।
तबड़क–तबड़क चलता हूँ, बताओ मैं कौन हूँ। – घोड़ा

१२९. गुप चुप गुप–चुप आती हूँ, दूध मलाई खाती हूँ।
चूहे चटकर जाती है, मौसी वह कहलाती है। – बिल्ली

१३०. टिक–टिक–टिक–टिक करती हू, समय बताती रहती हूँ
– घड़ी

१३१. तीन नीबू दो बेटा एक बाप न कटे न फटे।
तीन जनन बराबर–बराबर बांटो।
– दो बेटा एक बाप को एक–एक बांटेंगे।।

१३२. कांटो से निकले, फूलो से उलझे।
नाम बताओ पहले सुलझे। – तितली

१३३. दिखता है लड्डू, पर होता है गुलगुला सा।
जाते ही घुल जाता, पानी का बुलबुला सा।। – ओला

१३४. कद के छोटे कर्म के हीन
बीन बजाने के शौकीन – मच्छर

१३५. हरी–हरी मछली के हरे – हरे अण्डे।
जल्दी से बूझिए बरना पड़ेंगे डंडे।। – मटर की फल्ली

१३६. अगल–बगल घास फूस, बीच में टबेला।
दिन भर तो भीड़ भाड़, रात में अकेला। – कुआं

१३७. तन काला पर कौआ नहीं, सिर बड़ा पर हाथी नहीं।
कमर पतली पर चीता नहीं, पेड़ पर चढ़ती पर बंदरिया नहीं।
– चींटी

१३८. न मारा न खून किया, बीसो का सिर काट दिया – नाखून

१३९. अब तीन बिपत का साथी, युद्ध भूमि में आता काम।
कुल हरने वाला है सारा, शीघ्र बताओ इसका नाम।
– धीरज

१४०. ऊने टिकुरा गलगल बियान, उसकी तेली बड़ी मिठान।
– शहद

१४२. काली धाम में रहता है लाल पानी पीता – जुआं

१४३. नारियल फोड़ो पानी बहो – नदी

१४४. दिखने में डण्डा खाने में मिठाई।
यह बात मेरी माँ ने बताई। – गन्ना

१४५. एक प्लेट में बारह रसगुल्ले। – घड़ी

– शास. हाई स्कूल, बमनौराकलां, जिला छतरपुर

टीकमगढ़ नगर के विस्मृत संस्कृत रचनाकार

— पं. कपिल देव तैलंग

ओरछा से राजधानी परिवर्तित होकर ''टेहरी'' ग्राम के समीप निर्मित नवीन राजधानी में संचालित हुई जो पहले टेहरी के नाम से ही अभिहित होती रही। अंग्रेजी राज्य में भारत के पुराने नक्शों में 'टेहरी का ही उल्लेख मिलता रहा। बाद में इसे टीकमगढ़ नाम दिया गया। इस नामकरण के दो कारण प्रतीत होते हैं। चूंकि ओरछा से राजधानी परिवर्तन करने वाले तत्कालीन शासक महाराजा विक्रमादित्य थे। वे स्वयं तथा ओरछा के समस्त पुरुष राजन्य वर्ग भगवान् श्रीकृष्ण के उपासक थे और आज भी हैं। अतः विक्रम या त्रिविक्रम से अपभ्रंशित 'टीकम' यह जहाँ महाराजा के आराध्य (श्रीकृष्ण) का संकेत देता है वहाँ त्रिविक्रम में अस्पष्ट रूप से ही सही 'विक्रम' नाम महाराजा से भी संकेतित रहा अतः टीकम का गढ़ टीकमगढ़ नाम समीचीन माना गया।

एक अन्य कारण यह भी है टीकम के साथ रणछोड़ जुड़ा रहता है रणछोड़ इसलिए कि ''जरासंध के आक्रमण से व्रजमण्डल की रक्षार्थ भगवान् ने मथुरा राजधानी छोड़ दी थी एवं द्वारिका में नव्य राजधानी स्थापित की थी। इसी प्रकार महाराजा विक्रमादित्य ने ओरछा से राजधानी बदलकर टेहरी या टीकमगढ़ में बसाई थी अतः टीकमगढ़ नामकरण संभावित लगता है।

यह भूमिका लिखने का कारण यह भी है कि राजधानी बदलने के साथ ओरछा में प्रचलित साहित्यिक सांस्कृतिक गतिविधियाँ परिवर्तित होकर टीकमगढ़ में संचालित होती रही। इससे संस्कृत भाषा भी अछूती नहीं रही।

यह तो विदित है कि ओरछा में संस्कृत भाषा समाचरणीय रही है 'मित्रमिश्र' द्वारा रचित संग्रहीत 'वीर मित्रोदय' संदर्भ ग्रन्थ सहस्रवधि श्लोकों में संकलित एक महान ग्रंथ है। यह संस्कृत भाषा में ही विरचित है और मित्र मिश्र ने अपने आश्रय दाता महाराज बीरसिंह जू देव (प्रथम) को सादर समर्पित किया था तथा 'वीर' नाम से भी नहीं चूके। संरक्षक वीर और संग्राहक रचयिता 'मित्र'। मित्र अर्थात् सूर्य और सूर्य का उदय। वीर+मित्र+उदय।

इस समर्पण से तत्कालीन महाराजा की संस्कृत प्रियता संस्कृत रचनाकारों को समाश्रय आदि का प्रमाण प्रतिपादित होता है। स्वयं कवि केशवदास के पिता श्री काशीनाथ ने ज्योतिष ग्रंथ। 'शीघ्रबोध, संस्कृत में ही रचा था।

स्वयं कवि केशवदास ने अपनी संस्कृत अनभिज्ञता के प्रति हीनता स्वीकारी थी। स्वयं कवि केशवदास के अनुसार उनके कुल में। ''भाषा बोल न जानही जिनके कुल के दास।'

स्वयं की वेदना मुखर की है।

यह संस्कृत ज्ञान एवं रचना की परम्परा टीकमगढ़ में भी संचालित रही और टीकमगढ़ में भी संस्कृत रचनाकार जन्म लेते रहे।

यहाँ के राजगुरु तैलंग परिवार में पं. दामोदर दैव तैलंग हुए जिन्होंने हिन्दी छन्दों में संस्कृत की रचना की। कवि बिहारी की 'बिहारी सतसई' के दोहों का संस्कृत भाषानुवाद पं. दामोदर देव ने किया जो किसी समय तक सुरक्षित रहा पर अब अप्राप्त है। इसका उल्लेख भारतेन्दु ग्रन्थावली भूमिका में कही।

पं. दामोदर जी द्वारा रचित बिहारी सतसई के एक दोहा कुछ इस प्रकार स्मरण आ रहा है।

''मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय,
जातन की झांई परै स्यान हरित दुति होय।

संस्कृतानुवाद (दोहाछन्द में)

अपनय भवबाधा हरण—राधे त्वं कुशलासि।
हरिरपि धरति हरित् द्युतिं यदि माधव मुपयासि।।

संस्कृतानुवाद के स्मरण में कदाचित कोई शब्दों का हेरफेर संभावित हो सकता है, तैलंग परिवार के ही पूर्व पुरुष पं. वृन्दावन देव हुए। वे भी संस्कृत के अच्छे रचनाकार हुए। उन्होंने भी हिन्दी छन्दों को संस्कृत में प्रत्युत्तकर संस्कृत के छन्द भण्डार को भरने का प्रयत्न किया। उन्होंने ''राजजन रंजनामिधानम्'' ग्रन्थ की संस्कृत में ही रचना की। यह ग्रंथ साहित्य ज्योतिष एवं आयुर्वेद इन विषय त्रयी पर समाधारित है। पं. वृन्दावन देव महाराज तेजसिंह के इतने प्रिय एवं निकटस्थ थे कि उन्होंने अपना नाम भी 'महाराज तेजसिंह' के अनुकरण पर 'पं. तेजदेव' नाम रख लिया था। यह था 'गुरु शिष्य' परम्परा का अद्भुत समागम और समादर भी है। मेरे स्मृति पटल पर 'राजजन रंजनामिधानम्' का मंगलाचरण का एक संस्कृत दोहा आज भी अंकित है जो 'गणेश वन्दना' विषयक है।

'वन्दे सिन्धुर वदनमिह सिद्धिबुद्धि सदनं हि
यत्पद पद्मध्यानतो भवति विघ्न कदनं हि।'

एक संस्कृत सवैया की प्रथम पंक्ति इस प्रकार स्मरण आती है।

''पातु गणेश सदान करः सुसदा सुसमीहित दायक शुण्डः।
सर्वसु कर्मसु सिद्धिह एवं.....।।

इसी प्रकार पुरानी टेहरी में जन्में अनेक ग्रंथों के रचनाकार श्री मुकुन्द लाल सिरवैया एवं प्रमोद रामायण सहित प्रायः हर ग्रन्थों के रचनाकार श्री परमानन्द प्रधान ने अपने हिन्दी ग्रन्थों में भगवत् भक्ति एवं स्तुतिपरक संस्कृत में रचित किए है।

वर्तमान काल में भी स्व. पीताम्बर द्विवेदी, पण्डित प्रवर कृष्ण किशोर द्विवेदी, आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल और इस आलेख के लेखक ने भी संस्कृत में निबंध एवं छन्द रचनाएं की है, तात्पर्य यह है कि ''ओरछा की संस्कृत लेखन परम्परा'' राजधानी परिवर्तन के पश्चात् टीकमगढ़ में संचालित रही है, संस्कृत लेखन की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित है और भविष्य के लिए भी आशा है यहाँ

के 'देवेन्द्र संस्कृत विद्यालय' ने भी संस्कृत प्रचार प्रसार के कार्य किए है और अनेक संस्कृतज्ञ तैयार किए हैं।

स्थानीय कॉलेज के पूर्व प्राध्यापक पं. सुधाकर शुक्ल (दतिया) ने ''देवदूतम्'' और 'गांधी सौगन्धिकम्' क्रमशः मुक्तक एवं महाकाव्य की लेखन परम्परा अपनी सेवा निवृत्ति के पश्चात् जारी रखी थी। उनके लेखन को मैं टीकमगढ़ की संस्कृत परम्परा की ही कड़ी मानता हूँ।

टीकमगढ़ में ही एक हस्तलिखित पत्रिका 'समन्वय' जो देवेन्द्र पुस्तकालय के माध्यम से तैयार होती थी उसके सहयोगी सलाहकार के रूप में स्वर्गीय पंडित सुधाकर शुक्ल का उद्देश्यांकन, संस्कृत में इस प्रकार था ''नानाचारं विचारणां संस्कृतीनां च संसृते,

भारती भारतीर्आनां भूयादत्र समन्वयः।।

पण्डित प्रवर पण्डित कृष्ण किशोर द्विवेदी नगर के ही नहीं सम्पूर्ण बुंदेलखंड के वरिष्ठ संस्कृत विद्वान है वे संस्कृत रचनाकार भी हैं। उनकी गद्य और पद्य रचनाएं नगर के संस्कृत रचना परम्परा का अग्रसर करती है।

निबंधों में जहाँ 'दण्डिनः', पदलालिल्यम्, श्रद्धावान् लभते ज्ञानम् योगः कर्मसु कौशलम् जैसे निबंध सरलतया बोधगम्य है, वहाँ रचना चातुर्य के भी परिचायक हैं।

पद्य में 'श्री कुण्डेश्वराष्टरम्' पलाश विजय महाकाव्यम्' जीवन तटिनी। तथा 'अन्योक्तयः सरस रचना पटीयसी की द्योतिका' है।

श्री कुण्डेश्वराष्टकम्

श्री जान्हवी लघुरूप धरा चलोर्मिः,
शोभाभिभूषित तटा 'जमडार' सिन्धुः।
यत् सन्निधौ वसति निर्मल पूतनीरा,
कुण्डेश तीर्थमनघं तदुपैमि शान्त्यै।।

अतः निर्विवाद रूप से कहा जाता है कि ओरछा के पश्चात् टीकमगढ़ नगर में ''संस्कृत भाषा में संरचनाएं होती रही, ग्रन्थ रचना की गई और आज भी यह परम्परा संचालित है। इस लेखन के लेखन ने भी 'श्री कुण्डेश्वर पंचस्तवीं' एवं बुंदेली लोकगीतों का संस्कृत में अनुवाद कर उस परम्परा को आगे बढ़ाया है।

– तैलंग भवन, टीकमगढ़ ☐

बुन्देली कविता –

आउत है सुद उन गाँवन की

– डॉ. शंकर लाल शुक्ल

जिन गाँवन में जनम लओ, हुदरात फिरे
पढ़ लिख संवरे और जुआनी आई।
याद आउत है वे दिन सबरे सपनन में,
पुरा–परौसी, भइया–भौजी और बाप मताई।
दशरऔ और दिवारी रह रह, याद आउत सावन की।
आउत है सुद उन गाँवन की।

बड़े भोर से डिन डिबेनो, मेड़ और खेतन की,
करब कतरतन गिरै पसीना, औ जरिया लेतन की।
चकिया पीसत महतारी की, हांतन की ठेंठन की,
दिन दिन भर रखाउते बैठे, गेंवड़े के खेतन की।
हार में दद्दा के उपनये, डूंठ लगे पांउन की।
आउत है खुद उन गाँवन की।

जाड़िन में मैरा के ऊपर, प्यांर विछाकें वोरा में,
ठिठुर ठिठुर काटीं रातें, सिकुड़े रये एक पिछौरा में
कांखत रये रात भर कांटौ ठटौ पांव के पोरा में
और जनावर फसल न चरले, सोये रात डड़ोरा में
छोटा मौंड़ा दिन भर चराउत तौ, गउयन की राउन की,
आउत है खुद उन गाँउन की।

संजा विरियाँ भैंसे दोबौ, वे दिन करवे सानी की,
औ दो टल्ला हते हमाये, थोरे खर पानी के।
उटे दूद संग बासी रोटी, मींड़ कें खाबे के लाने,
कभऊँ खात ते मठा महेरी, बाकें स्वाद की का कानें।
भौजाई के संग बखरी में, मोर मठा भांवन की।
आउत है खुद उन गाँवन की।

गाँव भरे की बिटियन खों, अपई बैन मानत्ते।
औ बसोर कक्को की मौड़ी न पराई जानत्ते।
हतो ना घर में चून चनन कौ, मुतियन चौक पुरत्ते,
ताती जलेबी, दूदा के लड्डुआ, सोने के गड्डुआ भरत्ते।
हरे हरे बांस कटाये बाबुल, बौ मड़वा छांवन की।
आउत है खुद उन गाँवन की।

भलें गरीब बाप हो मौड़ा, दशरथ घर जनमत्तौ,
रानी कौशिल्या की कूँख सियानी, ढोलक पै सोहर गवत्तौ।
सोने कौ दिन और सोंने की रातें, सोने कौ दियल जरत्तौ,
बारी ननदिया नेग मांगत्ती, चूल्हे पै चरुआ चढ़त्तौ।
ककरा डरे पैजना ठनकैं, गोरी घन पाउंन की।
आउत है सुद उन गाँवन की।

मंड़वा के नेंचे बिटिया के, पीरे हांत करत्ते,
आज सिया कौ चड़त चढ़ाव गावे सें इमरत झरत्ते।
और विदा की बेरां बिटिया, रो रो करत कलेश
भौजी भइया खों महल अटारी, हमखों लिखे परदेश।

ओ मोरे उमर हजारी मइया, दूदन पूतन वारे भइया,
ओ मोरे लखिया बाबूल–मइया
याद आहैं खेलत की पुतरिया, ये गलियाँ गाँवन की।
आउत है सुद उन गाँवन की।

– भाण्डेर,
जिला दतिया म.प्र. ☐

बुन्देली में समास

– डॉ. वरदानी प्रजापति

हिन्दी की अन्य बोलियों की तरह बुन्देली में समासों का अपना विशेष स्थान हैं जब प्रत्ययों का लोप होने पर दो या दो से अधिक पदों के परस्पर मेल से जो स्वतंत्र शब्द बनता है, उसे सामासिक शब्द कहा जाता है। समास के लिए यह आवश्यक है कि उसकी रचना में दो या दो से अधिक शब्दों का योग हो तथा इस योग के पश्चात् जिस तीसरे शब्द की निरुत्पत्ति हो उस शब्द का अर्थ भी अलग हो, इस तरह समास दो या दो से अधिक शब्दों के मेल से बना एक शब्द है जिसका अर्थ भी अलग हो जाता है। यह योग संज्ञा के साथ विशेषण का विशेषण के साथ विशेष्य का तथा अव्यय के साथ संज्ञा का होता है। उदाहरण के लिए कन्टोपा, एक सामासिक शब्द है जिसका अर्थ है – कानों का टोपा। इस सामासिक शब्द में कान और टोपा दो संज्ञायें है। सामाजिक शब्द में विभक्ति आदि का लोप हो जाता है और दोनों शब्द सक समस्त पद बन जाते हैं।

बुंदेली बोली में इस प्रकार की सामाजिक शब्दावली पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है तथा इसका व्यवहत रूप निम्न प्रकार से है–

(१) **अव्ययी भाव** – जिस समास में पहला पद प्रधान और समस्त पद अव्यय का कार्य करें –

हरदम = बारबार – काय जू! अपन तौ हरदम इतै आउत।

भरपेट = पेट भर – मैनें तौ भरपेट खा लओ।

दिन्भर = पूरा दिन – जौ दिन्भर काँ रओ?

दिरुक्तिपूर्ण :

हाँतई हात = हाथों ही हाथ तुरन्त–बानैं गड़ई हाँतई–हाँत छुड़ा लई।

सरासर = पूर्णता – बौ सरासर झूँट बोलतइ।

रात–बिरात = रात–रात – मैं रात बिरात उतै नइँ जात।

(२) **तत्पुरुष समास** – जिस समास का दूसरा पद प्रधान और दोनों पदों के बीच प्रथम (कर्ता) तथा अन्तिम (सम्बोधन) कारक के अतिरिक्त शेष किसी भी कारक की विभक्ति का लोप पाया जाय, उसे तत्पुरुष समास कहते हैं – यथा –

कर्म तत्पुरुष –	ढेर बाँदी	– ढेर को बाँधना
	मुड़ फुटा	– सिर को फोड़ने वाला
	अन्त गाँव	– दूसरे गाँव को
करण तत्पुरुष –	मौ माँगौ	– मुँह से माँगा हुआ
	मन मानो	– मन से माना हुआ
	तिल सटी	– तिल से सटी हुई
सम्प्रदान तत्पुरुष–	व्यावकाज	– विवाह कार्य
	गड़बास	– गाड़ी के लिये रास्ता
	रामआसरे	– राम के सहारे
	कन्कटा	– कानो से रहित
अपादान तत्पुरुष –	हतकतौ	– हाथ से कता हुआ
	नकटा	– नाक से कटा हुआ
	देस निकारौ	– देश से निष्कासित
सम्बन्ध तत्पुरुष –	कन्टोपा	– कान का टोपा
	चरो खेत	– चारे का स्थल
	रामधई	– राम की कसम
	बिजूका	– वन का जानवर
अधिकरण तत्पुरुष –	घर घुसा	– रात में घुसा रहने वाला
	रत जगौ	– रात भर जगना
	हाला मुहाली	– शीघ्रता में पूछताँछ

(३) **कर्मधारण समास** – जिस समास के दोनों पदों के बीच विशेष्य–विशेषण अथवा उपमेय–उपमान का सम्बन्ध हो और दोनों पदों में ही कारक की विभक्ति आये जैसे –

ललपी गइया – लाल है जो गाय

बैलगाड़ी – बैलों से खींची जाने वाली गाड़ी

गुरम्मा – गुर में मिलाया हुआ पानी

पनचक्की – पानी से चलने वाली चक्की

(४) **द्विगु समास** – जिस समाज में पहला पद संख्यावाचक तथा समस्त पदों द्वारा संयोग या समष्टि का बोध हो जैसे –

चौमासो – चार माह का समूह (वर्षा ऋतु)

पंचांगरौ – पाँच डण्डियों से बना एक काष्ठ यंत्र

तिगैला – तीन रास्तों का संगम स्थल

तिखूँटी – तीन खूँट (किनारा) वाला खेत

पसेई – पाँच सेर वाला बर्तन

दूनर – दुहरा झुका हुआ

(५) **द्वन्द्व समास** – जिस समस्त पदों के दोनों पद प्रधान तथा विग्रह करने पर दोनों पदों के बीच और, अथवा, तथा, या आदि योजक शब्द लगे हों उससे द्वन्द्व समास का बोध होता है। यथा–

बैन–भइया–बहिन और भाई

लोग–लुगाई – पति और पत्नी

मौड़ा–मौड़ी – लड़का और लड़की

चीज–बसत – चीज या वस्तु

अपुन–तपुन – हम और तुम

मठा–मयरी – मठा और महेरी

भज्जा–भौजाई – भइया और भाभी

(६) **बहुब्रीहि समास** – जिस समास में आये पदों को छोड़कर किसी अन्य शब्द (संज्ञा) के विशेषण की प्रधानता हो अर्थात उस समास में समास गत पदों में कोई भी प्रधान नहीं होता बल्कि पूरा समस्त पद ही किसी अन्य पद का विशेषण होता है। यथा –

भींट मार – भींट से मारने वाला अर्थात एक कड़ाका विशेष

गोबर–गनेश – गोबर से बना हुआ गणेश अर्थात अज्ञानी

मरघटा – मरने का घाट अर्थात श्मशान
राई भरौ – राई के समान अर्थात छोटा बच्चा
गप्पाईसा – गप्प में विश्वास रखने वाला अर्थात झूठा
बाराबाट – बारह जगह बाँटना अर्थात बरबाद करना
गोई दुलइया – गोरी है दुल्हन अर्थात पारवती
चारपाई – चार है पैर जिसके अर्थात खटिया
अमकटा – आम काटने वाला अर्थात एक यंत्र विशेष
पैटै मार – पेट में मारना अर्थात भूखा रखना
ककरउआ जमीन – ककरीली जमीन अर्थात कंकड़ वाली जमीन

प्रयुक्त समासों का वैशिष्ट्य –

कुछ सामाजिक शब्दों में प्रायः पुल्लिंग शब्द पहले और स्त्रीलिंग शब्द बाद में आते हैं – भज्जा–भौजाई, लोग–लुगाई, बाप–मताई, सास–ससुर, बैन–भइया आदि सामाजिक शब्द इसके अपवाद हैं।

कुछ ऐसे सामासिक शब्द भी है जिनमें यदि प्रथम पद का आरम्भ स्वर से होता है तो द्वितीय पद का आरम्भ व्यंजन से होता है – ओटी–मोटी, अन्ट–सन्ट, ईंधन–मींधन आदि। तन्त्र–मन्त, ताँतौ–मातौ आदि सामासिक शब्द इसके अपवाद हैं।

कुछ सामाजिक शब्दों में ई, ऐ, ओ, औ, स्वरों का 'अ' में तथा 'आ' स्वर के ऊ में परिवर्तित होने की प्रवृत्ति मिलती है। यथा धूम–धाम, देख–दाख, पैर–पार, सो–सा, मार–मूर, टाल–मटोला, खा–खूँ, मूत–मात आदि।

– शा.महा.वि., लौड़ी, छतरपुर ☐

बुन्देली गीत

– गोपाल दास रूसिया

अपनों देश भयो रन बन कौ, कर्जी हो गओ धन कौ
मंत्री बन गद्दी पर बैठो, विद्रोही जन जन को। अपनो देश.....

कइयक नेता बन गये दादा, भूल गये सब वादा
हॉंके बड़ीं–बड़ीं बे बातें, हो जैसें परदादा
डूबे रात सदा स्वारथ में, धर कें बाना सादा
हिन्दु, मुसलिम सिक्ख लड़ा के खायें सदा धरमादा
धरम करम में भेंदभाव कर, द्रोही भओ जन जन को। अपनो.....

पीछे हते आज भये आगें, जो लड़ाई से भागे
दुश्मन दोस्त बना के, इनने घर में गोला दागे
इनकी करतूतन से लाखन, भये अनाथ अभागे
गांधी जैसे वीर सो गये, जब यह अरुआ जागे
सब जानत हैं भलो बुरओ जो कर रओ आज चमन को। अपनो...

सीधे कर रये हा हा दइया, कोऊ न रोक लगइया
डर के मारे थर थर कांपत, सांची निश्चल किबइया
छक के राजा माल छान रये, भूंखन मर रई रैया
स्यार सिंघ की खाल ओढ़ के, सता रओ सुरहन को। अपनों.....

बिना अन्न के भूखन मारत, कर कर के नादानी
डूबे रात नशा में हर दम, हमें मिले न पानी
बिन रोटी मकान के किलपत, कइयक ऐसे प्रानी
नंगे वदन बिना छाया के, भोगत है हैरानी
हड्डी रहो मांस सब सूखो, पिजरा बन गओ तन को। अपनो.....

जो जितनो झूठो बोले वह, सांचो आज कहावे
बिना करे लाखन की पूंजी, बिन रुजगार बनावे
सब्ज बाग दिखला दिखला के, तरह तरह भड़कावें
बोटन खां गोटन के माफक, चाल सदैव चलावे
जात–पांत को नारा देकर, हक हड़पे हरिजन को। अपनों.....

शाशक शासन को पा आसन, भूल गओ अनुशासन
चारउ तरफ देखबे मिल रओ, ऊ को आज कुशासन
लेने लगा लगा के मिल ओ जनता खां अब ग्रासन
दुस्सासन से क्रूर भओ है पूरो आज प्रशासन
नकली हीरन के आगे अब, मान न होत रतन को। अपनो.....

लालच दे अन माफक को भी, अपने माफक करबे
देख पराई सम्पत्ति हरदम, जर जर के यह जरबे
सोने खां सोनो, मांटी मांटी खा, सोनो कात न डरवे
देकर के विश्वास्घात कर, गैरन को हक हरवे
सुने गुने न बात काऊ की, कारज करबे मन को। अपनो.....

बातें करें जो आज नीत की, कल्ल जात है मारो
पद पाके शासन को सासक, मद में भओ मत बारो
चचा भतीजो भैया भौजी ओ जीजाजी सारो
उनके लाने चौबीस घन्टा, खुलो रात है द्वारो
भूल गओ कर्ता को भू रख, लिखो लेख कर मन को। अपनों....

बट रई मो देखी परसादी, जब से भई आजादी
सुनबैरा महन्त बन बैठो, ओढ़ रेशमी खादी
लाख कहो बो एक न माने, हो गओ ऐसो आदी
शर्म नहीं आवत है इनको, बेशरमाई लादी
रीत नीत खा भूल बिसर के, दगा देय अपनन खों। अपनों.....

अबतो का है राम करइयां, ई सिंसारी मइया
पूजत नहीं पालवे बारो, फस के भूल भुलइयां
माया बस चंचल गुपाल मन अपने बस में नइयां
कुर्सी पाने हेतु लोभ बस, लगा रहे फिर कइया

देने परे हिसाब एक दिन, भइया सब पल छिल में
अपनों देश भयो रन बन को, कर्जी हो गओ धन को।

– हरपालपुर, छतरपुर म.प्र. ☐

बदलता लोक – बदलती मानसिकता

– पं. गुणसागर 'सत्यार्थी'

हम अपनी सांस्कृतिक विरासत और परंपराओं को भूलते जा रहे हैं। कहा गया है कि "कोस–कोस पै पानी बदलै, बीस कोस पै बानी।" अब यदि इसी को हम थोड़ा और आगे बढ़कर सोचें और कहें कि "बीस कोस पै वानी बदलै क्षेत्र क्षेत्र में रीत।" तीज त्यौहार हो या संस्कारगत घर–परिवार के अन्य कोई भी उत्सव, प्रत्येक क्षेत्र में उन्हें मानाने की अपनी ही रीत होती है और अपना ही ढंग। उमंग जबकि एक ही होती है। लेकिन ढंग बदल जाने से ही भारत संस्कृति के क्षेत्र में रंग बिरंगा गुलदस्ता बन जाता है। भारत में दो पर्व प्रमुख हैं होली और दीवाली। दोनों ही पर्व ऋतुओं के संधिकाल में मनाए जाते हैं। एक ऋतु–विदा होती है और दूसरी नई ऋतु का आगमन होता है। इस संधिकाल में हमारा पर्यावरण भिन्न–भिन्न प्रकार से प्रदूषित होता है, नाना प्रकार के रोगाणु वायुमंडल को प्रदूषित करते हैं। तब ही हमारे जीवन में रस का संचार करने वाले उमंग भरते हुए यह पर्व आते हैं। हमारा समाज स्वस्थ्य रहे, सुखी रहे, इसलिए इन प्राकृतिक रूप से उत्पन्न प्रदूषणों को समाप्त करने हेतु इन दोनों ही त्यौहारों में अग्नि का उपयोग हमारी परंपरा बना। हमारे पुरखों का सोच एकदम वैज्ञानिक था। दीपावली में काली अमावस्या को सहस्रों दीप मालिकायें आलोक से तो भर ही देती है लेकिन मीठे तेल के सहस्त्रों दीपों के टिम–टिमाती लौ जो धुंआं वायुमंडल में भरती है उससे हानिकर जीवाणु समाप्त होते हैं और वायुमंडल प्रदूषण मुक्त होता है। इस विज्ञान को हम भूल चुके हैं और दीपावली को विद्युत बल्बों की रंग बिरंगी झालरों से दीपावली सजाते हैं। इससे काली अमावस्या की अंधेरी रात्रि आलोक से तो नहा लेती है परन्तु हमारे जन–जीवन को स्वस्थ रखने वाला पर्यावरण प्रदूषण मुक्त नहीं हो पाता। क्योंकि भौतिक विकास की चकाचौंध से हमारी परम्पराएं और सांस्कृतिक विरासत हम से जाने–अनजाने छूटती जा रही है। यदि दीपावली की दीप–मालिकाओं के वैज्ञानिक स्वरूप को हमने पहचान लिया होता तो विद्युत के रंग बिरंगे कस्बों की झालरों का मोह तोड़ कर हम मीठे तेल से जलने वाले सोंधी माटी के बने दियों से ही आज दीपावली सजाते हैं। इसके बाद गांवों में अग्नि से नाना प्रकार के खेल खेलने की परम्परा भी हम भूल गये। सूखी घास के पूरों में आग लगाकर, अपने शरीर के चारों ओर घूमते थे दोनों पैरों के नीचे से जलती हुई आग के जो चक्र से चलते उसे 'ओद–वोद' कहते थे। भला विचार करें, आज यह ओद वोद का खेल खेलते कोई हमें दिखाई देता है? इस खेल में भी अग्नि के द्वारा प्रदूषण समाप्त कर जन–जीवन के स्वस्थ्य और सुख की ही कामना छिपी हुई थी।

ठीक इसी प्रकार होली के अवसर पर घरों का कूड़ा कड़कट बटोरकर होली जलाई जाती हैं प्रत्येक मुहल्ले में होलिका दहन होता था अर्थात् संधिकाल से जो पर्यावरण प्रदूषित हुआ उसे प्रदूषण मुक्त करके जीवन में नव–उल्लास और उमंग भरकर आनन्द बिखेर देना ही इस पर्व का उद्देश्य था। पलाश के फूलों को पानी में भिगोया जाता था। पूरा पानी केशरिया रंग के रूप में रंगीन हो जाता था। उसी रंग से हम होली खेलते थे। पलाश के फूलो के पानी से एक बार नहा लेने से आने वाली गीष्म ऋतु के प्रकोप से हमारी सुरक्षा हो जाती थी। इसका एक प्रमाण हमारे सामने है कि आज भी यदि ग्रीष्म ऋतु में किसी को लू लग जाती है तो पलाश के सूखे फूलों को पानी में भिगोते हैं और उस पानी को लू से ग्रसित रोगी के हाथ पैरों एवं हथेलियों पैर कोहनियों में मलते हैं तो वह पीड़ित लू से मुक्त हो जाता है। हम अपनी इस परंपरा को भी भूल गए और काले एवं कंचई बुरे रंगों से मुंह पोतते हुए जो होली खेलते हैं वह हर प्रकार से हानिकारक होता है। खेदजनक स्थिति यही है कि हमारी सांस्कृतिक विरासत हम से टूटते जा रही है।

ब्रज मंडल में जो होली होती है उसे देखने हम मात्रा करके वृन्दावन व बरसाने जाते हैं। वहां पर जो 'लठा मार होली' होती है उसे वहां जाकर देखते हैं। एक डलियानुमा ढाल से पुरुष अपनी रक्षा करता है और ब्रज–नारियां लाठियों से प्रहार करती हैं। इस प्रक्रिया में वह आनन्द बिल्कुल नहीं होता जो बुंदेलखंड की लठामार होली या 'बँसैड़ियाऊ होली' या 'दुगे की फाग' आदि नामों से खेली जाने वाली होली में होता था। आज किसी से पूछा जाय कि 'दुगे की फाग' कैसी होती थी? तो कोई भी नहीं बता सकेगा। हम अपनी इस सांस्कृतिक विरासत को भी भूल गये। हां ओरछा राज्य के अंतिम यशस्वी राजकवि स्व. मुंशी अजमेरी जी की बुंदेली कविता में उसका वर्णन जरूर हमें पढ़ने से मिल जाएगा कि –

"तें फाग दुगे की है नामी,
हो जात लट्ठ लैके सामी
चढ़ जात तऊऊरध गामी।
तें कुटवा देत चमरियंन सें
होवें कोऊ चांय बड़े धोरी,
ओरी! ओ बुंदेलखंडन होरी।"

इन पंक्तियों के लेखक ने भी अपने बाल्यकाल में इस बुंदेलखंडिन होली को अपनी आंखों से स्वयं देखा है, उसका आनन्द लूटा है। अब तो दूर–दूर तक वह दृश्य होली के अवसर पर देखने को नहीं मिलता। अंग्रेजी का एक विल 'डॉज बाल' जब मैंने देखा तो मुझे अपनी सांस्कृतिक विरासत की पर्तो में छिपी 'दुगे की फाग' याद आ गई। डॉज वाल में खिलाड़ी को धोखा देकर ही खेल जीता जाता है। उगे की फाग का मतलब भी दगे की फाग है,

जिसमें दगा (धोका) देकर ऊँचे खंभे पर बंधी गुड़ की पारी तोड़ी जाती थी। यदि होली का खिलाड़ी दगा (धोका) देने में भूल गया तो समझो उस पर बांस की बंसैड़ियों के प्रहार बरस ही पड़ेंगी। वहाँ ब्रज मंडल की लठामार होली वाली ढाल भी नही जो उस खिलाड़ी की रक्षा कर सके। इसलिए इस पिच में सतर्कता और सूझ–बूझ और चातुर्य की भी अग्निपरीक्षा होती थी। 'दगे की फाग' का शब्द चित्र ही आज आपको दिखाया जा सकता है –

गांव में एक बड़ा मैदान, मैदान के बीचों बीच एक लम्बी बल्ली गाड़ी जाती थी। बल्ली चिकनी होती थी, उसके ऊपरी शिरे पर एक छोटी सी पोटली बांधी जाती थी, जिसमें एक गुड़की पारी, नारियल और सवा रुपया होता था। आस–पास के गांव में बुलौआ भेजा जाता। सभी गांवों से फाग गाने वालों की मंडलियां आती, उनमें राई भी होती थी। बल्ली से चारों ओर मैदान खाली रहता उस खाली मैदान के बाद चारों ओर फाग मंडलियाँ एवं दर्शक होते थे। फागों के मधुर स्वर, ढोलक, मृदंग, नगड़िया, झेला–झांसे, और रमतूला का तुमुल वाद, रंग–गुलाल आदि से वातावरण रस–रंग में डूब जाता था। बीच वाली बल्ली को घेरकर महिलाओं का समूह खड़ा होता था उनके हाथ में दो बांस की पतली लाठियाँ (बँसैड़ियां) होती थी। वे उस बल्ली के ऊपरी शिरे पर बांधी गई पारी की एक प्रकार से रक्षक हुआ करती थी। उन महिलाओं के रक्षक समूह को दगा (धोका) देकर ही किसी व्यक्ति को उस बल्ली पर दौड़कर ऊपर चढ़ने और पारी तोड़ने की बाजी थी। एक दिशा से वह 'पचा' (खलिहान में लॉंक एकत्र करने वाला फावड़े जैसा एक उपकरण) लेकर युवक दुबकता–छुपता बल्ली की ओर बढ़ता था, जिसे देखते ही वह नारी–समूह उसे हरे बांसों से पीटता हुआ मैदान से बाहर खदेड़ता था। वस्तुतः वह युवक पारी तोड़ने वाले युवक की ओर से डमी (नकली) होता था जो उन रक्षिकाओं को धोखा देने दूसरी दिशा से भेजा जाता था। रक्षिका समूह जब उसे खदेड़ता हुआ उसके पीछे दूर तक दौड़ता और बाँसों से पिटाई करता तब 'पचा' को वह छतरी की तरह अपने सिर पर उठाकर बांसों के प्रहार से अपना सिर बचा लेता था। फिर भी उसकी पिटाई येन–केन प्रकारेण होती ही थी। इस बीच रक्षिकाएं उस युवक के पीछे जब दूर निकल जाती थी, तब बल्ली पर दूसरी दिशा से दौड़कर दूसरा युवक चढ़ता और पारी तोड़ने का प्रयास करता था। उसे बल्ली पर चढ़ते देख रक्षिका–समूह दौड़ कर वापस आता और खम्भे पर चढ़ते हुए युवक की पिटाई करता। युवक प्रायः चढ़ नहीं पाता और पिटता हुआ नीचे आ गिरता और दौड़कर भागता, उसे भी वे स्त्रियां पीटते हुए खदेड़ती हुई उसके पीछे दूर तक जाती, तब तक किसी अन्य गांव का तीसरा ही युवक दौड़कर दूसरी दिशा में आता और बल्ली पर चढ़ने का उसी तरह प्रयास करता। यह क्रम घण्टों चलता इस क्रम में जो व्यक्ति अपनी सूझ–बूझ और चतुराई से खम्भे पर चढ़कर पारी तोड़ लेता था, वह उस वर्ष का विजेता होता था। गांव में उसे उस वर्ष का होली सम्मान दिया जाता था। आज वोट की राजनीति ने सम्प्रदायिक सद्‌भाव तो समाप्त किया ही है जातिगत राजनीति ने इन परम्पराओं तक को वधित किया है। तब दलित जाति की महिलाओं से उच्च वर्ग की जाति के लोग पिटकर भी गौरवान्वित होते थे। आज यह ऊँच–नीच का भेद गहरा गया और परस्पर का प्रेमभाव ही टूट गया है, इन सांस्कृतिक परंपराओं के साथ। बुंदेलखंड की सांस्कृतिक विरासत में ऊँच–नीच की भावना को कभी कोई स्थान नहीं था। यदि हम अपनी विरासत को पहचानें और पुनः अपनाएं तो प्रेम और सद्‌भाव का समुद्र हमारे जीवन में समा जायेगा।

– कुण्डेश्वर, जिला टीकमगढ़ म.प्र. ☐

ऐसी बिदन बिदी मोरे जी खों

– डॉ. लखन लाल खरे

ऐसी बिदन बिदी मोरे जी खों, काव कछू न बनबे,
घर में है बारा की पल्टन, खर्चा कैसें चलबे?

कल्लू की ओरी खां जोड़ा धुतिया को है चानें,
घपुआ मचलो चड्डी खां, कसिया नेंकर के लाने।
बड़ी बिना के रइ बिलाउस की, मोय नइयां परदनियां,
रो रइ पेटीकोट के काजें चार दिना सें मुनियां।

एक कारखानों उन्ना को अब मोरे नां खुलबे।
घर में है बारा की पल्टन, खर्चा कैसें चलबे।।

सत्तर सेर आइ ती पिसिया, चार दिना खां भइ ना,
फिर उदार लेबे गव, अबकी बेर कोउ नें दइ ना।
मिलत आठ सौ मइना के खर्चा हजार को आबे,
धरी उदारी पेलां की, अब की के दोरें जाबे?

सबरौ नाज बजार को अब तो मोरे घर में तुलबे,
घर में है बारा की पल्टन, खर्चा कैसे चलबे।।

पेट पिरा रव धनुआ को और रामबाई की छाती,
आँखन के मारें हो रइ ननुआं खों भोत पिराती।
मल्लू की ओरी रोजउं दिन भर फूंकत है चूलो,
कभउं पिरा रव मूंड़ कभउं पकरे बैठी है कूलो।

सेंतमेंत में बैद डागदर मो खां कोनउं मिलबे।
घर में है बारा की पल्टन, खर्चा कैसे चलबे।।

पैलां से करवा लेतो जो मैं परिवार नियोजन,
इतनी आफत न होती, सुख सें तो करतो भोजन।
अब के रये सब जनें करा ले तें परिवार नियोजन,
तोरे सबरे दुख भग जेहें भोत दूर सौ जोजन।

पर, पूरो दर्जन धरो, बताओ ई को हम का करबें?
घर में है बारा की पल्टन, खर्चा कैसे चलबे?

– शास. एस.एम.एस. महाविद्यालय, कोलारस, शिवपुरी ☐

विस्मृत साहित्य शिरोमणि : मुंशी अजमेरी

– पुष्पेन्द्र सिंह पवार

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में चिरगांव (झांसी) में जन्मे मुंशी अजमेरी जी, श्री मैथलीशरण एवं श्री सियारामशरण गुप्त ने हिन्दी साहित्य के भण्डार को समृद्ध करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इस त्रयी में सबसे अधिक ख्याति श्री मैथलीशरण जी गुप्त को मिली। वह राष्ट्रकवि की उपाधि से सम्मानित हुए। श्री सियारामशरण जी को भी पर्याप्त ख्याति प्राप्त हुई, किंतु मुंशी अजमेरी जी जिस ख्याति के अधिकारी थे, वह उन्हें प्राप्त नहीं हो सकी।

वियोगी हरि जी ने 'प्रेम पयोनिधि' की भूमिका में लिखा है कि – 'हमारे सामने आज एक ऐसे ही कवि की रचनाएं हैं जो बहुत अंशों में जन्मजात था। जिसे ईश्वरीय देन मिली थी और साथ ही जिसने काव्यशास्त्र का भी अपने ढंग से गहन अध्ययन किया था। आशय मुंशी अजमेरी से है – मैथलीशरण गुप्त के सहयोगी और सखा चिरगांव निवासी मुंशी अजमेरी से। प्रकाश में वे उतने नहीं आ सके जितने मैथलीशरण जी। [१]

अजमेरी जी ने अपने जीवन का अधिकतम समय गुप्त बंधुओं, श्री रामकिशोर (मैथलीशरण के ज्येष्ठ भ्राता) श्री मैथलीशरण गुप्त एवं श्री सियारामशरण गुप्त की सृजनात्मक शक्ति को सजाने संवारने में उनकी रचनाओं के सुलेखन, संशोधन आदि कार्यों में लगा दिया। परिणाम स्वरूप वे अपनी स्वयं की सृजन शक्ति का पूर्णत: उपयोग नहीं कर सके। इसके बाद भी उन्होंने जो भी लिखा, वह हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

वे २४ नवम्बर १८८१ ई. को चिरगांव (झांसी उ.प्र.) में जन्मे और २६ मई १९३७ को चिरगांव में महाप्रयाण कर गये। अपना मूल नाम प्रेम बिहारी चिरगांव की धरती पर न्यौछावर करके 'मुंशी अजमेरी' उपनाम से राष्ट्रकवि दद्दा श्री मैथलीशरण गुप्त को आकार देते रहे। दद्दा भी उनको उसी रूप से स्वीकार करते रहे। संस्मरणों का कोष खोलो तो पुचकार, फटकार, संशोधन, परिवर्द्धन सब रत्न निकल आयेंगे। [२]

उनका काव्य बोध इतना प्रखर था और विश्वसनीय था कि स्वयं राष्ट्रकवि मैथलीशरण गुप्त प्राय: तब अपने काव्य को पक्का नहीं करते थे, जब तक कि वे उसे मुंशी जी को न दिखालें और उनकी खरी आलोचना अथवा संशोधन प्राप्त न करले। [३]

पूज्य दद्दा की काव्य प्रतिभा के संरक्षण पोषण उनकी कीर्ति बढ़ाने और परोक्ष रूप से साहित्य सदन की समुन्नति में उनका बहुत बड़ा हाथ रहा है। स्वयं दद्दा ने इस संबंध में मुक्त कंठ से अपना ऋण स्वीकार किया है। [४]

मुंशी अजमेरी 'प्रेम' एक ऐसे प्रेरक थे जिन्होंने न केवल राष्ट्रकवि के लिए समुचित वातावरण तैयार किया बल्कि चिरगांव में उस समय जो अन्य प्रतिभायें प्रस्फुटित हुई, चाहे वे श्री सियारामशरण गुप्त हो या प्रसिद्ध आलोचक, लेखक और कथाकार श्री कृष्णानंद गुप्त, सभी को आगे बढ़ने के लिए प्रेरणा दी। [५]

अजमेरी जी का रचना संसार मात्र हिन्दी की खड़ी बोली तक ही, सीमित नहीं था। उन्होंने बुंदेली, व्रजी, डिंगल में साहित्य सृजन किया। क्या भाषा का प्रवाह, क्या शैली, क्या सरसता, क्या प्रसाद गुण, सभी दृष्टियों से ये रचनायें मन को मुग्ध कर लेती है। लगता है कि कवि को खास प्रयत्न न करना पड़ा होगा। अपने सहज भावों की अभिव्यक्ति करने में। [६]

शब्द के पास अभिधा, लक्षणा, व्यंजना ये तीनों शक्तियां ही सबसे बड़ा शक्ति धन है। इसका उपयोग कब कहां, कैसा और कैसे करना है, वे यह खूब जानते थे। अपनी साढ़े पांच दशक मात्र की आयु में ही उन्होंने इन शक्तियों के शक्ति प्रयोग से पचासों उदाहरण छोड़े हैं, उनके समय की श्रेष्ठ हिन्दी पत्रिकाओं – सरस्वती, सुधा, मधुकर, विशाल भारत, वीणा, हंस, चांद और नव ज्योति में उनकी गद्य–पद्य रचनाओं में इन उदाहरण को देखा जा सकता है। [७]

अजमेरी जी का सभा चातुर्य प्रसिद्ध था। संस्मरण और व्यंग्य सुनाते घण्टों बीत जाते और समय का पता न चलता। उनका कण्ठ अत्यंत मधुर था, उसमें पौरुष और गंभीर माधुर्य था। [८] मुंशी जी ने भगवान से अतुल्य बहुमुखी प्रतिभा पायी थी। [९] बड़े–बड़े विद्वान और महापुरुष उनके गुण का आदर करते थे। राजा महाराजाओं में उनका सम्मान था, फिर भी छोटे कहे जाने वाले व्यक्ति के पास बैठकर उसे संतुष्ट करने में भी उनके जी को बहुत सुख मिलता था। [१०]

गुरुदेव की कृति 'चित्रांगदा' और 'स्मरन' दोनों बंगला भाषा की काव्य कृतियां हैं। चित्रांगदा शायद संसार की सबसे छोटी प्रणय कथा पर आधारित काव्य कृति है और 'स्मरन' तो विश्व कवि की नितांत वैयक्तिक विरह गीतिका है। अपनी प्रिय पत्नी के स्वर्गारोहण के पश्चात् लिखित शोकान्का ही मानो। अजमेरी जी ने दोनों कृतियों को हाथ में लिया। 'चित्रांगदा' को खड़ी बोली में मुक्त छंद शैली के सहारे हमारे सामने रखा। 'स्मरन' को बृजभाषा में अनुदित किया। दो कवि, तीन भाषायें, बंग्ला, हिन्दी और व्रज, गुड को जिधर से खाओ मीठा ही मीठा। [११] अजमेरी जी की भगवान श्रीराम संबंधी रचनाओं की बानगी प्रस्तुत है –

अवध में मन लागो।
नाते–नेह जगत के तजकें, राम–चरन–अनुरागो।
दारुन–द्रोह, दंभ–दूषन–दुख, भव–संभव भय भागो।
निरखत 'प्रेम' जुगल छवि निसदिन, भाग्य भली विधि जागो।

(परिणति–कविता से)

एक अन्य उदाहरण –

पतित अपावन को पावन करैया जानि,
मानि निज हानि जमराज मन माख्यौ है,
राम चरनारविन्द चंचरीक वे हैं धन्य –

चरन–पीयूष ह्वै अनन्य जिन चाख्यौ है। ('राम' कविता से)

'ध्यान' शीर्षक कविता में, भगवान श्रीकृष्ण की मोहनी छवि का वर्णन करते हुए कवि लिखता है –

उर विशाल, लंबित वनमाल लटक लहरै,
चरन–कमल, तन त्रिभंग, पीताम्बर फहरै।
यमुना तट आज मैं तमाल हरें हेरे
सोई घनश्याम सदा मन में बसौ मेरे।

भगवान श्रीराम एवं श्रीकृष्ण के प्रति ऐसा समर्पण एवं भक्ति भाव किसी वैष्णव में ही संभव है। इसीलिए राष्ट्रकवि श्री मैथलीशरण जी ने ठीक ही कहा है कि – "किसी समय मुसलमान हो जाने पर भी संस्कारों से वे हिन्दू अधिक हैं।[१२] 'मिश्र बंधु' के अनुसार भी वे जाति के मुसलमान हैं। इनके पूर्व पुरुष भाट थे। आप परम वैष्णव है।[१३] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उनके बारे में कहा था "इस तरह के मुस्लिम भक्त पर करोड़ों हिन्दु न्यौछावर हैं।"[१४]

'जेवनार' बुन्देली रचना की भी एक बानगी अवलोकनार्थ प्रस्तुत है–

मैथी, मूरा, गोबी, आलू, बैंगन, सेंमें, अरई, रतालू,
कटहल, केरा, ढेंढस ढीले, परवल सूखें और रसीले,
लौकी, कासीफल सन्नाटौ, जामें मिरचन को झन्नाटो,
जेमों, विध सो परस जिमाऊँ, लै बिजना मैं ब्यार डुलाऊँ,
टंडौ नीर सुवासित प्याऊँ, पाछें पावन बिरी पवाऊँ,
नेक ताताथेई नाच दिखाऔ बनमाली जू।
दिखइयो बनमाली जू।

पाठकगण डिंगल काव्य की कुछ पंक्तियों का भी रसास्वादन कर लें–

उड्गण हुवें अनेक, चंद चमकैं चौगणो,
अरक न ऊगै एक, तौ दिन न तरसै दुर्नी।

काव्य सृजन के अतिरिक्त गद्य साहित्य सृजन में भी वे अग्रणी थे। 'प्रेम पराग' में उनकी पन्द्रह कहानियाँ संग्रहीत हैं। संस्कृत, हिन्दी, बृज, बुंदेली, बांग्ला एवं डिंगल भाषाओं के जानकार साहित्य शिरोमणि अजमेरी जी उपेक्षा का शिकार होकर विस्मृति के गर्त में समाते जा रहे हैं। पं. बनारसी दास चतुर्वेदी के अनुसार 'इस उपेक्षा के लिए विशेष कर चिरगांव वाले तथा बुंदेलखण्डी जिम्मेवार हैं। मुंशी जी का व्यक्तित्व अखिल भारतीय था और इस दृष्टि से हिन्दी जगत् भी कम अपराधी नहीं है।[१५]

स्वर्गारोहण पश्चात् कई दशकों तक गुमनामी का दंश झेलते रहे मुंशी अजमेरी जी। उन्हें पुनर्जीवित करने का स्तुत्य कार्य किया है, उनके यशस्वी पौत्र पं. विद्यासागर जी शर्मा ने जो शुद्धि कराकर हिन्दू 'ब्राह्मण' हो गये हैं।"[१६] उन्होंने उनकी धूल खाती यत्र तत्र बिखरी रचनाओं, साहित्यकारों के पत्राचार को श्रम पूर्वक संग्रहीत कर उन्हें 'प्रेम पयोनिधि' एवं 'प्रेम पराग' नाम से सम्पादित एवं प्रकाशित कर साहित्यानुरागियों को सहज–सुलभ करा दिया है।

वे निश्चित रूप से श्रद्धास्पद हैं। हिन्दी जगत् उनके इस श्रेष्ठ अवदान को कभी विस्मृत नहीं कर सकेगा। हमें गर्व है कि मुंशी अजमेरी जी जैसी विभूति इस देश में उत्पन्न हुई और उसने हिन्दी साहित्य की वृद्धि में सतत् योगदान किया। उनका स्मरण करना हिन्दी साहित्य का सम्मान करना है।[१७]

– ग्राम पोस्ट सिंधवाहा, जिला ललितपुर उ.प्र. □

संदर्भ –

१. श्री वियोगी हरि जी – भूमिका 'प्रेम पयोनिधि' पृ. १०
२. श्री बालकवि वैरागी – 'विनीत प्रणति' साहित्य सागर भोपाल मई २००६ पृ. ३६
३. श्री नारायण चतुर्वेदी – 'अभिवादन' प्रेम पयोनिधि पृ. २८
४. श्रीकृष्णानंद गुप्त 'स्वर्गीय मुंशी अजमेरी जी' प्रेम पयोनिधि पृ. ५०
५. श्री जगदीश चतुर्वेदी 'अविस्मरणीय उद्‌गार' वही पृ. ५९
६. श्री वियोगी हरि 'भूमिका' वही, पृ. १०
७. श्री बालकवि वैरागी 'विनीत प्रणति' साहित्य सागर भोपाल मई २००६ पृ. ३६
८. श्री नारायण चतुर्वेदी, 'अभिवादन' प्रेम पयोनिधि पृ. २९
९. श्री रायकृष्णदास 'पुण्यलोक' वही पृ. २६
१०. श्री सियारामशरण गुप्त 'मुंशी जी' वही. पृ. ३४
११. श्री बालकवि वैरागी 'विनीत प्रणति' साहित्य सागर भोपाल मई २००६ पृ. २५
१२. श्री मैथिलीशरण गुप्त 'मुंशी अजमेरी' पृ. ६
१३. मिश्रबन्धु मिश्र बन्धु विनोद खण्ड ३–४, पृ. ३५३
१४. 'सियारामशरण गुप्त शताब्दी स्मारिका' पृ. १०६
१५. श्री बनारसीदास चतुर्वेदी 'सम्पादकीय' प्रेम पयोनिधि पृ. २
१६. श्री मैथलीशरण गुप्त 'मुंशी अजमेरी' पृ. ४७
१७. श्री यशपाल जैन 'अविस्मरणीय उद्‌गार' प्रेम पयोनिधि पृ. ५६ □

गोरा गुलाँटें खा गए

– डॉ. कमलेश

जब कूँदी मार हुंकार समर में, जोधा जबर मों बा गये।
लख रानी रूप विकराल, गुमानी गोरा गुलाँटें खा गये।

आये लरबें कों जो बड़ी होंस से, जब परौ बाई कौ वार
कसाई करमन कौ फल पा गये। जब कूँदी............

दोऊ हातँन चलाँय तलवारें दो, कट–कट के गिरें रिपु मुंड, हुंड से
गोरँन गरब–गढ़ ढा गये। जब कूँदी............

हा हा खाबें हठी 'ह्यूरोज' से, 'डलहौजी' डरे डकराँय केम्प में
बदरा मातमी छा गये। जब कूँदी............

बाई निकरी बहादुर मर्द सें, सब दाँतन उँगरिया दबाँय
शूरमा सेनापति शरमा गये। जब कूँदी............

कीर्ति झांसी की बाई साब की, हम गा न सके,
'कमलेश' देत श्रद्धांजलि अँसुआ आ गये।
जब कूँदी मार हुंकार समर में, जोधा जबर मों बा गये।

– आलमपुर, भिण्ड म.प्र. □

लोक सौन्दर्य के गायक मित्र जी

– भगवत रावत

बुंदेलखंड क्षेत्र में साहित्य की अपनी लम्बी परम्परा है। मध्यकालीन केशवदास से लेकर आधुनिक काल में मैथलीशरणगुप्त, वृन्दावनलाल वर्मा और मैत्रेयी पुष्पा तक अनेक साहित्यकारों ने बुंदेलखंड के गौरव को बढ़ाया है और यह परम्परा आज भी अनवरत रूप से जारी है लेकिन बुंदेली भाषा विशेष में साहित्य की रचना के द्वारा बुंदेली लोक भाषा को साहित्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का काम पूरी तरह से यदि किसी रचनाकार ने किया तो वे ईसुरी ही हैं। मैं अपनी धारणा को और स्पष्ट करके कहूँ तो यह कि ईसुरी के पहले बुंदेली भाषा की कविता या साहित्य की चर्चा उस तरह नहीं होती थी, जिस तरह ब्रज, अवधि और भोजपुरी आदि की होती थी। ईसुरी के कारण ही लोगों ने बुंदेली लोक भाषा और उसकी संस्कृति पर ध्यान देना शुरू किया। जब मैं यह कह रहा हूँ तो यह जानता हूँ कि ईसुरी के तमाम पूर्ववर्ती और परवर्ती न जाने कितने ऐसे रचनाकार हैं जिनकी भाषा में बुंदेली की न केवल झलक दिखाई देती है, वरन बुन्देली उनके भाषा विन्यास में इस तरह गुथी हुई है कि इसी कारण वे अलग से पहचाने भी जाते हैं किन्तु अन्ततः वे सब हिन्दी भाषा के साहित्यकार हैं। ईसुरी पहले ऐसे महत्वपूर्ण कवि हैं जिन्हें बुंदेली के अतिरिक्त और किसी भी भाषा का कवि कहा ही नहीं जा सकता। जिस तरह सूर ने ब्रज को, जायसी और तुलसी ने अवधी को साहित्य की भाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया, उसी तरह बुंदेली को ईसुरी ने। हमें यहां यह याद रखना भी आवश्यक है कि ईसुरी का समय हिन्दी की रीतिकालीन कविता के पतन का समय है। आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व बुंदेलखंड के अधिकांश कवि मूलतः ब्रज भाषा में कविता कर रहे थे। बुंदेली में कोई महत्वपूर्ण कवि नहीं दिखाई देता, जबकि लोक नाट्य और लोक गायन की परम्परा जीवित थी।

तो फिर इन वर्षों में अर्थात् ईसुरी के बाद बुंदेली में क्या हुआ? मैं फिर अपनी वही धारणा दुहराऊँगा कि लिखा तो बहुत कुछ गया। बुंदेली भाषा में भी लिखने वालों की संख्या काफी बढ़ी पर मूलतः बुंदेली को ही अपने काव्य का आधार बनाने का काम यदि किसी ने किया, तो वे थे रामचरण हयारण 'मित्र'। मित्र जी की ६० वर्षों से अधिक की काव्य साधना का कुल निचोड़ निकाला जाय तो मात्र बुंदेली भाषा में ही उनका लेखन नहीं अपितु उनका काव्य विषय ही बुंदेलखंड, उसकी संस्कृति, उसका लोकाचार और उसका गौरवमय इतिहास रहा है।

मैं मित्र जी की तुलना ईसुरी से नहीं कर रहा और न ही उन्हें ईसुरी से बड़ा या छोटा बता रहा हूँ। मैं केवल यह बताने का प्रयास कर रहा हूँ कि ईसुरी के बाद बुंदेली भाषा और उसकी संस्कृति का कोई अन्य सच्चा वारिस है तो वे मित्र जी ही हैं। निश्चय ही मित्र जी ईसुरी के आगे के कवि हैं इसलिए उनका काव्य गुणात्मक दृष्टि से भले ही ईसुरी को लांघ न पाता हो लेकिन विषयों की विविधता और व्यापकता की दृष्टि से वे ईसुरी से आगे हैं।

'ईसुरी' अपनी श्रृंगार परक रचनाओं के लिए विशेष रूप से इसलिए भी जाने जाते हैं कि वे श्रृंगार में अपने पूर्ववर्ती रीतिकालीन कवियों तक के लिए चुनौती बनते हैं और सिद्ध करते हैं बिना किन्हीं लक्ष्य ग्रंथों और लक्षण ग्रंथों और बिना किसी शास्त्रीयता के वे लोक भाषा में श्रेष्ठ कविता को संभव कर सकते हैं। मित्र जी की विशेषता यह है कि उन्होंने सम्पूर्ण लोक संस्कृति को ही अपने काव्य का उपादान बनाया। उनकी कृति 'लौलैयाँ' और 'लोक गायनी' इस बात के सम्पूर्ण उदाहरण है। इन दोनों कृतियों के पूर्व की कृतियों पर स्पष्ट रूप से उनके समय के कवियों, यथा सुभद्राकुमारी चौहान, दिनकर, माखनलाल चतुर्वेदी और गुप्त जी आदि का प्रभाव है किन्तु धीरे–धीरे उन्होंने अपने को पूरी तरह बुंदेली संस्कृति के प्रति समर्पित ही नहीं कर दिया था अपितु वही उनकी सच्ची पहचान बनी। यहाँ पुनः इस बात को रेखांकित करना आवश्यक है कि ईसुरी के बाद मित्र जी मात्र ऐसे बुंदेली के कवि हैं जिन्होंने 'ईसुरी' की भाषा के प्रवाह को न केवल ठीक से पहचाना, स्वयं बुंदेली भाषा में अन्तर्निहित उस सहजता को भी पकड़ा जो केवल शब्दों के प्रयोग में नहीं आती। ढेर सारे ऐसे कवि हैं जिनकी कविताओं में बुंदेली भाषा के शब्दों की भरमार है, पर वह कविता आपके मर्म को नहीं छूती। कारण यही है कि केवल शब्दावली ही भाषा का निर्माण नहीं करती। हर भाषा का अपना विन्यास होता है, जिससे उनकी पहचान बनती है। बड़ा रचनाकार वही होता है जो उसे पहचानकर अपने व्यक्तित्व से उसे एक अलग रूप देता है, यह कारण नहीं है कि 'ईसुरी' के बाद यदि किसी अन्य बुंदेली कवि की कविताओं की स्मृति लोक सामान्य के जीवन में है तो वे मित्र जी ही हैं। कुछ ऐसे उदाहरण दृष्टव्य हैं जिनसे बुंदेली का आम पाठक परिचित है।

(१) बीरन हो रओ भोर, दूद सी डूबन लगी तरैयां।
बड़ी भुजाई ने बखरी कौ,
टल–टकोरा करलऔ।
माते जूके बड़े कुआँ कौ
मीठौ पानी भर लओ।।
मुरगन ने दई बाँग, डरैयन बोली स्याय चिरैयाँ।
बीरन हो रओ भोर, दूद सी डूबन लगी तरैया।।

(२) हँस दैलये झंझर किवार सजन,
ककना बनवा देव सोने के।
बारे देवरा ने दुलरी लै दई,
रुच गढ़दई सुगर सुनार। सजन...

राजा तीन वचन मोय हारियो,
तब निकरन दैहों दुआर। सजन...
'मित्र' सजन हँस गैलई
तो पै जाऊँ धना बलिहार। सजन...

(३) धीरे धरौ धन पाँव न कानन,
बिछियन की धुन सुन परै...।
वैसई चाल गयंद की, उर तइपै मद अवसार
न कानन बिछियन की धुन सुन परै।

(४) दूर खेलन जिन जाव नँनद बाई,
नैना लगाय कोउ लै जैहे।
सुबरन सी तोरी देइया
गाँव बसत बटमार, ननद बाई
नैना लगाय कोउ लै जैहे।

(५) गैलारे न चलियौ बा गैल चलत जी में पाँवन काँटे लागैं।
पगडंडी नई जइओ भूल, नई भरमत फिर हो डांगन डांगे।
गैलारे न चलियो।

(६) दोज के चंदा झंझरियन झाँकौ
मेरो तुमई से जियरा जुड़ात।

उपरोक्त सभी उदाहरण केवल इसलिए महत्वपूर्ण नहीं है कि उनमें बुंदेली लोक संस्कृति के बिम्ब है, वे इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि वे बुंदेली समाज की स्मृति का हिस्सा बन चुके हैं। साथ ही इन गीतों में बुंदेली के लोक गीतों की आत्मा को ही जीवित नहीं रखा गया, बल्कि पारम्परिक लोक छंदों का परिष्कार भी इनमें किया गाय है। जिन्होंने मित्र जी को सुना है वे जानते हैं कि मित्र जी का कंठ बहुत मधुर था और उन्हें लोक गीतों की संगीतात्मकता का बारीकी से ज्ञान था। इसीलिए इन छंदों में वे सभी प्रकार शामिल हैं जो न केवल पारंपरिक ढंग से गाये जा सकते है, बल्कि शास्त्रीय ढंग से भी उन्हें गाया गया है। वस्तुतः मित्र जी लोक सौन्दर्य के गायक कवि थे। इसीलिए बुंदेली लोक सौन्दर्य की जो छवियाँ उनकी कविता में मिलती है वे 'ईसुरी' के यहाँ भी नहीं है। इसी अर्थ में वे ईसुरी से बड़े नहीं, ईसुरी के आगे के कवि हैं। उनकी कविता में बुंदेली लोक संस्कृति एक विषय के रूप में प्रमुखता से सामने आती है। इसी कारण मित्र जी में श्रृंगार का भाव प्रधान है श्रृंगार प्रधान नहीं है। उनके यहाँ 'ईसुरी' की तरह का श्रृंगार का नख-शिख वर्णन न होकर, प्रेम के सौन्दर्य की प्रधानता है। कहना न होगा कि मित्र जी की कविता में जो औदात्य है वह बुंदेली की और कविता में दुर्लभ है।

मित्र जी के सम्पूर्ण रचनात्मक लेखन को मित्र रचनावली के रूप में प्रकाशित कराने का महती कार्य उनके योग्य पुत्र चन्द्रकान्त हयारण ने जो किया है, उसके लिए वे सचमुच बधाई के पात्र हैं। यह मात्र संयोग ही है कि मैं उनका कक्षा ३ से लेकर १२वीं तक सहपाठी रहा, लेकिन बाद में मेरी निकटता मित्र जी से अधिक रही। आज लगभग ४० वर्षो के बाद चन्द्रकान्त के कारण ही मुझे यह अवसर मिला कि मैं अपनी मातृ बोली के अत्यंत महत्वपूर्ण कवि के प्रति कुछ टूटे-फूटे शब्दों के द्वारा अपनी श्रद्धांजलि अर्पित कर सका। मुझे पूरा विश्वास है कि यह पुस्तक मित्र जी को सम्पूर्णता में समझने के लिए न केवल सहायक होगी, उनके काव्य व्यक्तितव के आकलन के लिए नये सिरे से प्रेरणा स्त्रोत का कार्य भी करेगी। मैं चन्द्रकान्त को पुनः इस महत्वपूर्ण कार्य के लिए बधाई देता हूँ और आशा करता हूँ कि पाठकों को यह रचनावली निश्चय ही न केवल पसन्द आयेगी वरन् इन रचनाओं के माध्यम से पाठक लुप्त होती जा रही लोक संस्कृति को अपने पास सहेज कर रख सकेंगे।

— १२९, आराधना नगर, भोपाल म.प्र. □

रजवाड़न कीं बातें

— शंकर दयाल खरे 'शंकर'

रै-रै मोखाँ याद आउतीं, रजवाड़न कीं बातें।
बड़े मजे सें दिन बीतत ते, ऐंन मजें से रातें।।
राजा-महराजा तौ भैया, महल-किलँन में राबें।
पूँछे बिना, बिना मरज़ी के, कोउ धसन नइँ पाबें।
बड़े-बड़े लै-लै कें आबें, भाँत-भाँत सौगातें।
रै-रै मोखाँ याद आउतीं, रजवाड़न की बातें।।
महलन के नौबत खानें में, रोज नौबतें बजबें।
तिथ-त्योहारन भीतर-बाहर, वंदनबारे बँदबें।
सानैयाँ सुन ऐसौ लगबै, जैसें आई बरातें।
रै-रै मोखाँ याद आउतीं, रज़वाड़न की बातें।।
राजा-रानी महलन-भीतर, ठाट-बाट सें राबें।
बन्न-बन्न कौ पैरें-ओड़ें, भाँत-भाँत कौ खाबें।
भरीं रॉय लडुआ-हलुआ सें, कुपरा औ परातें।
रै-रै मोखाँ याद आउतीं, रज़वाड़न की बातें।।
राजा सिंहासन पै बैठें, पगिया-कलगी धारें।
चौर-छत्र-डंडधारी सब, उनकी कोद निहारें।
मन बैलाबे होंय चुटकला, काँय कोउ काँनातें।
रै-रै मोखाँ याद आउतीं, रजवाड़न कीं बातें।।
मंत्री-अफसर-नौंकर-चाकर, सबखाँ राजा चाबें।
सब राजा कौ हुकम बजाबें, राज-काज चित लाबें।
हँसी-खुसी सें रॉय राज में, हिल-मिल सातउ जातें।
रै-रै मोखाँ याद आउतीं, रजवाड़न कीं बातें।।
बैठे चापलूस-दरवारी, राजा जू बतयाबें।
दिन खाँ राजा रात काँय सब, 'हवजू-हवजू' काबें।
काउ-काउ खाँ मिलें इनामें, घलें काउ में लातें।
रै-रै मोखाँ याद आउतीं, रजवाड़न कीं बातें।।

— अवस्थी बंगला के सामने, दूल्हाबाबा मार्ग,
नौगांव, जिला छतरपुर म.प्र.
□

बुंदेलखंड के संत कवि अक्षर अनन्य

– डॉ. श्रीमती वंदना जैन

महात्मा अक्षर अनन्य का जन्म सन् १६५३ (संवत् १७१०) के लगभग बुंदेलखंड के ओरछा नगर में हुआ था। इनकी बाल्यावस्था और तरुणाई का अधिकांश भाग ओरछा में ही व्यतीत हुआ। यद्यपि उनकी शिक्षा के बारे में अधिक उल्लेख नहीं मिलता, तथापि उनकी रचनाओं से यह पता चलता है, कि संस्कृति और हिन्दी भाषा पर उनका अधिकार था और उन्होंने अनेक धार्मिक ग्रंथों का अध्ययन किया था। अनन्य जी ने सोलह वर्ष की अवस्था में संसार से सन्यास ले लिया था। वे ओरछा में रहकर साधना किया करते थे। आरम्भ में वे शक्ति उपासक थे। जाति के कायस्थ होने के कारण अनन्य जी की साधना शक्ति पर लोगों ने आक्षेप भी किया किन्तु वे उससे विचलित नहीं हुए। धीरे–धीरे उनकी ख्याति दूर दूर तक फैल गयी। राजा पृथ्वी सिंह ने उन्हें अपना गुरू बना लिया। तब वे सेंवढ़ा में सिंधु नदी के तट पर, सनकौआ नामक स्थान पर रहकर साधना में लग गये। यह बात पृथ्वीसिंह को लिखे गये चिट्ठाओं से भी पुष्ट होती है।

एक बार बुंदेलखंड केशरी महाराज छत्रसाल ने अनन्य जी की ख्याति से प्रभावित होकर उन्हें पन्ना आने का निमंत्रण दिया। किन्तु अननय जी ने इसे स्वीकार नहीं किया। महाराज छत्रसाल और महात्मा अक्षर अनन्य के बीच हुआ, पत्र व्यवहार साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट है। महाराज छत्रसाल, अनन्य जी को गुरु का सा सम्मान किया करते थे। महात्मा अक्षर अनन्य न केवल, उच्चकोटि के साधक थे, अपितु एक सफल कवि भी थे। इतिहास लेखकों के अनुसार उनके ग्रन्थों की संख्या इकत्तीस है। इनकी रचनाओं में निर्गुण साधना के सिद्धान्तों का जैसा सफल और सहज चित्रण हुआ है, वैसा कबीर और सुन्दरदास तक की रचनाओं में दुर्लभ है।

अनन्य जी ने ज्ञानमार्गी साधना ले सिद्धान्तों को सरस शब्दावली में प्रस्तुत किया है। किन्तु अनन्य जी ने अपनी साधना का आरम्भ ही शक्ति की उपासना से किया था। अतः वे वैष्णव, शैव और शाक्त के चक्कर में नहीं पड़े। उन्होंने सबको समान भाव से देखा।

वे शुद्धज्ञान योगी थे। उनकी मान्यता थी कि ब्रह्म सगुण और निर्गुण दोनों है। ब्रह्म एक है, एक सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। जो लोग साधना पद्धतियों की निंदा करते हैं, वे भूले भटके लोग है। अनन्य जी स्थिर मन से किसी भी पद्धति से उपासना करने की स्वीकृति देते हैं। उनका कहना है –

जौन पक्षधारी आन देवन की निन्दा करें,
तिनकों अनन्य भाव कैसे ठहरात है।
शीत, वात, सूरज, अगिनी ही की आस करै,
पौन सौ जियत अन्य पानी सौ अघात है।
ऐसे सब देवन कौ आसरो न छूटै अरु,
निन्दै पुनि सब ही को कुमति की बात है।
एक ही को जानें सब एक ही को रूप मानें
'अक्षर अनन्य' सो अनन्यता की बात है।

सप्तशती का भाषानुवाद – दोनों ही अनुवाद ग्रंथ है। तीसरी रचना 'प्रेमदीपिका' में अनन्य जी की उपासना पद्धति ज्ञानमार्ग की ओर उन्मुख हो गई है। इस रचना में उद्धव–गोपी सम्वाद के माध्यम से निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप को प्रस्तुत किया गया है।

सेंवढ़ा में अनन्य जी की काव्य साधना में अधिक परिपक्वता आयी। इस काल की समस्त कृतियां पृथ्वीसिंह को सम्बोधित करके लिखी गयी है। इसका कारण यह भी है कि वे सेंवढ़ा में पृथ्वीसिंह को उपदेश देने आये थे। 'अक्षर अनन्य के चिट्ठा' और रचनाओं में अनन्य जी ने निर्गुण उपासना के सिद्धान्तों का जैसा स्पष्टीकरण किया है, वह ज्ञानमार्गी साहित्य में बेजोड़ है।

चिट्ठाओं के बाद की रचनाओं के बारे में विद्वानों का अनुमान है, कि वे रुहेरा ग्राम में लिखी गयी। इन रचनाओं में शुद्ध ज्ञानमार्ग की चर्चा है। इनमें ज्ञानयोग, ज्ञान–पचासा, विवेक तरंगिणी, सिद्धान्तबोध आदि रचनायें प्रमुख हैं। अनन्य जी की रचनाओं के अध्ययन से यह पता चलता है कि वे संसार को असार मानते हैं। इस संसार में माया का आवरण है, जिसके कारण जीव मायावश होकर, भ्रमवश माया की सिद्धि में लगे रहते हैं, परिणामतः दुख उठाते हैं, और अपने मूल स्वरूप को नहीं पहिचान पाते। वे कहते हैं कि वेद पुराणों में भ्रमना व्यर्थ हैं पहिले जीव को इन्द्रियों पर निग्रह करना चाहिए, तब आत्मतत्व के बारे में विचार करना चाहिए। जब तक आत्मतत्व पर विचार नहीं किया जायेगा, तब तक व्यक्ति यहाँ–वहाँ डोलता रहेगा। इस संसार सागर को वही व्यक्ति तैर कर पार कर सकता है, जो सच्चा अवधूत है। इस अवधूतता के बरे में उनका कहना है –

राग न दोष, न हर्ष न शोक, न बंधन मोक्ष की आस रही है।
बैर न प्रीति न हार न जीत, न गारि न गीत सुरीति ठई है।।
रक्त विरक्त न मान कछु, शिव शक्ति निरंतर जोति लही है।
पूरन ज्ञान अनन्य भजै, अवधूत अतीत की रीति यही है।

ईश्वर सर्वव्यापी है। वह आकाश के समान है – जैसा ऊपर है, वैसा ही नीचे भी। वह निर्गुण–सगुण है। ब्रह्मा, विष्णु और महेश, तीनों एक ही है। शिव और शक्ति में कोई पृथकता नहीं है। अस्तु, जिस रूप में भी हो सके, प्रभु की उपासना करना चाहिए। क्योंकि–

ज्ञान बिना वैराग्य धिक्, धर्म बिना गृहचार।
भक्ति बिना नर देह धिक्, कह अनन्य निराधार।।

इस प्रकार जीव के लिये – ज्ञान, धर्म और भक्ति तीनों तत्वों की आवश्यकता है। भवसागर से तैरने के लिए इनकी अनिवार्यता स्वतः सिद्ध है।

– ए/१५– प्रोफेसर कॉलोनी, आगर मालवा ☐

बुंदेली कलम के सिपाही – मुहम्मद बजीर

– डॉ. शंकर लाल शुक्ल

बुंदेली कलम के सिपाही, कविवर मुहम्मद बजीर न केवल एक सरस, सफल और सशक्त बुंदेली काव्य रचयिता ही थे, अपितु एक सफल विदूषक, नृत्यकार व अप्रतिम लोक कलाकार थे। भाग्य ने उन्हें एक नक्काल (भांड) के घर पैदा किया था। प्रतिभा कुल विशेष की धरोहर नहीं है। यह तो नियति की देन है, जिसे दे दे। प्रतिभा कभी छिपती नहीं है। वह जहाँ भी होगी अपनी अलग चमक दिखायेगी। कविवर मुहम्मद के साथ भी यही हुआ है।

प्रतिभा के धनी कविवर मुहम्मद बजीर का जन्म तत्कालीन दतिया राज्य के ग्राम नदीगाँव में सन् १९०६ में हुआ था। यह गाँव अब उत्तर प्रदेश की कोंच तहसील, जिला जालौन में आ गया है।

मुहम्मद बजीर प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। वे पढ़े लिखे न के बराबर थे। लिखने पढ़ने का सामान्य ज्ञान भर था। उन्होंने छोटे और गरीब घर में जन्म लेकर, अपने अनुभवों से बहुत कुछ पढ़ा था। दुनियाँ को बड़े निकट से देखा था। यही सब उनके बुंदेली काव्य की आत्मा बना। वे विशुद्ध बुंदेली में ही रचना करते थे।

अपने जीवन में वे बड़े सीधे–सादे दिखा करते थे। बुंदेली जैसे मुख से झरा करती थी। वे जैसी बुंदेली व्यवहार में बोल चाल में बोला करते थे वैसी ही कविताओं में अभिव्यक्त होती थी। उनकी वेशभूषा बहुत सादा थी। मलमल का कुर्ता, चूड़ीदार पायजामा, पैरों में बुंदेली शैली की देशी जूतियाँ, सिर पर काली किश्तीदार टोपी तथा हाथ में एक बेंत लिए छोटे कद, बोलती आँखें, गहरे गेहुँआ रंग वाला गोल चेहरा अपने आप में एक कविता था।

बुंदेली में लिखे गये इनके व्यंग्यों ने तत्कालीन दतिया राज्य के अनेक पदाधिकारियों की गतिविधियों में परिवर्तनकर दिया था। वजीर मुहम्मद स्वाभिमान के धनी थे। वे स्पष्ट वक्ता भी थे। स्पष्टवादिता बड़ी खतरनाक होती है। इसे लोग कम पसन्द करते हैं। अभावग्रस्त किन्तु स्वाभिमान से जीने वाले इस कवि ने सदैव सच्चाई का चित्रण अपने काव्य में किया है। दतिया नरेश इस सच्चे और स्वाभिमानी लोक कवि की खरी–खोटी प्रसन्न होकर सुना करते थे। पर्याप्त धनराशि देकर पुरस्कृत करते थे। जनश्रुति है कि मुहम्मद बजीर की बुंदेली रचनाओं से प्रसन्न होकर महाराज दतिया ने उन्हें एक हाथी दान में दिया था। मुहम्मद वजीर ने कुछ समय उस हाथी को अपने पास रखा फिर उसे खाना न खिला पाने के कारण एक दिन दतिया जाकर महाराज से कहा कि महाराज आपने हमें यह इनाम दिया है या सजा? मैं गरीब कवि खुद तो पेट भर नहीं पाता, इसका कैसे भरूं, कृपयावापिस ले लीजिय। और हाथी लौटा आये।

कविवर बजीर ने वैसे तो बुंदेली मं अनेक मुक्तक रचनायें विविध विषयों पर लिखी हैं किन्तु 'गारी' विधा की रचना में उन्होंने पर्याप्त ख्याति अर्जित की थी। अपने क्षेत्र के वे तत्कालीन 'ईसुरी' जैसे ही थे। उनका कंठ बड़ा सुरीला था। वे अपनी पुस्तकों को स्वयं प्रकाशित करवाकर एवं स्वयं गा गाकर बेचते थे। जब ये गाँव की गलियों में अपनी गारियों को गाते थे, तब गाँव की बहुयें व नवयुवतियाँ किवाड़ों की ओट में खड़ी होकर सुना करती थीं व इन पर मोहित हो जाती थीं।

सामान्य शिक्षित होने पर भी कवि बजीर ईश्वर प्रदत्त काव्य प्रतिभा से बुंदेली के अमर रचनाकार बनें। उनके काव्य में बुंदेलखंड के लोक जीवन की विविध रंग बिरंगी झांकियाँ भरी पड़ी हैं। कवि अपने जीवन में जो कुछ जीता है, भोगता है वही उसके काव्य की आत्मा बनती है। गंगा जमुना की धाराओं के समान उसकी अनुभवशीलता, वेगवती वाणी, कल्पनाशील होते हुये भी लोक हिताय होती है। यही कारण है कि जनजीवन के दुख–सुख, मिलन–वियोग सभी बजीर काव्य की गरिमा है।

१९वीं शताब्दी के सामाजिक जीवन और मानव मन की गाथा ही जैसे बजीर के सम्पूर्ण काव्य की आत्मा है। तत्कालीन शासन व्यवस्था में वस्तुओं पर 'कन्ट्रोल' लगा दिया था। आम आदमी बहुत दुखी व परेशान हो गया था। उस समय गरीबों की दशा बड़ी दयनीय थी। कवि बजीर ने जनता के कष्टों को इस प्रकार वाणी दी है –

पैलां तो गल्ला ने मारे, अब कपड़न ने मारे।
बड़िन बड़िन खों, लंकलाट है, छोटे फिरत उघारे।
भगती छोड़ी रघुनन्दन की, दुनियाँ हो गई सब रन बन की।
जैसे करम करे ते हम नें, आगें आये हमारे। अब ....।
जैसे तैसें लिख गऔ परचा, उतनौं मिलौ ना जितना खर्चा।
ईसुर सें अब ऐई अरज है, कैसें होंय गुजारे। अब ....।
काउ तिरिया पै धोती नइयाँ, कपड़ा पूंछत रम–सईंया।
लज्जा कैसें रहत गुसइयाँ, दद्दा के बखतन के कपड़ा। अब ....।
बनकर अपसर आ गये भाई, सिर पर हैट, गले में टाई।
करकें मूँछन की सफाई, बिन मूँछन की सबरी ले गये।
रै गये मूँछन वारे। अब कपड़न ने मारे।।

कृषक भारत का भाग्य विधाता है। उसका परिश्रम स्तुत्य है। उसकी सेवायें महान है। वह हमारी गरिमा और वैभव का सृष्टा है। उसका कार्य एक ऋषि की तपस्या से कम नहीं। कविवर बजीर ने कृषक के इसी तपस्वी रूप की स्तुति इन पंक्तियों में की है –

सबसें बज्जुर है छाती किसान की, खबर नईं रहै जान की।
ठनकौ काश्तकार कौ सीना, जैसेंई लागौ जेठ मईना।
टपकै एड़ी तलक पसीना, खाद कूरा में भूली सुद प्रान की।
खबर नहीं रहत जान की।

०००

गाड़ी भर भर कें लै जावै, चाहें लपट भलें लग जावै।
ठंडी चीज कभउँ नहिं खाबै –जौ हिम्मत तौ देखौ बलवान की।

खबर नहीं रहै जान की।
करकैं बैलन की सानी, रोटी लयें ठांड़ी सबरानी।
ठंडी चपिया में भर पानी, सूखी रोटी पै जिन्दगी जुवान की
खबर नई रहै जान की।।

बुंदेलखंड में गर्मी की ऋतु में खाया जाने वाला एक विशेष खाद्य व्यंजन है सतुआ। यह गीले चनों को सुखाकर, आटे की तरह पीसकर बनाया जाता है तथा शक्कर, गुड़ या नमक के साथ पानी में घोलकर खाया जाता है। यह बड़ा ही स्वादिष्ट एवं पचक होता है। यह बुंदेलखंड का मोहनभोग है। मूलत: ग्राम्यांचल में यह गरीब किसानों का भोजन है। 'सतुआ' की महिमा का गान कविवर बजीर के शब्दों में देखिये –

सतुआ लगै लुचई सें प्यारो।
थोरे में टाठी भर जावे, जौ चुटकी भर डारो।
भोरई प्रेम सें खायें, का बूढ़ौ का बारौ।
जल्दी घोरौ गुठला पर जैं, धीरे धीरें गारो।
जीव लगातईं नीचे जावे, जामें बड़ो उआरौ।
कयें बजीर जौ थोरौ खइयो, मानौं कहौ हमारौ।
खाबे में ही सहज लगत है, लगै पेट में भारौ।
सतुआ लगै लुचई सें प्यारौ।

'राष्ट्रीय एकता' की भावना को बजीर ने उस समय उभारा था जब इसकी सबसे अधिक आवश्यकता थी। राष्ट्रीय एकता पर लिखने वाले कवियों में वे अग्रगण्य थे –

हिलमिल कें चलियो भइया, यह है सान बसर की।
आपस में जौ फूट रई तौ, मिट जै शान बखर की।
ऐंसेई कै गये बड़े पुराने, पंडित सज्जन और सब स्याने।
वेद पुरान सबई जौईकत है, जैईं कैनात डुकर की।
भइया मजा नईं फूटन में, दुशमन खुशी होत है मन में।
जहँ बिगड़ी, बिगड़ी अनवन में।
पैलें पार बांद लो अपनी, फिर बांदो सागर की।
हिलमिल के रईयो भइया, जई में शान बसेर की।

ऊपर की कविता में "जौई कैनात डुकर की" में डुकर से संकेत गांधी जी से है। लोक कवि बजीर ने सभी विषयों पर लिखा है। श्रृंगार, शांन्त, व्यंग्य, विनोद, राष्ट्रप्रेम एवं भगवत भक्ति आदि। इन विविध विषयों पर यद्यपि उनकी रचनायें पर्याप्त प्राप्त होती हैं तथापि ऐसी सामग्री की भी कमी नहीं है जिसमें जाग्रति का संदेश है, दमन के प्रति विद्रोह का स्वर है तथा स्वतंत्रता के लिए उत्कंठ इच्छा है। वजीर का काव्य दिनों दिन लुप्त होता जा रहा है। इसके संकलन और संग्रह की आवश्यकता है। अपने समय में उन्होंने जो छोटी छोटी पुस्तिकायें छपवाई थी वे आज अनुपलब्ध है।

मेरे नगर भाण्डेर (दतिया) में मुहम्मद बजीर के छोटे भाई मुहम्मद नजीर रहते हैं जो मुहम्मद बजीर के बुंदेली गीत गांव गांव गाकर अपनी गुजर बसर करते हैं, ऊपर जिन गीतों को दिया है वे हमें उन्हीं से प्राप्त हुये हैं।

– भाण्डेर, दतिया □

डिबिया तरें

– मायूस सागरी

को हेर रव आज बिपता जरें, घर–घर है इंदयारौ डिबिया तरें

दरसन खों तरसत कृसक, नाज के
पइसा नइं पा रय स्रमिक काज के
धन्दे इतै होत हैं लाज के
का–का बताबें करम आज के
जी रय सब–अनरीतें मन में धरें, घर–घर है इंदयारौ डिबिया तरें।

कौनउं खों जगबे की नइयां ललक
तरुआ ठोकें चाय बज रय हलक
दुख कौ परौसी के नइयां कलक
कांसें तकें मीत, भींजी पलक
स्वारथ खों बांदें हैं सबरे गरें, घर–घर है इंदयारौ डिबिया तरें।

रिस्ते इतै लाब खों होत हैं
जो नइं करत, भाग खों रोत हैं
पापी इतै पुन्न की जोत हैं
जस–फसलें पाबे खों छल बोत हैं
सोसत है ज्ञानीं जतन का करें, घर–घर है इंदयारौ डिबिया तरें

मन–मन के जी रय, किए नीत–गुन
सुद–बुद में व्यापी है स्वारथ की धुन
असगुन करत और लेखत सगुन
हम खीब कयं मीत, मोरी बी सुन
पै कां सुनत कोउ, हम का करें, घर–घर है इंदयारौ डिबिया तरें।

बेचारी धन्दे खों तज रव धरम
रिस्बत खों अपसर परत है नरम
हो रय हैं डग–डग पै ऐसे करम
कैबे में लौ आत मोखों सरम
दानीं इतै ऐसे, निज घर भरें घर–घर है इंदयारौ डिबिया तरें।

सब रूल रय देस–डारी फरी
जनता करै का खुदइ अदमरी
नेतों खों सोसण की आदत परी
अपसर खों रिस्बत की झंडी हरी
जैंसौ जुरम ओकी ऊंसी दरें, घर–घर है इंदयारौ डिबिया तरें।

मूरख जगत और ज्ञानीं तनक
उनमें से कित्तौ खों मैं की सनक
कित्तौ खों उरजांयं रत है कनक
कित्तौ खों चुरियों की प्यारी खनक
किते अमास–आज पूनम करें, घर–घर है इंदयारौ डिबिया तरें।

– अजन्ता प्रेस, बण्डा, बेलई, सागर □

तपोभूमि बुंदेलखंड

– अशोक चतुर्वेदी

देश–देशन में अग्रवर्ती भारतवर्ष के मजाँयें विराजो बुंदेलखंड भारत कौ हृदय आय। बुंदेली धरती की परबूदा सब कोऊ जानत। पंजाब में प्रगटी बैदिक संस्कृति कौ पोषण करवे वारो और समृद्ध वैभव सम्पन्न बनावे वारौ सबसें पुरातन और सनातन अपनों बुंदेलखंड आय। भारत के मजाँ–मजें होवे के कारन बुंदेलखंड में पूरब–पश्चिम–उत्तर–दक्खिन के राजन कौ राज समय–समय पै रओ। बुंदेलखंड में इतै के जरिया–भुमियाँ स्वतन्त्र राजा सोउ रये। स्वतन्त्रता संग्राम में सफलता मिलती बेरा इतै के राजा महाराजन के प्रयास करे सें इतै की धरती के कछू भाग कौ नाम 'विंध्यप्रदेश' धरो गओ, फिर तल–बदल करकें ओइयै अड़ी–अड़ी कर दओ। कछू धरती उत्तरप्रदेश में, कछू धरती मध्यप्रदेश में मिला दई, और अब तौ सरकारी लिखा पढ़ी में बुंदेलखंड नाम की कौनऊँ धरती हैई नइँयाँ। सो जे सब राजनीति की बातें आँयें। इन सबसें इतै के रैवे वारन पै कौनऊँ फरक नई परत, और ना कभऊँ परोआय। रोटी–बेटी, खावो–पीवो, बोली–बानी, पैरवो–ओढ़वो, चाल–चलन, भइया–वन्दी, देवी–देवता, पूजा–रचा जैसी सनातन सें रई आई, सो अबै है। बेरा–बेरा पै सबई के सुबीदे के लानें ई में सुधार जरूर होत रओ।

'चन्दन विष व्यापत नहीं, लिपटे रहत भुजंग' ऋषि–मुनियन के तप के प्रताप सें बुंदेलखंड की संस्कृति और धराधाम चन्दन हो गई। जब–जब जो–जो कोऊ ई धरती पै आओ ऊ के ऊपर इतै की संस्कृति कौ प्रभाव अवश परो। सनातन काल सें इतै की वैदिक संस्कृति के विश्वव्यापी प्रभाव की काँ लौ कइये, आज सें २१९२ वर्ष पुराने (१८५ ई.पू.) शुंग राजवंश की चरचा करत भये पुरातत्ववेत्ता डॉ. कृष्णदत्त वाजपेई जू नें खोज करकें लिखौ कै यवन राजा 'अन्तलिकित' कौ पठाऔ राजदूत 'हेलियोदोर' विदिशा आओ, उतै प्राचीन विष्णु मंदिर के सामनें एक गरुड़ध्वज स्तम्भ स्थापित करो। ई स्तम्भ पै लिखे ब्राह्मी लेख सें जौ सब पतौ लगौ। हमाई पावन पुनीत संस्कृति और ई तपोभूमि की तौ जेई परबूदा है। जीनें इयै जानो, ओई ने माँनो।

वैदिक देवता सूरज नारायण सब प्रकार की ऊर्जा के मुख्य श्रोत हैं। उनकौ समदर्शी प्रभाव जग जानत है। बुंदेलखंड में सूर्यदेव के प्राचीन मंदिर ठौर–ठौर पै देखे जा सकत। कऊँ–कऊँ बालाजी मन्दिर के नाम सें सोऊ इनकी प्रसिद्धि है। श्रीकृष्ण और जाम्बवती नन्दन 'साम्ब' कौ चर्मरोग (कुष्ठरोग) सूर्य नारायण की तपस्या से ठीक भओ तो। सूर्य नारायन की तपस्या के तीन स्थान १. कोणार्क (उड़ीसा) २. कालपी (उ.प्र. बुंदेलखंड), ३. मुल्तान (पाकिस्तान) में बताये गये। तपोभूमि बुंदेलखंड की धराधाम पै विद्यमान श्रीकृष्ण गंगा जू (यमुना जी) के दक्खिनी तट (कालपी 'मदरालालपुर' जनपद जालौन उ.प्र. बुंदेलखंड) पै साम्ब नें षट्सूर्योपासना विधान से आराधना करी, सो साम्ब की काया सोवरन की हो गई ती। षट् सूर्योपासना विधान के छह कुण्ड उतै सूर्य नन्दिनी यमुना जी में अबै विद्यमान है। बेई यमुना मइया है, बोई ठौर है, तपोभूमि बुंदेलखंड की बेई परबूदा है, अकेलें समय के फेर सें ऊ ठौर कौ नाम बदल गओ।

वैदिक देवता अग्निदेव कौ प्रभाव भी तपोभूमि बुंदेलखंड में सनातन काल सें विद्यमान है। अग्निदेव में ऐसी शक्ति है, कै जौनघरी जरूरत होवै, ओई घरी परचालौ। अग्निदेव के जैसे साके अपने पुरखा गाउत रये, उनकी ऊ सी अई परबूदा आज हमाये आँगें है। इनकौ सनातन सरूप दर्शन वेदन में बखानो गओ। संसार के सबसें प्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद' के पैले मन्त्र में सबसें पैला अग्निदेव कौ सुमिरन करो गओ –

।ऊँ।। अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् होतारं रत्नधातमम्।।

वर्णित वेद मन्त्र में अग्निदेव की स्तुति के संगै यज्ञ कौ महत्व दर्शाओ गओ। यजुर्वेद में यज्ञ व्यवस्था कौ समृद्धशाली दर्शन और लोकमंगल कौ भाव, कूट–कूट कै भरो है –

।ऊँ।। समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् अस्मिन्हव्या जुहोतन।।

(यजुर्वेदी अ. ३ मन्त्र–१)

भावार्थ – 'हे मनुष्यों! तुम लोग वायु, औषधि और वर्षा जल की शुद्धि से सबके उपकार के अर्थ, घृतादि शुद्ध वस्तुओं और समिधा अर्थात् आम्र वा ढाक आदि काष्ठों से, अतिथि रूप अग्नि को नित्य प्रकाशमान करो। फिर उस अग्नि में होम करने के योग्य पुष्ट, मधुर, सुगन्धित अर्थात् दुग्ध, घृत, शर्करा, गुड़, केशर, कस्तूरी आदि और रोग नाशक जो सोमलता आदि सब प्रकार से शुद्ध द्रव्य हैं, उनका अच्छी प्रकार नित्य अग्निहोत्र करके सबका उपकार करो।''

यजुर्वेद में वर्णित यज्ञ व्यवस्था कौ विधि विधान सें सम्पादन जौन धरापै करो गओ, यजुर्वेद की समग्र समृद्धि जौन धरापै फलीभूत हो रई, बा धराधाम अपनों बुंदेलखण्ड आय। यजुर्वेद विज्ञान के परम मर्मज्ञ विद्वान ऋषि जनन नें बुंदेली धराधाम पै विद्यमान 'पहूज' और 'सिन्ध' नदी के संगम पै 'पद्मावतीपुरी' (पवाँया 'ग्वालियर' म.प्र. प्रसिद्ध नागवंश की प्राचीन राजधानी) के नीरें आहूत विशेष धर्मसत्र के मंगल मुहूर्त में – यजुर्वेद विज्ञान – परम प्रभावशाली, सर्वव्यापी, लोक मंगलकारी बनावे कौ संकल्प लओ, और बुंदेलखंड की लोक संस्कृति यजुर्वेदमय बनाई। यजुर्वेद विज्ञानी परम मर्मज्ञ विद्वानन की विद्वता दिग्दिगन्त में दैदीप्यमान करवे वारी, उनें कीर्तिवान बनावे वारी, तपोभूमि, बुंदेलखंड आय। नूतन वेद विज्ञानी विद्वानन ने प्राचीन बुंदेलखंड कौ परिचय ई प्रकार सें दओ–

यजुर्वेदेन हुतिर्हवनं यत्र स यजुर्हुति देशे विशेषः

अथ च हूयते यस्मिन्न सौ जुहौति देश विशेषः।।

अर्थात – 'जहाँ पर यजुर्वेद की ऋचाओं से यज्ञ हवन किया जाय उस देश को 'यजुर्हुतिः' वा 'जुहौति' कहते हैं।''

यजुर्वेदीय कर्मकाण्ड के लब्धकीर्ति प्रबुद्ध विद्वानन की विपुलता के कारण बुंदेलखण्ड कौ प्राचीन नाम – तपोवन–यजुर्हुतिः–यजुर्होति – जुहौति–जुजाहुति–जुजौति–जिजौति भी कओ जात। यजुर्वेद विज्ञानी गूढ़ज्ञान के, ज्ञानात्रयधाम मंजुल महात्म्य १. चित्रकूट, २. कालिंजर, ३. अघमर्षण जैसे तीन पुनीत धाम जौन धरा पै विद्यमान हैं बा तपोभूमि बुंदेलखंड आय। वैदिक काल में 'तपःस्थल' के रूप में प्रसिद्ध कालिंजर तीर्थ में भगवान सदाशिव 'नीलकण्ठेश्वर' महादेव की महिमा सब कोऊ जानत। श्री चित्रकूट धाम कौ प्रभाव बखान राजापुर (चित्रकूट) में जन्मे गुसाँई तुलसीदास जू नें श्री रामचरित मानस में करो –

'चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाई।।'

तपोभूमि 'अघमर्षण' (वर्तमान 'अभरखन' धार–कुण्ठी–वेधक, सतना म.प्र. में विद्यमान तीर्थ स्थल) की महिमा श्रीमद्‌भागवत् महापुराण के छठवें स्कन्ध के चतुर्थ अध्याय में श्लोक २०, २१ वर्णित है–

'तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्ग प्रजापतिः।
विनध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद् दुष्करं तपः।।२०।।'
तत्राधमर्षणं नाम तीर्थ पापहरं परम्।
उपस्पृश्यानुसवनं तपसातोषयद्धरिम्।।२१।।

भावार्थ – अपने पिता श्री ब्रह्मा जी की ही भाँति प्रजा की सृष्टि हेतु संकल्पित – ''प्रजापति दक्ष ने देखा कि सृष्टि बढ़ नहीं रही है तब उन्होंने विन्ध्यांचल के निकटवर्ती पर्वतों पर जाकर बड़ी घोर तपस्या की। वहाँ एक अत्यन्त श्रेष्ठ तीर्थ है। उसका नाम है 'अघमर्षण' वह सारे पापों को धो बहाता है। प्रजापति दक्ष उस तीर्थ में त्रिकाल स्नान करते और तपस्या के द्वारा भगवान की आराधना करते।''

भक्त के भाव कौ मान रखवे वाले भगवान की भक्त वत्सलता सब कोऊ जानत। गुसाँई तुलसीदास जू की रामभक्ति कौ भाव समझ कें श्रीकृष्ण जू नें, श्रीराम जू कौ वेष धारण करोतो जौ लोक प्रसिद्ध है –

कहा कहों छवि आज की, भले विराजे नाथ।
तुलसी मस्तक जब नवै, धनुषवाँण लेव हाथ।।
कित मुरली कित चन्द्रिका, कित गोपिन के साथं।
अपने जन के कारणें, कृष्ण भये रघुनाथ।।

भक्त वत्सल भगवान नें अपने भक्त की हठ पूरी करी। भक्तन की हठ पूरी करवे वारौ एक चमत्कार और तपोभूमि बुंदेलखंड में लोक प्रसिद्ध है – वैदिक धर्म कीर्ति वर्धक और लम्बौ तिलक लगा कैं मुगल दरवार में क्षत्रियन कौ गौरव बढ़ावे वारे, ओरछा नरेश महाराजा मधुकरशाह बुंदेला जू की कृष्ण भक्ति और उनकी महारानी गणेश कुँवरि जू की रामभक्ति भाव वश, वृन्दावन सें जुगलकिशोर जू और अयोध्या सें भगवान राम जू ओरछा में पधारे। महारानी गणेश कुँवरि जू पुष्य नक्षत्र में अयोध्या सें ओरछा तक पैदल चल कैं अपने संगै भगवान राम जू ल्याँईं। ऊ धरी पै तपोभूमि बुंदेलखंड में यज्ञोपवीत जैसी अलंकृत वेत्रवती गंगा (बेतवा नदी) के उत्तरी पार पै बसो ''औड़छा'' (ओरछा) वृन्दावन और अवध बनगओ तो। भक्तिभाव कौ लोकव्यापी स्वर गूँज उठो तो–

बैठे जिनकी गोद में, मोद मान विश्वेश।
कौशिल्या सानीं भईं, रानीं कुँवरि गनेश।।

श्रीकृष्ण भक्त महाराजा मधुकरशाह जू नें अपनीं महारानी की रामभक्ति के भाव कौ प्रभाव अपने हृदय में धर कें बड़ी हुलास सें पूरे राज्य में मंगल महोत्सव मनाओ, अयोध्या नरेश श्री रामचन्द्र जू कौ ओरछा में राजतिलक करवे कौ डंका बजवा दओ। राजतिलक के मंगल मुहूर्त की धरी पै देश–देशन सें वेदान्ती, आचार्य, शास्त्री,, कर्मकाण्डी विद्वान पधारे, सबनें उत्साह मानो। वेद मन्त्रन की ध्वनि सें दिग्दिगन्त गूँज उठो। एई धरी पै बुंदेला राजवंश के कुल पुरोहित जू नें महारानी गणेश कुँवरि जू के संगै गाँठ जोर विराजे महाराजा मधुकर शाह जू सं बुंदेल वंश की रीति बताई कै – गंगा जू के किनारें विन्ध्याचल पर्वत पै बिराजीं मइया विन्ध्यवासिनी जू सें, उनके परम कृपापात्र भक्त, बुंदेला वंश संस्थापक, पंचमविनध्येला महाराजा हेमकरण जू नें, जौन तलवार पाई ती, बेइ तलवार धारण कराकें ओरछा के महाराजा कौ राजतिलक करवे की परम्परा है। अब धनुष धारण करें श्री रामचन्द्र जू के राजतिलक के मंगल मुहूर्त में, उनें तलवार कैंसें धारण कराई जाय। अब बुंदेला कुल परम्परा कौ का हुइयै। और बुंदेला वंश की आन ई तलवार कौ का हुइयै। जा सुनकें महाराजा जू और महारानी जू धर्म संकट में पर गये कै अब कैसौ करें। भक्त वत्सल भगवान श्री राम जू नें अपने भक्तन की भावना कौ पूरौ–पूरौ मान करत भये बुंदेला वंश की आन तलवार अपने कर में धारण करी। मंगल गीत गाये गये, धूम–धाम सें लोकाचार भओ, भक्ति उल्लास के परमानन्द सें लोक कल्याणकारी महोत्सव मनाओ गओ। ऊ घरी सें महारानी गणेश कुँवरि जू के रामलला ओरछा के महाराजा हो गये और 'रामराजा' के नाम सें जग में प्रतिष्ठा पाई। जितै देवीभक्त 'दिमान हरदौल जू की पीठ' और उनकी सिद्ध 'कालीमाई' कौ श्री विग्रह वर्तमान में विद्यमान है – ओई तपोभूमि ओरछा में रामराजा भगवान अपने आयुध 'ढालतलवार' और 'धनुष वाँण' संगै–संगै धारण करें आज भी विराजमान हैं, दर्शनीय है।

तपोभूमि ओरछा में भगवान राम कौ राजतिलक होवे के बाद बुंदेला वंश में लोकव्यापी रामराज्य बनावे कौ संकल्प महाराजा चम्पतराय बुंदेला जू के परम पराक्रमी कुँवर महाराजा छत्रसाल जू ने तपोभूमि पन्ना में होकें पूरौ करो। जौ बोई पन्ना आय जितै बुंदेला कुलकीर्त वर्धक महाराजा चम्पतराय बुंदेला जू पै कृपा करकें भगवान जुगल किशोर जू ओरछा सें आन पधारे।

(ओरछा में जुगलकिशोर भगवान के प्राचीन मंदिर स्थल पर वर्तमान में देववाणी संस्कृत विद्यापीठ विद्यमान है।) तपोभूमि बुंदेलखंड में आज भी जन–जन कौ लोक व्यापी स्वर – ''पन्ना के जुगलकिशोर हो, मुरलिया में हीरा जड़े हैं'', गुंजायमान है। जौ सब भगवान श्री कृष्ण की महिमा के संगै–संगै तपोभूमि पन्ना के हीरन कौ महत्व भी दर्शाउत है। महाराजा छत्रशाल जू के तप प्रभाव सें पन्ना की धरती में हीरा पर गये ते। उन हीरन की खुदाई तौ आज लौ हो रई, जी के भाग्य में जैसे पर जाँयें।

महाराज छत्रशाल जू नें पूर्ण स्वराज्य कौ संकल्प लैकें सच्चौ न्याय होवे की व्यवस्था बनाई ती। गाँव–गाँव में जात–जात में पंच–सरपंच, माते–मुखिये बनाये। निष्पक्ष न्याय करवो पंचन की परम पुण्यकारी तपस्या है। एसौ सच्चौ विश्वास जन–जन के मन में उपजाओ। पंचायत करवे के लानें गाँव–गाँव में 'अथाँई' बनवाई। राजधर्म पालन और पंचायती धर्मपालन, सत्य की तौल तौलवे के उद्देश्य सें महाराजा छत्रशाल जू नें अपनी पंचायती न्याय व्यवस्था में अखाड़े के सन्त महात्मा सोऊ न्यायकारी (न्यायाधीश) के रूप में प्रतिष्ठित करे ते। बुंदेलखंड की बड़ी पंचायत करवे के लानें राज्य भर के विद्वान, गुर्णी, पंच और अखाड़े के सन्त महात्मा एक स्थान पै स्थाई रूप सें वसाये।

अपने राज की तरफ सें उनके रैवे की, सुविधाजनक व्यवस्था बनाई। वौ स्थान 'छत्रपुर' के नाम सें जग में जानो गओ। जोई छत्रपुर आज कौ 'छतरपुर' आय। ऊ समय के अखाड़े के संत महात्मन के स्थान इतै आज भी दर्शनीय हैं। (एई छतरपुर जनपद में केन नदी के किनारें मनियाँगढ़ के जरिया–भुमियाँ चन्देलवंशीय महाराज ने अपने तपोबल सें खजुराहो में विश्व प्रसिद्ध मंदिर सोऊ बनवायेते। जौ सब आज भी दर्शनीय है।)

इत यमुना उत नर्मदा, इत चम्बल उत टोंस।
छत्रशाल सों लरन की, रही न काहू होंस।।

जौन पंचायत कौ फैसला गाँव के पंच–सरपंच ना कर पावें उन पंचायतन कौ फैसला छत्रपुर (छतरपुर) की बड़ी पंचायत में होवै। पंच–सरपंच, माते–मुखिया, सभा–मंत्री, अखाड़े के संतमहात्मा–महाराज जे सब परमप्रतापी महाराजा छत्रशाल जू की पंचायती न्याय व्यवस्था के न्यायकारी (न्यायाधीश) आयें। महाराज छत्रसाल जू की तपोनिष्ठ न्याय व्यवस्था सें बुंदेलखंड में धर्मराज हो गओ। रामराज्य कौ संकल्प साकार हौन लगो महाराजा छत्रसाल जू के समय की अथाँई (ग्रामीण न्याय पंचायत स्थल) आज भी गाँव–गाँव में विद्यमान हैं। तपोभूमि 'छत्रपुर' (छतरपुर) में परम पराक्रमी धर्मात्मा महाराजा छत्रशाल जू द्वारा स्थापित 'बुन्देली न्यायपीठ' (बड़ी पंचायत/छत्रशाली पंचायत/केन्द्रीय पंचायत/बुंदेलखंड की सर्वाच्च पंचायत/छतरपुरी पंचायत) कौ स्थान 'छत्रशाली चौतरा' कौन ठौर पै विद्यमान स्थापित हतो, खोज करवे की जरूरत है। ऊ न्यायपीठ की वेदी पै, कनक के बने शुद्ध घी के दिया उजयार कें, उनके रामराज्य कौ संकल्प पूरौ करवे के लानें हम सब जने चैतन्य हो जाँयें।

कालपी में जन्मे वेद व्यास जू और उनके पैल सें लैकें गुसाँई तुलसीदास जू नें, गुजर्रा (दतिया म.प्र.) में सम्राट अशोक के शिलालेख के माध्यम सें, श्री वीरेन्द्र केशव साहित्य परिषद टीकमगढ़, लोकवार्ता परिषद टीकमगढ़, सागर विश्वविद्यालय की 'बुन्देली पीठ', बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झाँसी और बुंदेली विकास संस्थान बसारी छतरपुर, बुंदेलखंड के विद्वानन नें सब कछू कै लाओ, सो–पढ़वे, सुनावे, समझवे और गुनवे बौ सब हमाये साँमें है। अब कैबे की कछू ज़रूरत नईं रै गई...।

☐ अब जरूरत है – दिग्दिगन्त में देदीप्यमान बुंदेलखंड कौ, युग–युगीन मंजुल महात्म्य, लोकव्यापी बनावे की।

☐ अब जरूरत है – वेद व्यास जू के दिव्य ज्ञान सें, अपने ज्ञान कौ दिया उजयारवे की।

☐ अब जरूरत है – महाराजा छत्रशाल जू जैसे बुलन्द हौंसला सें, पंचायती न्याय में चंतन्यता ल्यावे की।

☐ अब जरूरत है – वीरांगना महारानी लक्ष्मीबाई जू जैसी दृढ़ इच्छाशक्ति सें अन्याय कौ प्रतिकार करवे की।

☐ अब जरूरत है – लोक संस्कृति के रक्षक, बसारी महोत्सव जैसे मंगल महोत्सव मनावें की।

–५१, महावीर नगर, गरौठा, झांसी, उ.प्र.

बुंदेली चौकड़ियाँ

– डॉ. एन.डी. सोनी 'विवेक'

तन की बखरी रत भारे सें, मन अपने उवारे सें।
तन के बिना कछू नईं होनें, सब कछू तन धारे सें।
तनईं सें भोगत सुख संसारी, सटत न मन मारे सें।
कत 'विवेक' मन फिरत हिरानों, तन बखरी जारे सें।

तन सें सटत सबई के स्वारथ, देह न जात अकारथ।
देह बिना नईं इतै गुजारौ, कृष्ण होंय चाय पारथ।
करत दुष्करम पापी देइया, जेइ करत–परमारथ।
कत 'विवेक' कछु ऐसौ करियौ, जनम न जाय अकारथ।

विधना काम करो हत्यारौ, फिर जौ सूका पारो।
बिल बिलात फिर रये नर नारी, दै बुखार ने मारो।
धरम–करम कर रऔ सब कोऊ, तऊ न पानी डारो।
कत 'विवेक' सूका पारे सें, तो खाँ कौन उवारो।

आगई ऐसी कठन समैया, रुको धरम कौ पइया।
है निरपेक्ष धरम सें शासन, बिन पतवार की नइया।
धरमराज बन बैठे नेता, द्रोपदी चीर खिंचइया।
कत 'विवेक' कोउ कालों खेहै, जा अधरम की नइया।

बाँछें कलजुग की अब खिल रईं, धरम की चूलें हिल रईं।
हत्या, चोरीं, लूट, डकैतीं, नइ बहुएं नित जल रईं।
भ्रष्याचार चरम पै पोंचो, जाँ–ताँ गोलीं चल रईं।
नइयाँ पूँछ 'विवेक' ज्ञान की, मूरख पदवीं मिल रईं।

बिलिया प्रजातंत्र की बुल रई, कलई सबई की खुल रई।
कुर्सी के भूंके नेतन की, नियत दिनै–दिन डुल रई।
बिना नीत बिन धरम के राजन, जनता जी में जल रई।
घिउ चुपरी सब नेता खा रये, जनतै रूखी मिल रई।

हो गओ राज पंचायत केरौ, नये नेतन कौ फेरौ।
एक सें एक अपढ़, आतंकी, पंचन सें है भेरौ।
पढ़ो–लिखो तबका सब हो गऔ, पंचायत कौ चेरौ।
फांके करत मिली सरपंची, अब कोठी पै डेरौ।

– राजमहल के पास, टीकमगढ़ ☐

बुंदेली ख्यालों में अनुभूति सौन्दर्य

— डॉ. श्रीनारायण पाठक

साहित्यशास्त्रियों ने काव्य के दो पक्ष स्वीकार किये हैं — "एक अनुभूति या भावपक्ष और दूसरा अभिव्यक्ति या कलापक्ष। यद्यपि दोनों ही एक–दूसरे से सम्बन्धित है तथापि प्रधानता भावपक्ष को ही दी जाती है।"[१] अनुभूति को आत्मा और निपुणता या अभिव्यक्ति को शरीर माना गया है।

बुंदेलखंडी ख्यालकारों ने अपनी रचनाओं में साहित्य और लोकसाहित्य, दोनों में काव्य की अनुभूति और कला पक्षों का सुन्दर समन्वय किया है। ख्यालसाहित्य एक लोक साहित्य होने के नाते हम ख्यालसाहित्य को लोक साहित्य की दृष्टि से ही अवलोकित कर रहे हैं, जिसमें बुंदेली ख्यालों के अनुभूति सौन्दर्य को विशेष रूप से उधृत करने का प्रयास किया जा रहा है।

अनुभूति सौंदर्य — 'भाव' काव्य का व्यापक तत्व है। इसका सम्बन्ध अनुभूति और हृदय की रागात्मिकता से है। ये दोनों तत्व प्रकृति प्रदत्त होते हैं और इनका वर्णन नहीं होता। हां, अनुभव और निपुणता के द्वारा इनका परिमार्जन अवश्य होता है, जिससे एक ही अनुभूति विभिन्न रूपों में प्रकट होती है। अपने संकुचित अर्थ में भाव अपरिपक्व रस को कहते हैं, किन्तु व्यापक अर्थ में मन के विकार मात्र को भाव कहा जाता है।[२] काव्य में वर्णित भावों में उदात्तता, गहनता, विविधता और मार्मिकता आदि गुणों के समावेश से अनुभूति पक्ष तो उत्कृष्ट बनता ही है, अभिव्यक्ति में भी चार चाँद लग जाते हैं। सुविधा की दृष्टि से ख्यालसाहित्य के सौष्ठव का परीक्षण हम विविध भावों का निरूपण एवं रस योजना के अन्तर्गत कर रहे हैं।

विविध भावों का निरूपण — साहित्य और लोकसाहित्य दोनों लोकानुबन्धी हैं। साहित्य के बीज लोकजीवन, संस्कृति और साहित्य में अनादिकाल से बिखरे हैं।[३] साहित्य लोकसाहित्य से सदैव प्रेरणा लेता रहता है। दोनों में साम्य होते हुए भी कुछ वैषम्य है जो रसास्वादन और अभिव्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है।

सिद्ध ख्यालकारों के ख्याल का आनन्द वही श्रोता ले सकता है, जिसे छन्द, व्याकरण और अलंकार शास्त्र का अच्छा ज्ञान हो। ऐसे ख्याल को हम स्वाभाविक ख्याल नहीं कह सकते। यह तो माली निर्मित उस क्यारी की तरह है जिसके पौधे कैंची से कतरकर ठीक किये रहता है। और जो खास तरह की रुचि से विवश होकर सजाई जाती है। ग्रामगीत (ख्याल) तो प्रकृति का वह उद्यान है जो जंगलों में, पहाड़ों पर, नदी तटों पर स्वतंत्र रूप से विकसित हुआ है। वह अकृतिम है। सिद्ध ख्यालकारों के ख्याल किसी बंगले का वह फूल है जिसका सर्वस्व माली है। पर ग्रामगीत वह फूल है, झरने जिसको पानी पिलाते है, मेघ जिसे नहलाते है, सूर्य जिसकी आँखें खोलता है, मन्द–मन्द समीर जिसे झूले में झुलाता है, चन्द्रमा जिसका मुँह चूमता है ओस जिस पर गुलाब जल छिड़काती है। उसकी समता बंगले का कैदी फूल नहीं कर सकता।[४]

लोकगीतों में भाव ही प्रधान होता है और आत्मीय भाव इन गीतों की आत्मा है। "लोकगीत विद्यादेवी के बौद्धिक उद्यान के कृत्रिम फूल नहीं, वे मानों अकृत्रिम निसर्ग के श्वांस–प्रश्वास है। वे भारी विद्वता के भार से सूक्ष्म बुद्धि की नली के हजारे से छूटने वाले तर्क–वितर्क का फौब्बारा नहीं। अज्ञात मलयाचल से आने वाली सुगंधित लहरियों से उद्‌भूत हृदय की सूक्ष्म तरंगे हैं। वे सहजानन्द में से ही उत्पन्न होने वाली तथा श्रुति मनोहरत्व से सहजानन्द में ही विलीन हो जाने वाली आनन्दमयी गुफाएँ हैं।"[५]

बुंदेली ख्यालकारों का अनुभूति पक्ष बुंदेली संस्कृति और सभ्यता का परिचायक है। अतः लोकजीवन की अनुभूतियों और क्रिया–व्यापारों को उन्होंने अति निकट से देखा और तद्नुसार उन्हें अपने लोक काव्य के द्वारा अभिव्यक्ति प्रदान की है। बुंदेली साहित्य के भाव पक्ष में भारतीय संस्कृति, धर्म और लोकविश्वास का अनोखा स्पन्दन है।

भाव का रस के साथ सीधा सम्बन्ध है और भारतीय काव्यशास्त्रियों के अनुसार रस को काव्य की आत्मा माना गया है। आचार्य मम्मट ने रस निरूपण का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि "लोक में रति आदि रूप स्थायी भाव के जो कारण कार्य और सहकारी होते हैं, यदि वे नाटक या काव्य में प्रयुक्त होते हैं तो क्रमशः विभाव, अनुभाव और संचारी भाव कहलाते है और उन विभाव आदि (रूप, कारण, कार्य तथा सहकार्यो के योग से) व्यक्त वह स्थायी भाव रस कहलाता है।"[६]

व्यावहारिक जीवन में मनुष्य को जिस प्रकार की अनुभूति होती है, उसको ध्यान में रखकर आचार्य मम्मट ने स्थायी भाव को आठ प्रकार माने है — रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, घृणा और विस्मय।[७] इसके अतिरिक्त कुछ आचार्यों ने निर्वेद नवाँ स्थायी भाव माना है[८] तथा आचार्य विश्वनाथ ने वात्सल्य को दसवां रस माना है।

बुंदेली ख्यालकारों की कृतियों में रस–परिपाक से सम्बन्धित विभिन्न अवस्थाओं का विवेचन हुआ है। उनके ख्यालों में निर्देशित दस स्थायी भावों और उनसे सम्बन्धित रसों के साथ भगवतभाव तथा भक्तिरस का निरूपण अधिक हुआ है। उनके ख्याल साहित्य में मधुर रस की अजस्त्र धारा के साथ ही लोक साहित्य में श्रृंगार रस का निरूपण विस्तार से हुआ है। साधारणतया लौकिक रति को श्रृंगार और अलौकिक रति को मधुरा भक्ति की संज्ञा दी गई है। हम यदि अलौकिक तत्व को छोड़कर लौकिक दृष्टि से विचार करें तो हमें उनके ख्यालों में श्रृंगार रस का प्राधान्य दृष्टिगोचर होता है। अन्य रसों को भी उनके साहित्य में स्थान मिला है। बुंदेली ख्याल साहित्य में भावयोजना का विवेचन इस प्रकार दृष्टव्य है।

ख्यालों में उपर्युक्त भावों के अतिरिक्त नव रस की भी समुचित योजना पाई गई है, इसका विश्लेषण इस प्रकार कर रहे हैं–

श्रृंगार – रति स्थायी भाव का रस श्रृंगार है। इसे रसराज भी कहा जाता है। इसके आलम्बन विभाव नायक–नायिका तथा चन्द्रमा, चन्दन, आदि उद्दीपन है।

ख्याल साहित्य में दाम्पत्य रति का सुन्दर चित्रण हुआ है। निम्नलिखित ख्याल इसका एक सुन्दर उदाहरण है –

लख आवत प्रातहि मोहन को मुसकाय कियो प्रिय स्वागत है।
रसनाय रसे कह चन्द्रमुखी किहि को छवि सुन्दर लागत है।।
कर से कर थाम लियो हित से ढिग दर्पन जा पहुँची चलकैं।
लखिये किहि ओर परी पटियाँ किहि ओर परी विथरी अलकैं।।
कह चन्द्रकला चमकैं दमकैं कहूँ मोरन पंख रहे हलकै।
कह ध्यानहि में दृग स्वच्छ कहे कहँ आलस नैनन में झलकैं।।
युग ओरन के युग भाव सने निश बीत गई, सब जागत है।

उक्त ख्याल अंश में राधा अपने प्रीतम कृष्ण के छवि सौन्दर्य का वर्णन करती हुई आलिंगन कर बैठती है। वहीं राधा अपने श्रृंगारिक भावों से प्रियतम कृष्ण का मन मोहती है। इसी तरह निम्न ख्याल में राधा के अंग–प्रत्यंग का सजीव चित्र खीचा गया है–

परखत पथ प्रेमहि की प्रतमा मन लाग रहो पिय प्यारे से।
चातुर चित्त चंचला लखी चौखट के आन किनारे से।।
कुंद कली सम दसन गसन मद्यमिशी श्यामलता छाई है।
बिम्बा फल–सी प्रवाल–सी मुदु अधरन में अरुनाई है।।
कमल कपोलन पै गुदना जिम नीलमनी छवि छाई है।।
रसाल कुंदन सी ठोड़ी अति चिबुक छटा दरसाई है।।
भय होत कपोतन कंठ लखे समता क्या संख विचारे से।।

बुंदेली ख्यालकारों ने कृष्ण–रुक्मणी के स्नान, वस्त्रालंकारों का धारण करना, भोजन, कन्दुक क्रीड़ा, चौपड़ का खेल, नृत्य और संगति आदि व्यापारों का भी वर्णन किया है जो कामोद्दीपन में सहयोगी है। नायक–नायिका की कामोद्दीपक क्रियाओं दर्श–पर्श, आलिंगन, चुंबन और सहशयन का भी ख्यालकारों ने मनोवैज्ञानिक ढंग से वर्णन किया है।

संयोग श्रृंगार वर्णन में परम्परागत षट्ऋतु वर्णन की प्रणाली अपनाई है। उनका मन बसन्त के मादक वातावरण के चित्रण में अधिक रमा है। यथा –

आयो री रितराज साज चहुँ ओर परो सैना लीने।
सुभग दसन में श्याम बिन मदन नृपत में दुख दीने।।
कदम कुंद केतकी कली कचनार सला चहुँ ओर करैं।
कठिन कला पै कोकिला हला मोर अति शोर करैं।।
कामदेव कसके कटार कामिन के तन पै जोर करैं।।
कयरु करतीं, बिरहनीं बैठी बिलख सेज पै शोर करैं।।
कीसे कहो मैं जाय कृष्ण जी कुवजा के रंग में झीनें।।

प्रियतम के पास अभिसार हेतु जाने वाली नायिका की काम भावना को प्रकृति का यह रूप निश्चय ही उद्दीप्त करता है एवं पावस का सौन्दर्य भी कम उद्दीपक नहीं है। काले मेघ देखकर मयूर का प्रसन्न होना, लताओं का वृक्ष से लिपटकर बढ़ना और बादलों के बीच चपला की चमक प्रेमी युगल के काम को और भी उद्दीप्त करने वाली है।

नभ में वृज में छबि सावन की मन भावन के मन भाय रही।
पुरवाई झुलाय रही घन को घनश्यामहिं वाम झुलाय रही।।
उत में शशिभान रहें सर पै इत मोर पखा मुकुटा मन में।
उत दामिन जो चमकें दमकै इत हैं मकराकृत कानन में।
उत खौर ललात मदान दियै इत केशर को घिस चंदन में।
उत में घन माल दिकवात घनी इत में बनमाल सुकंठन में।
उत में भूषन इतने ही लखे इत भूषन की अधिकाय रही।
पुरबाई झुलाय रही घान को घनश्यामहिं बाम झुलाय रही।।

वर्षा ऋतु की समाप्ति के साथ ही शरद ऋतु का आगमन हो जाता है, जिसे देख नायिका अपने नायक के पौढ़ने हेतु बिस्तर बिछा देती है, यथा –

पावस पीछे रही घोरतम नभ घन घटा बिलानी है।
सरस सुहानी जौहरी बनी शरद महरानी है।।
गगन सो निर्मल भवन नील पाटंबर रुचिर बिछायो है।
मन भायो है दिव्य दीपक दुजराज सजायो है।।
बिमल बिलोक लोक आलोकित करन प्रकाश बढ़ायो है।
सकल सम्पदा सृष्टि की लख कुबेर सुख पायो है।।

अन्ततः शरद ऋतु में नायिकायें अपने–अपने नायक के स्वागत हेतु सुरुचि पूर्वक पलंग सजाने के साथ ही वंदनवार और सुन्दर चंदेवा तान देती है, जिससे अपने नायक का अभिनन्दन विधि–विधान से किया जा सके। नायक के आते ही नायिकायें अपने–अपने प्रियतम के चरण स्पर्श करती हैं और केल रस में सरोबोर हो उठती हैं, जिस दृश्य को हम इस ख्याल के माध्यम से प्रस्तुत कर रहे हैं –

शरद शशी शोडस कलान से दरशत पूर्ण प्रकाश के साथ।
सेज सुमनयुत, भवन में त्रियन सजाई आस के साथ।।
झरप झरोखन से हटाय दीपत प्रदीप्त कर दीप धरे।
चारु चंदेवा, तनाए जिनमें सुन्दर फूल भरे।।
सेज नवरतन ऊपर गद्दा सज मखमली त्यार करे।
गिलम गलीचा, सुगंधित बहु इत्रन से बास भरे।
प्रेम प्रीत के बन्दन बारे बाँधे सकल हुलास के साथ।
सेज सुमन युत, भवन में त्रियन सजाई आस के साथ।।

इस प्रकार बुंदेली ख्यालों में संयोग श्रृंगार का सुन्दर परिपाक हुआ है। आलम्बन के सौन्दर्य, षोडस श्रृंगार, द्वादश, आभूषण, प्रकृति का उद्दीपन रूप, षटऋतु का वर्णन इत्यादि विभावों, व्यभिचारी भावों तथा अनुभावों का चित्रण ख्यालकारों की प्रतिभा का परिचायक है।

संयोग के समान ही वियोग श्रृंगार में भी बुंदेली ख्यालकारों ने अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। बुंदेली ख्यालों में लगभग सभी प्रकार के विप्रलम्भ श्रृंगार मिल जाते हैं। उनमें से एक उदाहरण दृष्टव्य है –

नहिं आय सकें मन भावन जू नहि भेज सके सुख की पतियाँ।
किहि से कहिए दुख ये सजनी किस भाँत कटें विरही रतियाँ।।
अब आन चहै रित पावस की चहुँ ओरन बादर छाय रहे।
कहिं पै बरसे नहनी बुंदियाँ कहिं जोर झला झहराय रहे।
कहिं झिल्लिन की झनकार सुनौ कहिं दादुर सोर मचाय रहे।
कहिं मोर उमंग भरे मन में बन में निज नाच दिखाय रहे।।
कहिं ग्रीष्म की लपटें झपटे कहिं पै बरसात करै घतियाँ।
कहि से कहिए दुख ये सजनी....।।
लख मास सुहावन सावन को सखियाँ मन मोद बढ़ाय रहीं।
हिल के मिलके निज प्रीतम से नित बागन झूलन जाय रहीं।।
बहियाँ गल डार भली बिध से डट मेघ मलारन गाय रहीं।
लग शीतल मंद सुगंध हवा हरषाय रहीं सुख पाय रहीं।।

ख्यालकार ने यहाँ पावस ऋतु के पपिहा, मोर, दादुर, रैन, बयार (हवा) जुगनू, बादल आदि को उद्दीपन बतलाते हुए बिरहिणी के बिरह को और अधिक बढ़ाने का काम किया है।

हास : 'हास' हास्य रस का स्थायी भाव है। इसके देवता प्रथम माने जाते हैं और वर्ण श्वेत हैं। विकृत रूप, चित्रित अनर्गल वचन एवं विलक्षण चेष्टाएं इसके आलम्बन हैं। विचित्र अंग भंगिमा, क्रियाकलाप आदि उद्दीपन हैं। आंखों और मुख का विकसित होना, खिलखिलाना आदि अनुभाव है। चपलता, हर्ष, गर्व आदि संचारी भाव है। ९

गंगाधार व्यास की रचनाओं में भोजन करते समय, बुंदेलखंडी परम्परानुरूप समधिनों द्वारा गायी गई गारियों में हास्य रस की उत्कृष्ट योजना हुई है। इनमें पौराणिक संदर्भों लेकर व्यंग्य किये गये हैं। उदाहरण स्वरूप एक नवोढ़ा अपनी सखी से बारे बालम की बात बतलाती है –

कैसे उमर कटे जा सजनी मोरे बालम तो बारे।
करूँ कौन की आस सखीरी कैसे हुये ये गुजारे।।
कौन–सी करनी बिगरी हमसे हमको दुख दीनों भगवान।।
मोरे पिया की बारी उमरिया मैं तो हो गई भर घर ज्वान।।
छाई जुबीन मोर तन पर नैना खूब बताबे सान।
उठे जुबनवा जे छाती पे चोली खपर को रहे तान।।
पड़ी सेज पर नींद न आबे रेन कटे गिन–गिन तारे।

उपर्युक्त ख्याल में बारे बालम का नासमझ लड़कपन और नव–विवाहिता नारी के मचलते यौवन का मार्मिक चित्रण किया गया है।

शोक : जहाँ शोक रूप स्थायी भाव का पूर्णाभिव्यंजन हो वहाँ करुण रस होता है। इसका आविर्भाव इष्टनाश और अनिष्ट प्राप्ति से संभव है।

बुंदेलखंड के अधिकांश ख्यालकारों ने राजा भरथरी के बनवासोपरान्त उनकी रानी की शोक भावना तथा लाला हरदौल के विषपान के बाद उनकी भाभी माँ एवं उनकी बहिन कुंजाबाई के अरुण क्रन्दन को अपना वर्ण्य विषय बनाया है, जिसने भावुक जन–मानस को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। उदाहरण स्वरूप राजा भरथरी के आखेट पर ''श्याममृग'' बधने के बाद सभी हिरनियों का शोक भला किस के मन को द्रवित नहीं करता?

दो. मृग गिरते ही भूमि पर, हिरनी भई अधीर।
टूटो उन पर वज्र सो, खड़ी बहाती नीर।।

टेक – नैनन नीर बहाबे हिरनी मृग को बहातीं नीर।।
दुख लागी करन अति व्याकुल होकें रोती सिरको पटक धरन।।

राजा भरथरी ने जब सत्तर हिरनियां के एक मात्र पति 'श्यामहिरन' का वध कर दिया तब उन्होंने राजा को शाप देते हुये कहा – ''जिस प्रकार से हम अपने पति के वियोग में विलाप कर रही हैं, वैसे ही आपकी रानियाँ भी आपके वियोग में वियोगिनी होंगी।

क्रोध – रौद्र रस का स्थायी भाव क्रोध है। इसमें आलम्बन रूप से शत्रु का वर्णन किया जाता है और शत्रु की चेष्टाएँ उद्दीपन विभाव का काम करती हैं। अनुभाव भौहे तानना, दाँत पीसना, ललकारना, कांपना, मुख लाल होना, आदि हैं। संचारी–गर्व, अभर्ष, उग्रता, चपलता, आवेग आदि हैं।

गंगाधर व्यास से 'जामवती का विवाह' में प्रसेन–पंचानन युद्ध के प्रसंग में रौद्र रस की योजना हुई है। निर्जन वन में प्रसेन ने सिंह का आक्रमण किया। इस पर वनराज ने क्रुद्ध होकर पहले तो प्रसेन के अश्व की पूँछ पकड़कर धरती पर पटका, जिससे उसके प्राण पखेरू उड़ गये। फिर मृगराज ने प्रसेन पर आक्रमण किया।

लगा बान बाजू में मूँद दृग पंचानन हूँकारौ है।।
भरा रोष में अग्नि ज्वाला में मानौ घृत डारौ है।।
लयो हाथ से छीन रसासन चूर–चूर कर डारौ है।
ताल बेक के भिरे दोऊ, मतल युद्ध अनुसारौ है।।

प्रसेन के बाद से आहत होने पर पंचानन का क्रोध कें दहाड़ना, रोषकर आक्रमण करना और अन्ततः प्रसेन को दबोच लेने में क्रोध अपने चरम उत्कर्ष को पहुँच गया है।

उत्साह – उत्साह स्थायी भाव का रस 'वीर' कहलाता है। इसके आश्रय उत्तम प्रकृति के व्यक्ति हैं। उत्साह भाव का सफल प्रयोग हम ख्यालकार लालन, गुरसँराय द्वारा छत्रपति शिवाजी महाराज के यशोगान में देख सकते हैं।

छन्द – वह जौहर इसमें भरे हुये दिखलाता नहीं कहिं सानी में।
छूकर ही बुझा देती छन में जीवन की ज्योति जवानी में।
ना नाँक में है ना बिछुआ में ना बल वो कमाँ मुल्तानी में।।
देखें से तड़प हों तर्क गुमां क्यों वर्क न हो हैरानी में।।

उक्त ख्याल में वीर रस की ओजमयी भाषा में अभिव्यक्ति हुई है।

भय – शाहजहाँ ने बुंदेलखण्डी राजाओं को कुचलने के लिये पठान के नेतृत्व में एक पठानी सेना भेजी थी, जो कोहराम मचाते हुये बुंदेलखंड की ओर बढ़ रही थी। उसी की एक झलक यहां प्रस्तुत है –

जोस में भरे जवान घूमत जंगी पठान,
कालों समान बड़े जवर जोर वाले हैं।

खोद के खजानों की सम्पत्ति निकाल लेत,
पाले जो पड़े करत मौत के हवाले है।।
करते नुकसान लूट लेत हैं दुकानों को,
सेंठन की थोंदन में अड़ा देत भाले हैं।।
कहीं–कहीं दाग लगा देत नीक नारिन को,
मना करने वालों की जीवन के लाले हैं।
दोहा – यवन क्रूर करते फिरें, भारी अत्याचार।
पूरे खण्ड बुंदेल में, मच गई हा–हाकार।

उक्त ख्याल में ख्यालकार हरप्रसाद ने पठानों की आततायी और बुंदेलखण्डी जनता का भयाक्रान्त एवं दुर्दशा का वर्णन भयानक शैली में लिया है।

जुगुप्सा – गंगाधर के 'जामवती का विवाह' में मृगराज द्वारा प्रसेन की हत्या करना तथा रक्त–मज्जा सिक्त नाखूनों और अधर का बार–बार चाटना फिर शव को वहीं क्षत–विक्षत कर छोड़ देने में जुगुप्सा भाव की योजना हुई है, यथा –

'फार नखन से उदर बिदारो, जुदौ कियो धड़से सिर काट।
करी गर्जना रुधिर से भरे रहो नख अधरन चाट।
लास डारकर वही विपन में पंचानन ने पकरी बाट।' [१०]

विस्मय – काशीराम साहू ख्यालकार ने धनुष यज्ञ में भगवान राम के धनुष भंग पर सभी राजा महाराजाओं के मन में विस्मय का भाव जाग्रत कर दिया है जिसे इस ख्याल में देख सकते है–

कपटी कुटिल नरेशन ने बल पहले अपनो कर हारो।
हिला सके ना धनुष जरा भी जिल भर टरो नहीं टारो।।
मन मलीन जब जनक कौ देखौ रामचन्द्र ने पग धारो।
उठा सरासन लगे घुमावन छिन में टोर धनुष डारो।
विस्मय भये मन में नर–नारी भेद काहू ने ना जाने।
है कोई बीर उठावै धनु यह जनक भूप ने प्रण ठाने।।

निर्वेद – संसार की निस्सारता या परमात्मा की ओर जाने में जो भाव सहायक हों उसे निर्वेद भाव कहते हैं। भगवान की महिमा से प्रभावित होकर नत्थी ख्यालकार ने संसार की निस्सारता का वर्णन इस प्रकार किया है –

मिथ्या है संसार मिलै मन विषयों में विश्राम नहीं।
राम कहे बिन, जीवन को कोई जगह आराम नहीं।।
बैठक, कमरे, हाट, हवेली, जो बरामदे हौल हैं ये।
चार दिना की, चाँदनी, धुआँ के ये धौल हैं ये।
नाती–पोते, पूत–पतोहू, जो–जो चुहल मखौल हैं ये।
पानी के ये बुलबुले मिटें बड़ों के कौल हैं ये।।

मनुष्य को विषय–वासना में आनन्दोपलाब्धि नहीं हो सकती, क्योंकि यह संसार ही असार और मिथ्या है। यदि सच्चा आनन्द और इन्द्रिय विश्राम कहीं है, जो वह राम–नाम स्मरण में ही है। इसी दार्शनिक सत्य का प्रतिपादन उपर्युक्त ख्याल में किया गया है।

स्नेह – स्नेह भाव में वात्सल्य रस होता है। गंगाधर व्यास के ''ब्रजागमन लीला'' में वात्सल्य रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

श्यामहिं मिलन यशोदा धाई।
पयथन स्वत वत्स के कारण जैसे धावत धेनु लवाई।
आवत लखै पँवर के द्वारे दोइ सुत लीन्हें कंठ लगाई।
०० ०० ००
जितने दिन माखन नहिं दीन्हों, तितने दिन को दे मोहिं माई।
भई आसक्ति प्रेम में जसुदा जब सुधि बाल चरित की आई।।

यहां कृष्ण आलम्बन तथा उनके गुण और चेष्टायें उद्दीपन हैं। आलिंगन, सिर पर हाथ फेरना, रोमांच और स्तनों से दुग्धस्राव अनुभाव है। शंका, हर्ष, गर्व आदि व्यभिचारी भाव रस की उत्पत्ति में सहायक है। इस प्रकार वात्सल्य रस का पूर्ण परिपाक हुआ है।

भक्तिभाव – साहित्यशास्त्र के आचार्यों में भक्ति को पृथक रस के रूप में स्वीकृति नहीं दी। पंडितराज जगन्नाथ और आचार्य विश्वनाथ ने अश्वभक्ति पर विचार प्रकट किये हैं। रस तरंगिणीकार भानुदत्त ने भी भक्ति को अलौकिक रस के रूप में स्वीकार किया है। गंगाधर ने अनेक पौराणिक प्रसंगों के संदर्भ में भी भक्ति का निरूपण किया है। इसी तरह नत्थी के इस ख्याल में भी पौराणिक प्रसंगों का उदाहरण देते हुये भगवान से निवेदन किया गया है। यथा –

छन्द – सुनते है तुमने कोटिन पापी तारे।
गनिका सी अधमिन गीध गयंद उबारे।।
अति अधिक बधिक है बाल्मीकि हत्यारे।
शिव कहैं उमा ते हरि की अकथ कथा रे।।
लौट – जप मरा मरा वो है गयो शुद्ध अछूतौ।
हम बिसर गये प्रभु परमत बिसरे तू तौ।।

इस प्रकार बुंदेली ख्यालकारों के ख्यालों में हमें भक्ति के अनेक रूपों के दर्शन होते हैं।

अन्ततः हम कह सकते हैं कि बुंदेलखण्ड के ख्याल साहित्य के अन्तर्गत जो विभिन्न प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति हुई है यह अनुठी व सफल है। यही कारण है कि भावनाओं के प्रति सहज ईमानदारी भी ख्यालों में स्वाभाविक रूप से उद्दीप्त होकर व्यक्त हुई है। बुंदेली ख्यालों की अनुभूति में इतनी समरसता है कि उनकी मर्मस्पर्शी क्षमता से विशेष प्रभाव उत्पन्न हो जाता है। इसका कारण ख्यालों में काव्यगत एकात्मानुभूति, रसात्मक अनुभव और जनजागरण में बैठी सांस्कृतिक चेतना का सही प्रतिनिधित्व है। यह सच है कि बुंदेली ख्यालों में लगभग सभी भावों का समावेश है।

– म.प्र. विद्युत मंडल, साकेत नगर, छतरपुर ☐

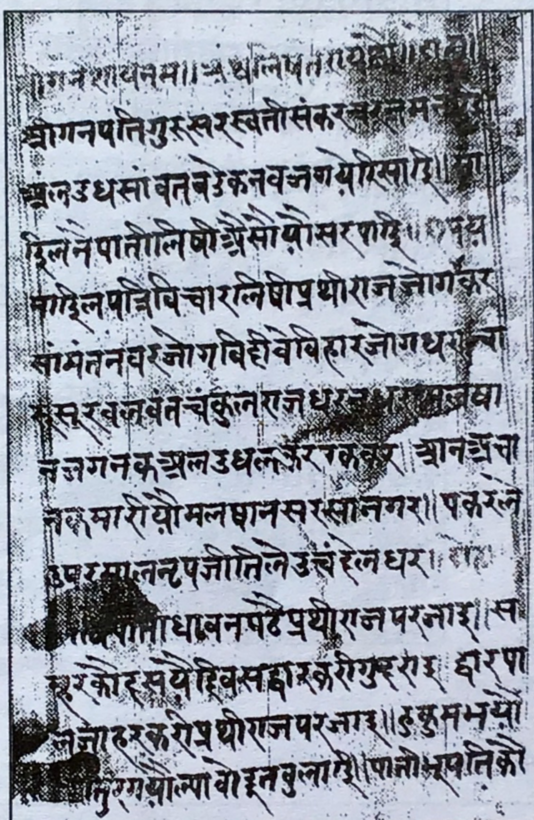
संदर्भ –

१. गुलाब राय, सिद्धान्त और अध्ययन, पृ. ४२
२. तदैव
३. राधावल्लभ शर्मा 'कवि गंगाधर और उनका काव्य' पृ. १२४
४. रामनरेश त्रिपाठी, 'ग्राम साहित्य' प्रथम भाग पृ. ५५
५. सम्मेलन पत्रिका – लोक संस्कृति विशेषांक, पृ. २५०–५१
६. काव्य प्रकाश, पृ. ४
७. तदैव, पृ. २७ ८. तदैव, पृ. २८
९. भागीरथ मिश्र, 'काव्यशास्त्र', द्वितीय संस्करण, पृ. २७०
१०. जामवती का विवाह, लावनी पृ. २ ☐

परमार रायछौ की प्राचीन पोथी

– डॉ. मोहन लाल गुप्त 'चातक'

रायछो (परमाल रासो आल्हखण्ड) की हस्तलिखित प्रति मेरे निजी संग्रह में है, इसका अंतिम पृष्ठ न होने के कारण इसमें प्रतिलिपि काल और रचयिता का नाम उपलब्ध नहीं हो सका। यह २७से.मी. लम्बे और १७से.मी. चौड़े देशी कागज पर प्रतिलिपि की गयी है इसमें ४० पन्ने अर्थात् ८० पृष्ठ हैं उक्त प्रति की लिखित पंक्ति की लंबाई लगभग १२ से.मी. है उक्त प्रति में कोई जिल्द नहीं है इस प्रति का देशी कागज अत्यंत मोटा है, जो ४–५ सौ वर्ष प्राचीन कहा जा सकता है। इसी प्रकार उनकी प्रतिलिपि के अक्षरों की बनावट और लिखावट भी लगभग इतनी ही प्राचीन अनुमानित की जा सकती है। इससे प्राचीन अभी तक परमाल रासो की कोई प्रति उपलब्ध नहीं हुई है।



(परमार रायछौ की हस्तलिखित प्रति का प्रथम पृष्ठ)

इसके अतिरिक्त इस प्रति में बुंदेली भाषा के बहुत अधिक शब्द उपलब्ध होते हैं यथा –

नै, पठै, दई, चूक, सुनौ, बोलौ, बोलौ, लिखौ, उपजै, पाँचयै, मुजरा, वछेरा, ताल, गैनो, जेठी, चूकै, महोवै, भागै, करो, डेरा, नातर, बरजो, चुगल, सिरोपाव, कौ, बंदेज, रछ्दा, इम, दई, नाउ, लैन, मैलो, वैन इत्यादि तथा बुंदेली परसर्गों की सहायता से बनने वाले कारकों का भी अधिक प्रयोग हुआ है। साथ ही बुंदेली के गुणवाचक, संख्यावाचक, स्थान वाचक इत्यादि विशेषणों की अधिकता भी इस बात की ओर संकेत करती है कि यह ग्रंथ तत्कालीन बुंदेली भाषा में निर्मित हुआ है।

उक्त प्रति के प्रारंभ में ग्रंथ का नाम मात्र रायछौ दिया गया है, कही आल्हखण्ड का परमाल रासो का उल्लेख नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण कथानक आल्हखण्ड का परमालरासो से सम्बद्ध है। पृथ्वीराज चौहान एवं राजा परमाल के पुत्र ब्रह्मजीत एवं आल्हा, ऊदल जगनिक इत्यादि के युद्ध की सम्पूर्ण घटनाएँ महोबे के निकट ही वर्णित है। इस कारण 'रायछो' कृति आल्हखण्ड या परमाल रासो के नाम से भी अभिहित की जा सकती है।

इस ग्रंथ की कथा वस्तु प्रचलित 'रासो' काव्यों की भांति मात्र वीर छन्द में अधिकता से प्रस्तुत न की जाने की अपेक्षा विभिन्न छन्दों में प्रस्तुत की गयी है। अतः इसकी भाषा–शैली प्राचीन बुंदेली भाषा से सम्बद्ध प्राचीनतम है इस कारण इस प्रति के आधार पर जगनिक कृत 'आल्हखण्ड' की पुनः समीक्षा और पुनर्सपादन विद्वानों द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है।

'रायछो' कृति में ओज गुण की प्रधानता – ओज गुण से चित्त में स्फूर्ति और मन में तेज की वृद्धि हुआ करती है। ओज गुण से युक्त वीर–रस के आस्वादन से चित्त उद्दीप्त हो उठता है, उसमें आवेग का प्रस्फुटन हो जाता हैं जहाँ द्वित्व वर्णो और संयुक्त वर्णो के संयोग से 'ट' वर्ग के अक्षरों की अधिकता हो वहाँ ओज गुण निस्पन्न होता है। इसकी बानगी रायछो में प्रस्तुत है।

आइस पाइ ब्रह्मजित चल्लिय।
दई विभूति नगर कौ झल्लिय।।२४२।।
पृथ्वीराज सौ जुद्ध कौ ठान ठायौ।।२७१।।
काटि काटि गिर भू सुंड रुंड बिन चक्रहि हाथी।
हय नाचहि विन सीस, मुंड बिन वीर रुंड नच।।२८५।।

वीर रस –अब 'रायछो' से एक युद्ध का दृश्य प्रस्तुत है–

ललकार युद्ध हलकार कीन, घर जाव कुवर नहि जुद्ध लीन।
पृथ्वीराज भार खैचि तक वान। फूटत्ति पील पट्टय समान।।३५८
तुम्ह वाल वीर उठो न सार। घर जाव अबै ब्रह्माकुमार।
बोलत सुब्रह्म वानी निराट। सुन जयत कन्ह कय मास डाट।।३६०
मृगराज राज गनियै न वाल। लघु डील होइ विक्रम विसाल।
इति कहै वचन ब्रह्मा कुमार। पृथ्वीराज अस्त्रन सु करी मार।।३६१
घालो सु जाइ सेला वरीस। दीनौ धसाइ गज राम सीस।।
गिर परौ पील धरती विसाल। पृथीराज कोय कीन्हो कराल।।२६२

यहाँ ब्रह्मकुमार आश्रय हैं, पृथ्वीराज आलंबन। पृथ्वीराज का धनुष खींचकर वान का निसाना साधना और ब्रह्मकुमार को बालक कहकर युद्ध त्याग कर घर जाने का उद्घोष उद्दीपन विभाव

है। आवेश में आये हुए कयमास का ब्रह्म कुमार को सिंह शावक जो महान विक्रम शील होता है, कहना उक्तियां अनुभाव है। औत्सुक्य, आवेग, धृति, गर्व इत्यादि संचारी भाव है। और उत्साह स्थायी भाव। तत्पश्चात् ब्रह्मकुमार राजा पृथ्वीराज के गुरु राम के हाथी का धराशायी कर देने में अत्यंत उत्साह वर्धक वीर रस सामग्री युद्ध चित्र प्रस्तुत किया गया है। यह है जगनिक के वीर रस का वर्ण्य कौशल ऐसे युद्ध दृश्य कवियों द्वारा कम प्रस्तुत किये गये हैं। इस हेतु कविवर जगनिक नायक विशेष बधाई के पात्र हैं।

शब्दालंकार—संयोजन —

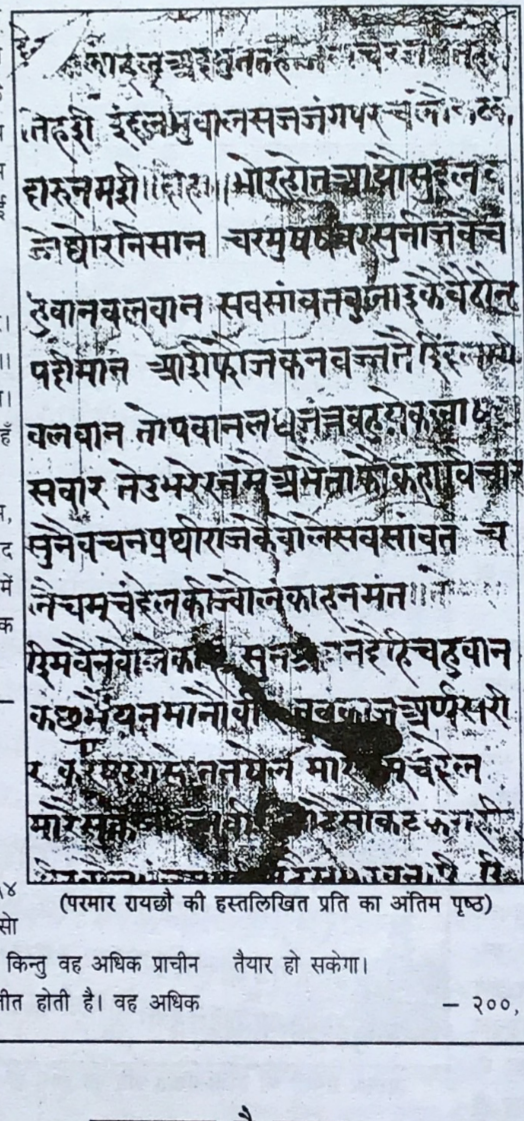
वीर सहस वखतरी सहस दस वीर धर्नुधर।
वज्री वीस हजार अवर पचास सक्ति कर।।
अग्रपील सत पंच निरख दिग्गज तन लज्जप।
हूक—हूक कर सूर निरख दल जहँ—तहँ गज्जय।।७२।।

उक्त उद्धरण की प्रथम पंक्ति में वृत्यानुप्रास, द्वितीय पंक्ति में छेकानुप्रास, हूक—हूक पद में वीप्सा अलंकार पदो के अंतिम शब्दों में अन्त्यानुप्रास दृष्टव्य है जो कविवर जगनिक की काव्य—सृजन क्षमता का द्योतक है।

अर्थालंकार, उपमा एवं व्यतिरेक अलंकार—

वहै सीस जाके परंमार होई।
चपल चंचला नैन दैखे न कोई।
सीस चगिरिया कनक सम
कजली सोभा देत।।४२७
केसर चंदन रंग की सोभा छीने लेत।।२५४

मेरे निजी संग्रह में परमाल रासो (आल्हखण्ड) की एक और प्रति भी है किन्तु वह अधिक प्राचीन नहीं है। लगभग २०० वर्ष प्राचीन प्रतीत होती है। वह अधिक खंडित भी है। उसकी भाषा भी बुंदेली नहीं है, एवं उसकी कथावस्तु भाषा—शैली छन्द भी उक्त प्राचीन प्रति से मेल नहीं खाते। मात्र मूल कथ्य ही आल्ह खण्ड का है। इस हेतु प्राचीन परमाल रासो से इसको मिलान करते हुए शुद्ध पाठ प्रस्तुत करने का संपादन कार्य भी नहीं किया जा सकता। जगनिक कृत आल्हखण्ड एक वीर रस प्रधान गीत काव्य भी है। जो चिरकाल तक मौखिक रहने के कारण अपने स्वरूप को स्थिर नहीं रख सका। उसका पाठ भी अत्यंत विकृत हो गया है अत: मात्र मेरी प्राचीन परमाल रासो प्रति से संभावित शुद्ध पाठ प्रस्तुत करके उसका संपादन किया जा सकता है। इसके लिए मैं प्रयासरत भी हूँ।



(परमार रायछौ की हस्तलिखित प्रति का अंतिम पृष्ठ)

शोध कार्य एक चिरन्तन वैज्ञानिक कार्य हुआ करता है, मैं तो तदर्थ प्रयास कर ही रहा हूँ। संभव है भविष्य में अन्यत्र भी इसकी कोई प्राचीन प्रति प्राप्त हो जाए तो इसका और अधिक अनुशीलन करते हुए प्रामाणिक पाठ तैयार हो सकेगा।

— २००, बड़ाबाजार, झांसी उ.प्र. □

बुंदेली गजल —

मुस्काउत है सूरज

— डॉ. सुश्री शरद सिंह

भुनसारे से छत पे चढ़ के, झुलसाउत है सूरज।
बनो आग को गोला जैसो, धधकाउत है सूरज।

सूखे ताल—तलैया, सूखे जरवा, सूखी बेल
सूखी जाती ई जिनगी खों, बमकाउत है सूरज

नेता घांईं बनो बेशरम, ख्याल करे न कोनऊ
हाहाकार करें सबरे जब, मुस्काउत है सूरज।

हुन्ना—कपड़ा भींज रये हैं, इतनो आत पसीना
ऊ के लू—लपटे बरसा के, इतराउत है सूरज।

बत्ती गुल दिन—रात रहत है, कऊऊ मिले न चैना
रही—सही धूरा की आंधी, ले आउत है सूरज।

'शरद' मनाउत आयें अब तो, कारे—कारे बदरा
बदरा ऊदें से ई बैरी, घबड़ाउत है सूरज।।

— एम.।।।, शांति विहार, रजाखेड़ी, सागर, म.प्र.

ऋषिका लोपामुद्रा

– आचार्य दुर्गाचरण शुक्ला

'लोपामुद्रा' ऋषिका का नाम भारतीय साहित्य में एक बहु सम्मानित नाम है। प्रसिद्धि है कि उनका अपने पति महर्षि अगस्त्य के प्रति इतना समर्पण था कि उनका स्वयं का व्यक्तित्व ही पति के व्यक्तित्व में लोप हो गया था। लोग उन्हें 'लोपामुद्रा' कहने लगे थे। जो भी हो पर एक बात पक्की है कि लोपामुद्रा वैदिक विद्वानों और तान्त्रिक साधकों दोनों में परम आदरणीय नाम हैं वैदिक विद्यार्थी जानता है कि यह एक परम विशिष्ट महिला दृष्टा ऋषिका का नाम है उस महिला का नाम है यह, जिसने घोषित किया था कि 'सत्य की उपलब्धि के लिए, पूर्ण नैष्ठिक ब्रह्मचर्य अनिवार्य शर्त नहीं है। चरम सत्य की उपलब्धि उन्हें भी हुई है जिन्होंने गृहस्थ सुख का अनुभव किया और पत्नी के साथ पूरा जीवन जिया है। यही नहीं कि यह बात केवल पुरुषों के लिए सही है। यह बात दोनों के लिए सही है। पुरुषों की तरह स्त्रियां भी गृहस्थ जीवन का सुख उपभोग करते हुए परम सत्य को प्राप्त कर सकती हैं।' यह बात यह एक व्यावहारिक सच्चाई है। इसे पूरी दृढ़ता के साथ घोषित करने वाली प्रथम महिला का नाम है 'लोपामुद्रा'।

तन्त्र के गहन साधक मानते हैं कि मेरुस्थित 'श्रीमाता' के नगर का दर्शन ऋषिवर अगस्त्य नहीं कर सके थे। वे वेदवेत्ता थे, वे सर्वशास्त्र विशारद थे पर वे तन्त्र की दीक्षा से रहित थे इसलिए वे पराशक्ति की निगूढ़ उपासना के अधिकारी नहीं थे। जब उन्होंने अपनी पत्नी 'लोपामुद्रा' के साथ दीक्षा प्राप्त की, शक्तिरूपा पत्नी लोपामुद्रा के साथ साधना की, तब वे सपत्नीक गुरु–मण्डल में उत्तम स्थान प्राप्त करने में समर्थ हो सके थे (त्रिपुरारहस्य–माहात्म्य खण्ड अध्याय ७९)

ब्रह्माण्डपुराण एवं स्कन्द पुराण में लोपामुद्रा के अगस्त्य से विवाह होने का वर्णन मिलता है। कहा गया है कि अगस्त्य ऋषि ने बहुत दिनों तक नैष्ठिक ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। अगस्त्य ऋषि को स्वप्न में पुरखे दिखे। वे नीचे की मुँह किये लटके हुए थे। कारण जानने पर ऋषिवर को दुख हुआ, क्योंकि ये पितर अगस्त्य के संतान विहीन होने से अधोमुखी गति को प्राप्त हो रहे थे। अगस्त्य ने विवाह करने का निश्चय किया। विदर्भ नरेश ने उन्हें अपनी अति सुन्दरी, सुशीला और सद्–गुणसम्पन्ना पुत्री लोपामुद्रा को विवाह के लिए प्रदान किया।

तन्त्र साहित्य के अधिकारियों में यह मान्यता है कि वे भगवती 'लोपामुद्रा' विदर्भ नरेश को, भगवती आदिशक्ति उपासना से ही प्राप्त हुई थी। वे स्वयं सिद्धा थीं। कुमारी अवस्था में ही उन्होंने महर्षि दुर्वासा की कृपा प्राप्त कर उपासना की ओर आदिशक्ति की साक्षात् कृपा को प्राप्त कर लिया था। 'श्रीविद्या' में ऋषि कोटि का सम्मान ऋषियों ने दिया था। श्रीविद्या की एक विशेष विधा 'शिवादि विद्या' 'हादि विद्या' की गुरु श्रेणी में मान्य गुरुमण्डल में स्वीकृत हो गई थी। महर्षि अगस्त्य को इनसे विवाह करने के उपरान्त ही गुरु–मण्डल में स्थान मिला था। ऐसी महिमामयी हैं ऋषिका 'लोपामुद्रा'।

लोपामुद्रा के पति ऋषिवर अगस्त्य का एक प्राचीन आश्रम कालंजर तीर्थ में था। यह कालंजर उत्तर प्रदेश के बांदा जिले में स्थित है। कालंजर पर्वत विन्ध्यांचल का भाग है। पौराणिक काल में 'कालंजर' एक अति प्रसिद्ध तीर्थ की महिमा से मण्डित रहा है। वायुपुराण के अनुसार यह पर्वतों में सर्वश्रेष्ठ है। यहां विष्णु का श्वेत अवतार हुआ था –

'तत्रकालंजरिष्यामि सदागिरिवरोत्तमे।
तेन कालंजरोनाम, भविष्यति सपर्वत:। (वायु. २३/२०४)

इसी कालंजर पर्वत पर महर्षि अगस्त्य का आश्रम था यह महाभारत के वन पर्व में आता है –

'अगस्त्यस्य तु राजेन्द्र तत्राश्रमवरो नृप,
तंत तथा तपस्यारण्यं तापसैरुपशोभितम्।।
हिरण्यविन्दुकथितो गिरौ कालंजरेमहान्,
आगस्त्यै पर्वतोरम्य: पुण्यो गिरिवर: शिव:।।'
(महाभा.व.प. ८७/२०)

महाभारत के वनपर्व अध्याय ८५, हरिवंशपुराण अ. २१ और पद्मपुराण अ. (१।३० –३२), अ. (४।३२–३३) तथा अ. (४।१९) में वर्णित कालंजर महात्म्य से यह बात स्पष्ट उभरकर आती है कि अगस्त्य ऋषि का प्रथम आश्रम कालंजर पर्वत पर ही था जो विन्ध्यगिरि का ही एक भाग है। इस बात को लोगों ने स्वीकारा था यह इस बात से भी प्रमाणित होती है कि आधुनिक काल में बुंदेला ओरछेश प्रतापचन्द्र देव अपने शिलालेख में स्वीकारते हैं और कहते है कि यहीं इसी कालंजर क्षेत्र में प्राचीन पुरुष 'अत्रि' का भी प्रादुर्भाव हुआ था (भारतीय इतिहास के कुछ पहलू, डॉ. भगवानदास गुप्त, पृ. ३१५) छठी शताब्दी के वाद नाग राजाओं के अधीनस्थ 'करम' ने कालंजर का वर्तमान दुर्ग बनवाया तो उसने भी यह माना कि अगस्त्याश्रम ही है, जहाँ पर मैं दुर्ग बनवा रहा हूँ। इस प्रकार इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अगस्त्य और उनकी पत्नी की तपोभूमि मुख्यरूप से कालंजर का आश्रम रहा है।

आर्य जगत में गृहणियों के ललाट को उन्नत और उज्ज्वलतम बनाने में 'लोपामुद्रा' का महायोगदान है। ऋग्वेद में उनके मन्त्र हैं, तथा यजुर्वेद में उनके मन्त्र हैं, इसको पूर्व के आचार्यों ने स्वीकारा है। 'सर्वानुक्रम सूत्रकार' एवं आचार्य महीधर के अनुसार लोपामुद्रा का ऋषित्व असंदिग्ध है, (सर्वा ०२/२४ तथा यजु.भा १७/११) शौनक ऋषि अपने 'बृहद्देवता' में लोपामुद्रा को ऋषियों की पंक्ति में सादर स्थान देते हैं।

लोपामुद्रा मानती है, कि चरमसत्य की प्राप्ति के मार्ग में सुखी दाम्पत्य जीवन किसी प्रकार बाधा नहीं है। यौन सम्बन्ध

मानव जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। वह अपने पति ऋषिवर अगस्त्य से कहती है –

'ये चिद्धिपूर्वे ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिर वदन्नृतानि।
ते चिद्वासुर्नह्यन्तमापुः सम् नु पत्नीर्वृषभिर्जग्मयुः'
(ऋग्वेद १/१७९/२)

मन्त्र का शाब्दिक अर्थ है कि 'हे अगस्त्य! पहले के वे ऋषि भी जो सत्य में स्थित थे, जो दिव्यशक्तियों के साथ सुखमय सत्य का संवाद किया करते थे, वे भी वीर्य सेचन करते थे – वे भी पत्नी के साथ अनिषिद्ध ऋतुकाल में सहवास किया करते थे, वे भी ब्रह्मचर्य का अन्त नहीं पा सके हैं। उन ऋषियों की पत्नियाँ भी उन वीर्यवान् ऋषियों से सहवास हेतु मिलती रही हैं।' मन्त्र के मूल शब्दों पर गहराई से विचार करने पर मन्त्र का अर्थ गौरव खिल उठता है, तेजस्विता फूट पड़ती है। आइये थोड़ा विचार करें –

'ये चित् हि पूर्वे ऋतसापः आसन्' – यहाँ तीन शब्दों पर ध्यान केन्द्रित होता है, चित्, हि और ऋतसापः। 'चित्' शब्द संस्कृत के 'अपि' या हिन्दी के 'भी' का समानार्थी है और 'हि' हिन्दी के निश्चयार्थ बोधक, 'हि' का पूर्व रूप है। ऋतसाप – यह शब्द बड़ा ही अर्थ–गर्भ शब्द है उदाहरण के लिए 'ऋतसापः' शब्द को ऋषि भारद्वाज (ऋग्वेद ६।५०।२ और ६।२१।११ में) दो स्थानों पर एक ही सन्दर्भ में प्रयोग करते हैं, जो इस विशेषण के अर्थ को एक दम स्पष्ट कर देता है। भरद्वाज कहते है – 'ये द्विभन्मानः ऋतसापः सत्याः रनर्नन्तः यशताः अग्निजिह्वा... (६।५०।२)' अर्थात् जो द्विज है, जो सत्यनिष्ठ है, जो सत्य आचरण में सदा ही तत्पर रहते हैं, आत्मबल से युक्त हैं, और तेजस्वी वचनों के वक्ता हैं? फिर दूसरे स्थान पर वे कहते हैं –' अग्निर्जिहा ऋतसापः आसुः...। अर्थात् जो तेजस्वी वक्तृतव से युक्त है, सत्यनिष्ठ है, वे . .. (६।२१।११) महर्षि दयानन्द 'ऋवसापः' का अर्थ करते हैं 'जो सत्य व्यवहार को दूसरों में व्याप्त करता है और जो स्वयं सत्य में व्याप्त है, वह है ऋतसाप'। सरल शब्दों में ऋतसापः का अर्थ हुआ, सत्य से जुड़ा हुआ, सत्य से सम्बद्ध। 'साकं देवेभि, अवदन् ऋतानि' – वे जो दिव्य शक्तियों के साथ सुखमय सत्य संवाद किया करते है। 'ते चित् अवासुः' – वे भी सहवास करते है। 'ते नहि अन्तम् आपुः' – उन महाभागों ने भी ब्रह्मचर्य का अन्त नहीं पाया है। और वे तपस्वी महापुरुष जो सत्य में स्थित थे वे भी अनिषिद्ध ऋतुकाल में अपनी पत्नियों के साथ सहवास करते रहे हैं। और तपस्वियों की तपस्विनी पत्नियाँ भी अपने वीर्यवान् बलिष्ठ पतियों के समीप सहवास हेतु जाती रही हैं – संनु जग्मयुः – सम्यक् रूप से जाती रही हैं पति के पास। भलीभाँति एवं बिना झिझक के, इस व्यवहार को अंजाम देती रही हैं। यहाँ एक शब्द है 'नु' जो एक अन्तगर्भ प्रश्न छोड़ देता हैं यह ये जो सत्य–तत्थ्य कहे गये हैं, वे विचार के लिए चिन्तन के लिए सामने वाले को प्रेरित करते हैं, झकझोरते हैं। और लोपामुद्रा के तर्क की सत्यता को स्वीकृत मिलती है। महर्षि अगस्त्य सूक्त के ही अगले मन्त्र में स्वीकृति को स्पष्ट करते हैं। (ऋ १/१७९/३)

लोपामुद्रा की पूर्व में चर्चित ऋचा अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। प्रथम तो यह ऋचा संदेश देती है कि हमारे पूर्वज जो सत्य में ही निवास करते थे, जो सत्यस्वरूप हो गए थे, वे गृहस्थ जीवन के कामजन्य सुख से वंचित नहीं थे। दूसरे उनकी पत्नियां जो तपोनिष्ठा में कम नहीं थी उन्होंने भी दाम्पत्य जीवन का सुख प्राप्त किया था। तीसरा सबसे महत्वपूर्ण निहितार्थ है कि गृहस्थी में रहते हुए, काम सुख को सर्वथा छोड़े बगैर भी, पूर्ण 'सत्य की उपलब्धि' प्रयत्न से प्राप्त हो सकती है। सुखी दाम्पत्य जीवन सत्य की प्राप्ति में बाधा नहीं है। साथ ही यह भी ध्वनि है कि ये पूर्व से श्रेष्ठ महापुरुषों द्वारा जीवन में पोषित व्यवहार की सरणि है अतः श्रेष्ठजनों के लिए अनुकरणीय अच्छी परंपरा है।

यजुर्वेद में आये 'लोपमुद्रा' के मन्त्रों का यज्ञीयकर्म में अति महत्वपूर्ण स्थान है कोई भी विशिष्ट अनुष्ठान हो, छोटा हो या अश्वमेध, राजसूय यज्ञों की भांति बड़ा अनुष्ठान हो, बिना 'अग्निपरिसेचन संस्कार' के पूरा नहीं होता। और 'अग्निपरिसेचनकर्म' ऋषिका लोपामुद्रा के मन्त्रोच्चारणों के बिना पूरा नहीं होता। लोपामुद्रा की पांच ऋचाएँ विज्ञान की दृष्टि से अप्रतिम हैं। एक ऋचा में वे गाती हैं "हे अग्निदेव! मनुष्यों में जठराग्नि के रूप में, जलों में वाड़वाग्नि रूप में, जंगलों और वनों की दावाग्नि रूप में और द्युलोक में स्थित सूर्य में सावित्र्याग्नि के रूप तुम ही तो हो जो प्रज्ज्वलित हो रहे हो। मेरी आहुति समर्पित है, आपके लिए।" (यजु. १७/१२) वे रुकती नहीं है आगे गाती हैं "उन्हें सम्यक रूप से आहुति प्रदान करो, जिन देवों ने देवत्व का प्रमुख अधिकार पा लिया है जो देव आत्माग्नि के सामने संचरण किया करते हैं, जिन देवों के बिना शरीर किसी प्रकार की चेष्टा नहीं कर सकता, वे देव न तो द्युलोक–स्वर्ग में हैं और ना ही पृथ्वी पर है अपितु देव कहीं बाहर नहीं हैं, वे तो वास्तव में शरीर में ही प्राण की अग्नि रूप में निवास करते हैं उन्हें भली भांति आहुति प्रदान करो (यजु १७/१४) ऋषिका लोपामुद्रा जोर देकर कह रही है "जो बाहर देखते हो वह भीतर है और जो भीतर अनुभव होता है वह बाहर भी है। एकत्व का अनुसंधान करो। एक ही प्राणाग्नि–दृष्टि संकल्पाग्नि का एक खेल है इसे समझो।"

लोपामुद्रा अकेली ऐसी महिला दृष्टा है जो वेद और तन्त्र, निगम और आगम में अपनी पूर्ण दृष्टि के कारण महत्वपूर्ण स्थान रखती है। तान्त्रिक वांड.मय में महर्षि सुमेधा 'त्रिपुरारहस्य' में उनकी महिमा बखानते हैं। भगवान परशुराम उन्हें परम सम्मान के साथ स्मरण करते हैं। आचार्य महीधर और सायण उनको नमन करते हैं। मुनि विद्यारण्य उनका स्तवन करते हैं। भारतीय वांङ्.मय में वे अकेली नारी हैं जो यौन सम्बन्धों को मानवीय जीवन की अपरिहार्य आवश्यकता मानती हैं। जो महर्षि अगस्त्य, पृथ्वी के बहुत बड़े भाग में ज्ञान के प्रकाश को फैला सके हैं, श्रम और ज्ञान दोनों की समान महत्ता प्रतिपादित कर श्रमजीवी और ज्ञानी दोनों का जिन्होंने पोषण किया है, उनकी महिमा वृद्धि को अपने स्नेह से सीचने वाली हैं, लोपामुद्रा ऋषिका। काल को जीतकर आज भी कालंजर में उनकी ऋचाएं अनुगूंजित हैं।

– नूतन विहार कॉलोनी, टीकमगढ़ म.प्र. ☐

नौगांव की प्रसिद्ध रामलीला के सौ वर्षों का इतिहास

– विनीत खरे

नौगांव की रामलीला के पिछले सौ वर्षों का इतिहास रोमांचकारी यादों का वह सफर है, जिसमें रामलीला के उद्‌भव, विकास और ठहराव पर समर्पित कलाकारों की स्मृतियां तथा चमत्कारित घटनाओं और रामलीला पर आधुनिक युग की छाया का समावेश है।

नौगांव की रामलीला की कीर्ति दूर–दूर तक फैली रही है यहां का राम–रावण युद्ध तथा रावण दहन कार्यक्रम प्रदेश के श्रेष्ठतम कार्यक्रमों में एक है जहां सौ वर्ष बाद भी गोधूलि की बेला में महासंग्राम अत्यंत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करके रावण दहन होता है और इस कार्यक्रम को देखने हेतु हजारों दर्शक ४ बजे से ही एकत्रित होने लगते हैं और रावण दहन के बाद एक दूसरे के गले मिलकर दशहरा की राम–राम करके अपने घर जाते हैं।

अत्यंत आकर्षक रामलीला के सौ वर्षों के सफर की जानकारी देते हुए पुराने कलाकारों स्व. हरनारायण चौबे एवं स्व. श्री पं. श्री प्रेमनारायण तिवारी तथा शिवनारायण जी खरे ने शताब्दी समारोह की तैयारियों के बीच बतलाया कि अंग्रेजों के शासन काल में तत्कालीन बुंदेलखंड की राजधानी नौगांव थी, जहां प्रदेश के मंत्री, उच्च अधिकारी, न्यायाधीश तो रहते ही थे अंग्रेज पोलीटिकल एजेन्ट यहां बुंदेलखंड की ३४ रियासतों पर प्रभावी नियंत्रण रखने हेतु नौगांव में ही रहता था, नौगांव में भारी अनुशासन के बीच व्यापारी, अधिकारी, नागरिक रहते थे, ऐसे ही वातावरण में नौगांव के प्रसिद्ध उद्योगपति स्व. मुन्नालाल मेहरोत्रा को संस्थापक बनाकर उनके पुत्र स्व. बलभद्र दास मेहरोत्रा 'बल्ले बाबू' ने वर्ष १९०५ में रामलीला का शुभारम्भ करवाया।

वास्तव में नौगांव के मूलचन्द्र चौराहे पर पंजाब की नाटक कंपनी ने हरिशचन्द्र नाटक खेला था। नाटक में नारायन मास्टर ने संगीत दिया तथा लखाराम कलाकार थे, नाटक के बाद रायबहादुर बल्ले बाबू ने, दोनों को नौगांव में नौकरी पर रख लिया था और रामलीला शुरू हुई। पहले वर्ष ड्रेस बगैरह झांसी से बनकर आई। पहले रामलीला खुले मैदान में होती थी बाद में रामलीला हाल बना बल्ले बाबू स्वयं रामायण पाठ करते, रामलीला में भूमिकाएं करते, जनकपुर के बाजार में लहंगा पहनकर चक्की चलाने वाली ग्रामीण महिला बनते, उनके निधन के बाद उनके योग्य पुत्र अमरनाथ मेहरोत्रा 'घिस्सू बाबू' ने रामलीला समिति बना दी स्वयं अध्यक्ष तथा स्व. प्रेमनारायण तिवारी सचिव, बने जन सहयोग से लीला होने लगी, घिस्सू बाबू भी अपने पिता की तरह रामायण पढ़ने से लेकर एक्टिंग तक करते थे, उनके बाद घिस्सू बाबू के पुत्र कमल बाबू ने अपने पितामह तथा पिता की तरह आज तक रामलीला का सफल संचालन किया, उल्लेखनीय है कि नौगांव में कल्याणदास जी अग्रवाल का पूरा सहयोग रामलीला को था बाद में उनके पुत्र स्व. किशोरीलाल जी फिर उनके पुत्र स्व. नारायणदास जी अग्रवाल का सदैव सहयोग रहा।

नौगांव रामलीला के सौ वर्ष पुराने संवाद तथा गीत आज भी उनते ही लोकप्रिय है तथा श्रोताओं के मन पर गहरी छाप छोड़ते हैं, धनुष यज्ञ के समय सखियों द्वारा गाया जाने वाले गीत 'शिवजी का धनुष उठालो उठालो श्रीराम जी'' सुनकर दर्शक भाव–विभोर होते हैं। वहीं वनवास के समय राम द्वारा कौशल्या के समक्ष गाया जाने वाला गीत ''आज पिता के मात वनों का राज हमें दीन्हा,'' सीता हरण के समय ''वन में विछोह करके सीते कहाँ सिधारी'' तथा लक्ष्मण शक्ति के समय अनुमान द्वारा संजीवनीवटी लाने में देर होने पर राम द्वारा प्रलाप करते हुए ''लौट कर कपि नहि आये सुनकर'' दर्शक हिचकियां भर–भर कर रोते थे, वहीं सखी बाबा जैसे कलाकार नृत्य करते, हंसाते गुदगुदाते थे। पूरी लीला में जहां प्राणों के प्रभावशाली संवाद, गीत, संगीत तो दर्शकों को लुभाते ही थे वहीं अत्यंत कलात्मक ढंग से अग्निदेव का प्रकट होना, पर्वत पर संजीवनी का चमकना, परशुराम का पर्वत श्रृखला से कूँदना धनुष टूटने पर क्रोध से कौड़े मारना तथा लक्ष्मण परशुराम संवाद मन मोह लेते थे।

प्रतिवर्ष मुकुट पूजन से प्रारंभ होकर राजगद्दी तक की लीलायें, रामलीला हाल में होती, रावण दहन दशहरा मैदान में ठीक गोधूलि की बेला में कई हजार दर्शकों के बीच होता तथा भरत मिलाप लीला स्व. सेठ किशोरी लाल जी के निवास पर होता जहां सेठ जी की धर्मपरायण पत्नी स्व. श्याम देवी स्वरूपों का तिलक करती थी, राम कलेवा कार्यक्रम रामलीला के संस्थापक स्व. मुन्नालाल मेहरोत्रा की कोठी पर होता था।

पिछले कुछ वर्षों में रामलीला का निर्देशन रामचन्द्र ओमर तथा दुर्गाप्रसाद अग्रवाल 'मुन्ना कटैल' करते चले आये हैं, वे दुःखी है कि आज समर्पित कलाकार नहीं है, दर्शकों का अभाव है पहले महीनों पहले से अभ्यास होता था, आज अभ्यास का समय नहीं है, परन्तु अनेक कठिनाइयों के बाद भी रामलीला का स्तर कायम है।

शताब्दी वर्ष की लीला के प्रमुख पात्रों में पुष्पद तिवारी (राम), उमेश मिश्रा (लक्ष्मण) हेमकुमार गुवरेले (सीता), आशीर्वाद तिवारी (भरत), आदित्य शर्मा (शत्रुघन), दीपक दीक्षित (हनुमान), श्यामलाल नायक (रावण), सुनील तिवारी (मेघनाथ), राजेन्द्र दीक्षित (दशरथ) और शबरी के रूप में मोहनलाल मिश्रा, गुल्लू महाराज हैं साथ ही अनेक पुराने कलाकार अपनी–अपनी भूमिकाओं में यथावत् हैं, इनके साथ मुन्ना कठैल, रामचन्द्र ओमर, रामायणी तथा राजेन्द्र पटैरिया, पंकज पाण्डे आदि श्रृंगारी हैं, हरीभाई सोनी सूपनखा, मंथरा तथा मसखरा की भूमिका निभाते हैं।

लगातार ७५ वर्षो तक रामलीला में विभिन्न भूमिकाएँ करने वाले स्व. हरनारायण महाराज ने दो वर्ष पूर्व पुराने कलाकारों

की जानकारी देते हुए बतलाया था कि वर्ष १९५०–५२ में जब रामकुमार चंसौरिया राम बने और विजय शंकर मिश्रा लक्ष्मण बने तब गजब का अभिनय हुआ था वह मानस पटल अमर है, १९५० में रामकुमार के साथ लक्ष्मण की भूमिका में रमेश चन्द्र दीक्षित रहे। यादों को कुरदेते हुए पं. हरनारायण ने बतलाया कि १९०५ के पात्र तो नहीं मालूम परन्तु १९२५ के पूर्व रामेश्वर दयाल (राम), बद्रीनाथ (लक्ष्मण), मुन्नी भइया (भरत), रमादयाल अग्निहोत्री (दशरथ) बने थे, १९२९, ३०, ३१ में बलराम मिश्रा राम बने थे, १९३२ में कुन्नी बाबू (राम) बने थे, १९४८–४९ में मोहन तिवारी (राम), गोविन्द शर्मा (लक्ष्मण) बने, साठ के दशक में शिवनारायण चतुर्वेदी ने भरत तथा राम की भूमिकाएं की है तथा मक्खन शर्मा भी जनप्रिय कलाकार रहे, इन्हीं कलाकारों में रावण की भूमिका में लोकनाथ तिवारी तथा वाणीभूषण महाराज के नाम ऐतिहासिक माने जाते हैं।

चमत्कारिक एवं अविस्मरणीय घटनाओं का स्मरण करते हुए पं. हरनारायण ने बतलाया कि एक बार नौगांव पोलिटिकल एजेन्ट 'अजार्टन' साहब रामलीला देखने आये, धनुष यज्ञ में शिव धनुष टूटने से गुस्साये परशुराम ने उन्हें भी कौड़ा मार दिया, वे खफा हो गये, उन्हें बताया गया कि कौड़ा तो वरदान 'ब्लैसिंग' है परन्तु वे उठकर चले गए, परन्तु अगली साल खुद कौड़ा खाने आये बोले उन्हें परशुराम के आशीर्वाद से शादी के कई साल बाद पुत्ररत्न मिला है। इसी प्रकार एक बार रामलीला के परशुराम पात्र के न आने से लीला की घंटी नहीं बजी, न जाने कहां से एक बाबा आया और बोला मैं परशुराम बनूंगा और इतना प्रभावशाली अभिनय किया कि लोग भौचक्के रह गये, लीला के बाद बाबा कभी नहीं दिखा। रामलीला में बल्ले बाबू द्वारा चकिया पीसना, घिस्सू बाबू द्वारा घांघरा पहनकर नाचना अद्भुत दृश्य थे। हरनारायण महाराज ने बतलाया कि पहले राजगद्दी के बाद ड्रामे होते थे, उनकी अंतिम इच्छा थी कि शताब्दी वर्ष की लीला के बाद सीता वनवास ड्रामा खेला जाय और वे सीता की भूमिका करें परन्तु बेचारे एक वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधार गये।

५५ वर्ष पूर्व राम की ऐतिहासिक भूमिका करने वाले रामकुमार चंसौरिया जो रिटायर्ड पुलिस अधीक्षक हैं जिन्हें १९९४ में मुरैना के डकैतों के विरुद्ध चलाये सफल अभियान के लिये राष्ट्रपति पदक मिला था बतलाते हैं कि उस काल में पात्रों को पूर्ण पवित्र वातावरण में रखा जाता था महीनों अभ्यास होता था तथा जो जिसका अभिनय करता उसे उस पात्र के नाम से पहचाना जाता था, उन्हें आज की स्मरण करके रोमांच होता है, लगता है फिर वही दिन लौट आये। वे ऐतिहासिक पात्रों का स्मरण करते हुए वाणीभूषण (रावण), स्व. पं. हीरालाल (अंगद) सखी बाबा दिब्बन महाराज, शिवनारायण खरे तथा गुल्लू महाराज, पं. रामसेवक, जगन्नाथ सेठ, लच्छी नामदेव को नहीं भूला पाते, अन्य स्मरणी कलाकारों में नारायण मास्टर का संगीत, गुल्लू स्वर्णकार द्वारा श्रृंगार करना भुलाया नहीं जा सकता वहीं हरिचरण मिश्रा, चिंतामणि शर्मा, मक्खन शर्मा, मुन्नी सेठ, भगवानदास गोविन्द एवं नत्थू पोप के अभिनय भी चर्चाओं में रहते थे।

साठ के दशक में राम, शिवनारायण चतुर्वेदी वर्तमान वातावरण से दुःखी हैं, उनकी तमन्ना है कि रामलीला के संस्कार जीवत हों, अर्थयुग में आवश्यक है कि इस महान् लीला को शासकीय सहायता मिले तथा कलाकारों को प्रोत्साहन देकर रामलीला को अमर बनाया जाए।

रामलीला के निकटता से जुड़े स्व. सेठ किशोरीलाल जी ज्येष्ठ पुत्र स्व. नारायणदास जी अग्रवाल मानते थे कि रामलीला त्रेतायुग के आदर्शों को जीवन्तता प्रदान करने के साथ देश भर में रोजगार का बहुत बड़ा साधन है जिसमें लाखों करोड़ों लोग चाहे वे ड्रेस, पर्दे सीते हों, खौमचा बेचते हों, लाइट, माइक वाले हो परिवहन वाले हों, चाहे कलाकार संगीतकार जो भी हो सभी रोजगार पाते हैं, रंगकर्मी रावण बनाते हैं, करोड़ों तीर–कमार बिकते हैं नारायण भइया की मान्यता थी कि रामलीला गांव–गांव में होनी चाहिए जिससे भारतीय संस्कार जीवित रहें भाई–भाई में प्रेम की भावना जगेगी क्योंकि रामलीला त्याग की महान गाथा है।

पिछले सौ वर्षों में रामलीला पहले खुले मैदान में प्रारंभ हुई बाद में टीन के चादर लगाकर शेड बनाया गया और स्व. बलभद्रदास 'बल्लेबाबू' ने रामलीला हाल बनवाकर हजारों दर्शकों को लिये व्यवस्था की परन्तु अब हाल छोटा हो गया है समिति ने खुले मैदान में कई लाख लगाकर भव्य शताब्दी स्टेज बनाया है, दर्शकों के अभाव की निराशा झेलते हुये भी आयोजकों को संतोष है कि आज सौ साल की परम्पराओं का पालन करते हुये रामलीला संचालित कर रहे हैं तथा नौगांव का राम–रावण महासंग्राम तथा रावण दहन लीला आज भी हजारों दर्शकों का प्रमुख आकर्षण है आयोजकों को अपने पूर्वजों पर गर्व है कि उनने छोटे से कस्बे में इतनी विशाल परम्परायें डाली जिनसे नौगांव का पूरे देश में विशिष्ट पहचान तथा ख्याति मिली।

नौगांव रामलीला के रामकृष्ण अग्रवाल २० वर्षों तक सभापति रहे, उनके पूर्व यह गरिमाशाली पद उनके पिता स्व. श्री रामप्रसाद जी अग्रवाल के पास था वर्ष २००३ में श्री रामकृष्ण अग्रवाल ने स्व. किशोरीलाल जी अग्रवाल के धर्मपरायण पुत्र श्री जयनारायण अग्रवाल को सभापति बनाया तथा नौगांव में शताब्दी रामलीला को तैयारियों हेतु नये स्टेज का निर्माण हुआ।

नौगांव रामलीला का इतिहास रामकथा की तरह अनंत है, बहुत प्रयत्न करने पर भी वर्ष १९०५ से अभिनेताओं की सही जानकारी नहीं मिल सकी, जो भी पुरानी जानकारी मिली उसे इस आलेख में सूक्ष्म रूप में दिया जा रहा है, जिससे कम से कम उन भूले बिसरे कलाकारों का स्मरण किया जा सके जिनके बारे में जानने वाले भी अब धरती मे नहीं हैं।

कुल मिलाकर नौगांव रामलीला संचालित करने वाली टीम स्तुत्य है जिसके निःस्वार्थ रामलीला प्रेम से सौ वर्षों में एक स्वर्णिम इतिहास बना है। जिस पर हर नागरिक को गर्व हो सकता है। □

– किशोर सागर, छतरपुर

सैर गायक भगवान दास कुशवाहा : एक साक्षात्कार

– डॉ. हरिसिंह घोष

छतरपुर की काव्य परम्परा में सर्वाधिक समृद्ध लोककाव्यधारा है जिसका संभवतः कारण है यहाँ प्रचलित साहित्यिक प्रतियोगिताओं की एक विशिष्ट परम्परा जिसे फड़बाजी के नाम से भी जाना जाता है। इन फड़ों के निमित्त यहां दो प्रतियोगी अखाड़े हैं। एक अखाड़े के नायक स्व. पं. गंगाधर व्यास और दूसरे के नायक स्व. पं. परमानंद पाण्डे थे। दोनों आचार्यों द्वारा स्थापित दलों के बीच अभी भी फड़बाजी होती चली आ रही है। इन अखाड़ों को स्थायित्व देने में आचार्य कवि और शिष्यत्व प्राप्त गायकों की भूमिका महत्वपूर्ण है। पं. परमानंद पाण्डे के दल में ऐसे ही एक गायक श्री भगवानदास कुशवाहा हैं। उनसे हुई चर्चा का सार संक्षेप यहां प्रस्तुत है –

प्रश्न –आपने सैर गाना कब से शुरू किया?

उत्तर – हम और रामकृपाल मिसर पांडे जू के मदरसा में एक संगै पढ़त तैं उतई पढ़ाई के बाद पं. नन्दकिशोर पाण्डे हम दोई जनन खों सैरें सिखाओ करत ते। उनई के आशीर्वाद सें हम गाउन लगे।

प्रश्न –अपने गुरूजी के बारे में कछु जानकारी बताइये।

उत्तर –पं. श्री नन्दकिशोर पाण्डेय गुरु परमानन्द पाण्डेय के इकलौते लड़का हते। सरकारी मास्टर रहे। पेन्सन होवे के बाद सरकार की तरफ से जेल में पढ़ावे जात ते और घरै एक मदरसा खोलैं ते। सैरें लिखवे और गावे को उन्हें बड़ौ शौक हतो। उनकी एक बैन हती जो बसाटा गांव में व्याही ती। बहिन के बेवा (विधवा) हो जाने के कारण उने इतई छतरपुर बुला लओ तो और भनेज श्री पूरनलाल मिसर खों मदरसा सौंप दओ तो।

प्रश्न –उस समय आपके दल में कौन–कौन आचार्य कवि थे और सैरों को गाने वाले कौन थे?

उत्तर –गुरु परमानन्द पाण्डे के दल में उस समय जो कवि कविता करत ते उनके नाम हैं – श्री हरप्रसाद भागौर, श्री रामदयाल ब्राह्मण, श्री ब्रजभूषण जी, श्री प्यारे जू (राजनगर थाना मौजा किसुनपुरा निवासी), श्री रामलला शर्मा (राजनगर में एक मंदिर के पुजारी), श्री महादेव प्रसाद चौबे 'अनन्त' (छतरपुर), श्री रूपनारायण पाठक शास्त्री, श्री नन्दकिशोर जी और पं. श्री रामकृपाल मिश्र रहे। पं. रामकृपाल जी मिश्र आज भी लिख रये।

सैर गायकन के मुख्य–मुख्य नाम ई प्रकार से हैं – सर्व श्री बैनी प्रसाद, गंगा रनैइया, सुक्केधामी, मुन्नू शक्ल, नन्दकिशोर शुक्ल, चुन्नूलाल शुक्ल, जानकी खरया, रामदास ताम्रकार, रामकृपाल (छोटी सिरसी, उ.प्र. वाले)

हाल में जो गायक हैं उनके नाम हैं – सर्वश्री स्वामी प्रसाद अग्रवाल, घनश्याम अग्रवाल, बिहारी सेन, किशोरी लाल विश्वकर्मा, रामाधीन विश्वकर्मा, नाथूराम विश्वकर्मा, धरमदास सेन, मुरलीधर कुशवाहा, लखू वर्मा, भगवान दास कुशवाहा।

प्रश्न –सैर गायन के साथ किन वाद्यों का प्रयोग परम्परागत होता है और सह–गायक कितने होते हैं?

उत्तर –सैर गायन के साथ दो घेरा, एक जोड़ी मंजीरा, और एक ढोलक और साथ के गाने वाले आठ–दस जने होत।

प्रश्न –घेरा और चंग में क्या अंतर है?

उत्तर –चंग ख्याल गाउत में बजाई जात, जा घेरे से दुगनी होत। चंग में घुंघरियाँ और पलियाँ लगी रातीं और बजावे वाले की उंगरिया में एक छल्ला पैरो जात जी सें चंग बजाउत में टकोरी लगाई जात। घेरा सादा होत, ई में घुंघरियां और पलियाँ भी नइ होती और छल्ला की टकोरी भी नई लगाई जात। घेरा केवल सैर के संगै बजाओ जात।

प्रश्न –सैर को गाते समय आवश्यक आरोह–अवरोह का किस प्रकार ध्यान रखना पड़ता है, और वाद्यों का प्रयोग कब कहां होता है?

उत्तर –सैर के संगें वाद्य बीच–बीच में बजाये जात, लगातार नईं। सैर चार चौक की होत। दो चौक के बीच में झोलना, छंद या लावनी तीन में से एक कछू रखी जात। कछू सैरें सादा केवल चार चौक की होतीं। सब में दोहा पैलां पढ़ो जात। ईखों सैर के संगैं समझबे में ठीक रैहै। गायक ने पैलां दोहा पढ़ो। (वाद्य बाद में)

गायक – (सैर)

नर नाहीं श्रीराम काम डरकें करना।
नर नाहीं श्रीराम ... (इस अर्द्धाली के कहने पर वाद्य बजहैं)

दूसरा साथी (इसी को तानेगा – आरोह)

नर नाहीं श्रीराम काम डरके करना।

गायक (ढलान में – अवरोह)

कर ना कुटेक अपनी जा चित में धरना।
धरना ध्यान प्रभु का ये काया अमर ना।।

(सभी साथी गाहें – वाद्य के संग) धरना ध्यान प्रभु का
(अरे) धरना ध्यान....

गायक (टेक) – मर ना विशेष, कंत समझ रामै नर ना।

(गायक) – नर नाग सुर मुनीजन के दुख के हरना।
नर नाग सुर (दो बार) (अर्द्धाली के साथ वाद्य बजहैं)

दूसरा साथी (इसी को तानेगा आरोह) –

नर नाग सुर मुनीसन के दुख के हरना।

गायक (ढलान में अवरोह) –

हर ना विशेष त्याग है तिनके चरना।
चर ना अचर डरावैं, तू ठान समर ना।

(सभी साथी गावेंगे–वाद्य के साथ)

चर ना अचर डरावें, (अरे) चर ना अचर
मर ना विशेष, कंत समझ रामै नर ना।। टेक

(ई के बाद झोलना पढ़ो जैहै – वाद्य बंद रैहैं)

ई तरां सें आगें सैर चलहै।

– घोषयाना, छतरपुर म.प्र. □

फागकार भुजबल सिंह परिहार

— कुन्जीलाल पटेल 'मनोहर'

ठाकुर भुजबल सिंह परिहार बुन्देली फागकाव्य के अमर प्रणेता माने जाते हैं। आपके व्यक्तिव एवं कृतित्व की चर्चा के अभाव में फागकवियों एवं फागकाव्य अधूरा एवं एकांगी सा प्रतीत होने लगता है। बुन्देलखण्ड की पावन तपो भूमि में आपका आगमन भी उचित समय पर हुआ। फागकाव्य के एक अधूरे हिस्से को पूरा करने का श्रेय आपको ही दिया जाता है।

ठाकुर भुजबल सिंह परिहार का जन्म सन् १८८८ ई. तथा देहावसान सन् १९२० ई. के लगभग बतलाया जाता है। आपके पिता का नाम ठाकुर फूलसिंह परिहार था। शोधयात्रा के दौरान मुझे ग्राम पनवाड़ी के कुछ प्रतिष्ठित तथा वृद्ध सज्जनों ने बतलाया है कि ठाकुर भुजबल सिंह परिहार का बचपन पनवाड़ी में तथा जीवन का अधिकांश काल धुरट ग्राम के समीप छतरपारा नामक ग्राम में व्यतीत हुआ।

ठाकुर भुजबल सिंह परिहार अपने समय के कुशल, प्रतिष्ठित तथा समर्थ फागकार थे। आपने चौकड़िया फागों की अपेक्षा छंदयाऊ फागों की रचना ज्यादा की है। श्री आशाराम जी त्रिपाठी ने अपने लघुशोध प्रबन्ध "लोककवि भुजबल सिंह और उनका फाग साहित्य" में लिखा है कि "ठाकुर भुजबल सिंह की फागें आज तक भी पूर्ण रूप से उपलब्ध नहीं हो पाई हैं। लेकिन फिर भी, जितनी फाग सामग्री उपलब्ध हुई है, उसी के अध्ययन एवं विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि भुजबल सिंह ने रामचरित्र विषयक, कृष्ण चरित्र विषयक, भरथरी चरित्र विषयक, महाभारत विषयक, प्रेम विषयक, विनय विषयक, नाम संज्ञा विषयक, रंग पर रंग विषयक एवं विविध विषयक फागें प्रचुर परिमाण में रचीं हैं।"

भुजबल सिंह की फागों में रंगत अर्थात फड़बाजी का पूरा–पूरा समायोजन देखने को मिलता है। पहेलियात्मक फागें तथा गुढ़ार्थ फागें आपने पर्याप्त मात्रा में रचीं हैं। फड़बाजी की एक फाग यहां दृष्टव्य है –

रंग की जा तस्वीर उतारौ, जो रंग माय पवारौ।
ना धरती न आसमान में, ना पाताल विचारौ।
तीन लोक की बात न करियौ, जिये डार दओ तारौ।
भुजबल सिंह आज के फड़ में, ज्वाव देव कै हारौ।।

भुजबल सिंह की फड़बाजी विषयक फागें प्रतिस्पर्धा की कसौटी पर लाजवाब एवं खरी उतरती है। उनका साहित्यिक ज्ञान अपने समकालीन प्रमुख फागकारों की भांति अत्यन्त विस्तृत था। वे सच्चे अर्थों में एक समर्थ फागकार थे। बुन्देली फागकाव्य के माध्यम से ठाकुर भुजबल सिंह की अपने समीपस्थ समस्त फागकारों से फड़बाजी के आधार पर साहित्यिक प्रतिस्पर्धा होती रहती थी।

ठाकुर भुजबल सिंह अनेक दृष्टियों से अपने समकालीन आचार्य ईसुरी, कविगंगाधर व्यास, ख्यालीराम राजपूत, मनभावन शुक्ल, रसिया आदि समर्थ फागकारों से पूर्णरूपेण प्रभावित थे। आचार्य ईसुरी की रजऊ विषयक, नख–शिख चित्रण, आभूषण तथा परिधान का वर्णन होने वाली श्रृंगारी फागों से भुजबल सिंह पूरी तरह प्रभावित थे। इसीलिये तो वे रजऊ के नारंगी से जुवनवां तथा 'प्रान खान जंजाली चूनर' का चित्रण करते हुये लिखते हैं –

मनमें भरीचली गई लाली, भई न बोला चाली।
नारंगी से दोई जुबनवां, माली कैसी डाली।
हमसे बैर प्रीत औरन सें, जेई करेंजे साली।
'भुजबल सिंह' रजऊ की चोली, प्रानखान जंजाली।'

ठाकुर साहब के फागकाव्य में पारिवारिक संस्कृति के दर्शन भी सहज ही हो जाते हैं। आपने अनेक प्रकार के अच्छे बुरे पारिवारिक सम्बन्धों का चित्रण कुशलता पूर्वक किया है। बुन्देलखण्ड की पारिवारिक संस्कृति अत्यन्त मर्यादित एवं परिनिष्ठित मानी जाती है। पारिवार में औरतो को लोकलाज, आड़पर्दा आदि का अत्यधिक ध्यान रखना पड़ता है। जवान पत्नि को अगर अपने पति से कोई शिकायत होती है तो वह केवल अपनी ननद से ही कह सकती है। ठाकुर भुजबल सिंह की फाग में वर्णित एक रमणी का पति निरसई का शिकार है देश–देश के वैद्यों से दवा कराने पर भी रोग नहीं जाता। सभी प्रकार के उपयुक्त उपाय करने पर भी कोई आराम नहीं लग रहा है। इस कमजोरी के कारण अपने पति की शारीरिक दशा का वर्णन करती हुई भाभी अपनी प्यारी ननद से कहती है –

बालम हैं निरसई के मारे, ननदी विरन तुमारे।
देस–देस के वैद जुरेहैं, रोग टरें न टारे।
घी शक्कर और दार फुलकियां, सब बनवाकें हारे।
'भुजबल सिंह' रजउवा प्यारे, ऊसई हते इकारे।।

ठाकुर भुजबल सिंह ने अपनी भाषाभिव्यक्ति के लिये चौकड़िया एवं छन्दयाऊ फागों को ही अपनाया है। वैसे आपने ज्यादातर काव्य रचना छंदयाऊ फागों के माध्यम से ही की है। ठाकुर साहब के काव्य के विषय अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत थे। प्रेम विषयक फागों में बैचेनी की छटा देखते ही बनती है। बालापन की प्रीति, उस समय ज्यादा अखरती है जब प्रेमिका अपने प्यारे बचपन के प्रेमी को छोड़कर ससुराल चली जाती हैं। प्रेमी को जैसे ही प्रेमिका के ससुराल जाने का पता चलता है वैसे ही उसका दिमाग खराब हो जाता है तथा खाना पीना छोड़ देता है, और अन्त में बचपन में की गई प्रेम विषयक आंख मिचौली तथा आलिंगन की बातें यादकर कर रोने लगता है। ठाकुर भुंजबल सिंह की एक ऐसी ही प्रेमिका की जब बिदा होती है, तब वे अपनी लगी के ऊपर नदिया तक पछयाने जाते हैं। प्रेमी प्रेमिका सम्वाद की प्रेम विषयक पूरी फाग देखिये –

दोहा – बालापन की प्रीत में, कीनो भोग विलास।
पिया संग ससरे चलीं, छोड़ हमारी आस।।
टेक – सांसी काव रजऊ का कानें, सुनी सासरे जानें।
छन्द – प्यारी होने अपनौ जैबो, मुसकल हो गओ बोल बतैवो।
रजुवा ता पीछै दुख दैबो, तुमने हमखां।
जीदन तुमे देखना पावै, उदना धीरज कौन बंधावे।
स्वांसा थोरी आवै जावै, तुम बिन हमखां।।
उड़ान– धीरज मौरो न बंधे, तुमरे बिना दिखाने।
सांसों जी विस्वास कठारा, प्रान रहें चय जाने।।
दोहा – बस भौरो छैला नहीं, जान पिया संग देव।
आब रैन सुख चैन की, लगा गरे सें लैव।।
टेक – हमखां गरै लगालो प्यारी, जामें जीव जुड़ाने।
छन्द – हमखां बैठारौ ओली में, देखौ हाथ डार चोली में।
प्यारे नई उभर भोली में, कर लैव प्यार।
देखौ हांत डार निज बइयां, जाने कबै मिलाय गुसैयां
होने फेर मिलन अब नइयां, जाने यार।
उड़ान– फेर मिलन होने नहीं, अब आगे को जाने।
हमखां गरें लगा लौ प्यारे, जामें जीव जुड़ाने।।
दोहा – प्यारी के सुनतन बचन, लगे रोम थर्रान।
भरी तरैयां नैन दोउ, असुआ लगे बहान।।
टेक – असुआ तुम आंचर से पौंछो, गालन जात बहानें।
छन्द– आंसू चुअत करत बतकाव, अब का करिये कौन उपाव
इनकौ टूटन लगो हिबाव, मिट जाय जखम।
प्यारी तोरें ऐसी चिट है, बातौ अब कभऊं ना मिटहै,
जौ बोलौ परे न संग लपिट हैं, हम तुमरे संग।।
उड़ान– संग सोबत कैसी हुये, जैना हमें सुहानें।
प्यारी के सुनतन बचन, तीर समान समानें।।
दोहा– दोनों किलपें सेज पै, थोरी रैगई रात।
छैल काम जल्दी करौ, मानो मोरी बात।।
टेक – कम्मर पकर यार की सैजन, दोई परे लिपटाने।
छन्द – दोनों दिल में कर रये भोग, दिन में जाने होत वियोग
उनखां पर गओ सोसन रोग, संका भारी।
जौलो हो गओ भोर भुरैयां, छिप गये चंदा और तरैया
मगरे बोलन लगी चिरैयां, बिछुरी प्यारी।।
उड़ान– इत टंकार बिदा की लागी, पलकी पिया सजानें।
भुजबल सिंह लगी के ऊपर, नदिया लो पछयाने।।
कहरवा–ऐसो कोउन भओ, करदई बिदा लौटा लाऊतौ।।

ऐसी अनेक फागें शोधयात्रा के दौरान मुझे ठाकुर भुजबल सिंह की उपलब्ध हुई है। भुजबल सिंह की फागों में कवि गंगाधर व्यास की भांति कहीं–कहीं अश्लीलता भी देखने को मिलती है। उनके राधा कृष्ण के प्रेम विषयक प्रसंगों में भी अश्लीलता के दर्शन होते हैं। अनेक फागकारों तथा समीक्षकों का कहना है कि जिस प्रकार से रामकथा के सम्बन्ध में गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपनी अन्तिम बात कहदी है, उसी प्रकार से चौकड़िया फाग के सम्बन्ध में लोककवि ईसुरी एवं छन्दयाऊ फागों के सम्बन्ध में ठाकुर भुजबल सिंह परिहार ने परवर्ती फागकारों के लिये कुछ भी नहीं छोड़ा है।

शोधयात्रा के दौरान उपलब्ध सैकड़ों फागों के अध्ययन एवं विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि ये अपने समय के एक प्रतिष्ठित फागकार थे। इनको किसी भी दृष्टि से समकालीन प्रमुख फागकारों की श्रेणी से पृथक नहीं किया जा सकता।

प्रमुख फागकवियों ने बुन्देली लोक काव्य भारती की सच्ची सेवा कर फाग–काव्य विधा को चरमोत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया है। फाग साहित्य के क्षेत्र में उपर्युक्त समस्त प्रमुख लोक कवियों की पृथक–पृथक देन हमेशा स्मरणीय रहेगी। बुन्देलखण्ड के फाग कहने वालों में ईसुर, गंगाधर भुजबल सिंह और ख्यालीराम का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। ईसुरी की भांति भुजबल सिंह अपने संगीत तथा दंदयाऊ फागों के लिये प्रसिद्ध है और भी अनेक समर्थ फागकार इस बुन्देलखण्ड की पावन–काव्य भूमि में अवतरित हुये है, जिनके कारण फाग साहित्य का उद्धार हो सका।

–३/४, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
शास. महाराजा महाविद्यालय, छतरपुर □

"अब हमें पढ़ाउने भइया"

– डॉ. जवाहर लाल द्विवेदी

एक दिना राते दद्दा मताई कौ, होत रवै बतकारो।
कारी, अपने पलटुआ ने, भौतई तौ पढ़ डारौ।।
कहन लगत तौ नई पढ़ाउने, अपने लरिका खौं।
ना जानें कां लगे नौकरी जानें कौन मुलक खौं।
आंखन तरें राखतें अपने, खाते रोटी पीते पानी।
पलटू तिलकवरी गकइया खों, रोजऊ देतो सानी।
सानी ख्यावे से दूधई के परने ते अर्रा राटे।
तान पिछोरा सोते हम तुम, लेते खूबई धुर्राटे।।
इतनई भीतर आ गय गाँव के टंगने दद्दा।
कहन लगे का मचा दओ है तुमने जुद्दम जुद्दा।।
बोली मताई दद्दा सें मोरौ काम नशा गयौ सारौ।
घरें नई कोऊ टउका करवें, खेत बुवा न पाऔ।
माते बोले पलटू ने पढ़लव, काम बनौ है सच्चौ।
ई सालई के भीतर, पलटू हाकम बनजे अच्छौ।।
पलटू को दद्दा बोलो, जा नई जानत रये भइया।
आफत में मोय प्रान फंसेते, कोऊ न रयौ बचैया।
हमें सोऊ अपने रमुआं खों स्कूलें पौंचाउने।
जैसौ बनारव पलटुआ सो, बैसऊ ऊये बनाउंने।
उठौ चलो अब रात बीत गई डूबन लगी जुंदैयां।
हमनें पढ़ालयो लरिका खों, अब हमें पढ़ाउने भैया।

– प्राध्यापक वाणिज्य, शास. महाविद्यालय राघौगढ़
जिला गुना म.प्र. □

बुंदेली के पर्यायवाची शब्द (२)

— सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष'

वर्तमान में आधुनिकता के प्रभाव ने लोकभाषाओं के अस्तित्व के लिये संकट खड़ा कर दिया है। जनसामान्य भी इससे प्रभावित है। स्वाभाविक है कि लोक भाषाओं के शब्द विलुप्त होने लगेंगे। बुंदेली के समृद्ध शब्द–भण्डार की सुरक्षा का प्रयास भी आवश्यक है। कविवर सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' वर्षों से संकलित करने की साधना में नियमित लगे हुए हैं। बुंदेली बसंत में क्रमशः प्रकाशन भी हो रहा है। पिछले अंक में ३०३ शब्दों के बुंदेली पर्यायवाची प्रकाशित हुए थे उसी के तारतम्य में यह स्तुति है।

— सम्पादक।

अग्रिम — व्यानों, साई, पेशगी, साई

अभिनय — नाटक बगरावौ, नकलें, दिखावा, स्वाँग

अमृत — अमरौती, अमरित, इमरत, अमी

अभी — अबईं, अव्वै, अव्वईं, अवैहाल, अवइ, तुर्त फुर्त, तुरतई

अवधि — औध, म्याँद, टिया, जौलों, तौलों, मुद्दत

अवसर — औसर, दाँवपरें, संजोग, सुजोग, स्यातघरी, मौका–बेरा

अहसान — जस, थराई, दबारौ, नामनां

आटा गूंथना — सान बौ, माँड़वौ, गूंथवौ, गींजबो

आदत — चट, टक, लपक, लत, चस्कौ, गीदवौ

आवृत्ति — दफै, बार, दफा, धइयाँ, धाँईं, दाँईं, वेरीं, वेर

आलस्य — अँगरौ, जमुआवौ, अलस्यावौ, उर्स्नींद, सुसती,

आज्ञा — अग्या, मरजी, कैरो, भई, हुकम

ईख — बराई, अंख, पोंड़ा, गन्नौ

इज्जत — बाँक, पौनीं, माँन–सम्मान, मारजरजादा, आवस

उदास — रीनीं, रीने, रीनौ, मनडारें, अनमनी, अनमनो, अनमने, उदासीं, उदासे, मनमारें,

उलाहना — उरानों, सिकात

उलटे मुँह — औंदौ, पट्ट, फद्द, मों के बल

एकान्त — सनाकौ, सन्नाटौ, वियावाँन, सुन्नसाँन

कल — कल्ल, भ्याँने, काल, सकारें

कसा हुआ — कसतौ, ओछो, गाड़ौ, कसो, फँसतौ

किवाड़ लगाना — अटकावौ, उड़कवौ, अड़कावौ, लटकावौ

खस्तापन — फुसफुसौ, मुसमुसौ, खसखसौ, मुलाम

खंभा — खम्भा, थूमा, घुमियाँ, थमला, थमसौ, थम्मों, धुनियां

गागर — गगर, गगरी, गगरिया, कलसिया, चैला

गरीबी — कँगीरी, गिरानी, कंगाली, दीनता

गरीब — नंगा, छूँछौ, कंगीर, कंगाल, नगड़दम्म, फटकचंद, दींन, गरीव–गुरवा

चारों ओर — गैरउँ, गेरकें, चौगिरदा, गेर–गेर, चौरतफी, चौतरफां

चिकना — चीकनौ, चिकनौ, चिक्कन, रिपटऊअल, सरकनौ

चोकर — चापर, चल्लौंसन, छानन, चालन

जुगली — दुतपन, दुती, माहिली, दोगलोइँ, जोरवौ, भिड़ावौ, जुजैबौ

छोर — छोडत्र, सिरौ, मूंड़ौ, किनारौ, कोर

समाधि — चेटका, चोंतरा, मकबरा, मुकरबा

चौकीदार — छड़ीदार, लठैत, रखवारौ, रखनवारौ, कोटवार, ड्योड़ीदार, बिजत्तर

चंचलस्त्री — छम्मक छल्लो, चढ़ाए की नाँउन, छप्पन छुरी, छैली, लुक्कन

जंगल — डाँग, हार–पहार, वन

जल्द काम करना—छनक्वारी, चटकवारी, फटाफट, कहपट्ट, लुक्कन, चटकपन

जिद — जिद्द, ठान, टेक, रिस, हठ, खँगवौ, अड़

जोड़ी — जुह, जुट्टा, जुगल, जोरी, जुग, जुरैला, जोरा, दोऊ दोठौ, दो ठया दो गैलें

डाकू — डकैत, वागी, फरारी, भड़या

डांका — कांकौ, डाकजनी, लुटयार, डकैती,

तक — नों, लों, तलक

थोड़ा — थोरौ, तनकमनक, टुक, कछू, नेक सौ, तना, तन, जरा, तनक

दल — गुट्ट, जुट्ट, पच्छ

दहलान — दालान, दुगई, उसारौ

दौड़ाना — रगदबौ, रगदाई, पुरैटनौ, खमेटरौ, पाछौकरबौ, रगड़वौ

द्वितीय — दूसर, दूजौ, दूसरौ, दूसरें, और दूजें

धीरे — धींमें, हराँके, हराँ–हराँ, हरईं–हराँ, मजे सें, हौलें,

धूर देना — असीलीं धरावौ, चुन्नू, चौपें चड़ावौ, ताव दिवा बौ

धैर्य — धीर, धीरजताई, गम्म, सबर

ननद — बिन्ना, बिन्नू, ननदी, ननदिया, ननदुलिया, नंद

नाराज — खुंसयाने, खुन्नसभरे, गुस्सां, गुस्सयाने, खिन्न लालपीरे

नित्य — नित, सदाँ, हमेसां, रेजइँ, रोजऊँ, राजीनां, रोज रोज, सबदिनां, बंदकें

निद्रा — झपबौ, सोवौ, पलक झपकवौ, आंख लगवौ, झपकवौ

निवासी — रहैया, रहवइया, रिवइया, रहस, रहनइ, रैवासी, वासी

भोज — पंगत, पाँत, पंगती, ज्योंनार

परखना — देखवौ–भालवौ, जाँचवौ, कसवौ, पइखवौ

पहिनना — पेंनवौ, डटवौ, पैरवौ ओड़वौ, मटकवौ, धारवौ,

	विदैवो
पानदान –	मचला, बसना, बटुआ
पीड़ा –	पीर, पिरातौ, दरद, हूक, तड़कन, कसकन, सालवौ, पीरा
पुनः –	फिनकें, फिरकईं, दूसराँ, दूसरें, दार–दार, दुसरावौ, दूजें, फिरसें
प्रतिज्ञा –	पिरन, ठान टेक, टेव, बीड़ा उठावौ, ठान ठानवौ,
प्रसन्नता –	उराब, हुलास, हरस, हालफूल, खुशी, खुशहाली
प्रभाव –	चलता, चलती, दवदबा, चरचराटौ, रौब दौव, दवारौ, दाब
प्याली –	बसी, तस्तरी, रकेबी, पिलेट
फुड़िया –	फुरिया, पिड़की, फुनगुनियां
बदले में –	एवजी, बत्तल, बल्दीं, बजाय, बजाई
बसोर –	धारक, धानुक, बसोड़, बांसफार
बाधा –	रेड़, भाँजी, रोक, नाकौ, रोकटोक, विलोरवौ,
बुद्धि –	भेजौ, अक्कल, दिमाग, सूजबूज, अकल, दिमाँक
भाग्य –	भाग्ग, भाग अंक, होंनी, करमगत
भूकम्प –	भोंचाल, भौडोल, भूचाल
भीड़ –	गचागच, ठसाठस, गसा, ठसा, गसी
भर्रा –	भर्रौ, धांदलगरदी, गड़बड़झाला, भोंसो, भोंसा खातों, भर्रो खातौ
भेजना –	पठैवौ, पोंचावौ, पहेलवौ, पहेटरौ, भेजा भाजी, पठावौ
मुफ्त –	फ्रीफंट, फोकट, फुकट्ट, वेदाम, विनछिदाम,
रईस –	लाखापत, धनीमाँनी, साऊकार, धनमान, लखपती, धर्नी, धनवारौ
रुकना –	थमथमयावौ, थमवौ, रुकबौ, रमबौ, ठैरवौ, डेरा डारबो
लड़ाकू –	लड़का, उरजैला, लड़इया, उरझैला, उरझंटया
सत्य –	साँसी, साँसमाँस, सच्च, सत, साँसू, सच्चूं, फुर
वहाँ –	उत, उतै, उतइँ, हुँआँ, मई, माँ
शरीर –	द्याँय, देय, देइया, चोला, आँग
शैया –	चरपइया, खाट, पलका, सिजिया, सेज, सेजा, खटोली
शेष –	वचोखुचो, वचन–खुचन, रइ–सइ, रओ–सओ, बाकी

– शुक्लाना, छतरपुर □

चौकड़ियाँ

– एल.एम. चौरसिया

जी के तरैं सखी री रानें, हां जू हां जू कानें
दिन खां रात कांय वौ ऊपै, तारे कड़े बताने।
जितने डग जां पै जब कैहें, उतने पांव बड़ाने।
तव लौ लयें चुरू में जबलौ, पर आसरेउ रानें।

मांगें भीख कोउ न दैहै, बातन में टरकैहै।
दै दै कै कोरी आशावस, नाहक दीन नशैहै।
दीन जान पांवन की सबकोऊ, जूती तुरत बनैहै।
गुइयाँ हक्क ओइ खां मिलहै, जो कोउ लरकें लैहै।

अब न भीख काउ सैं चाने, लरकें हक्क छुड़ाने।
टेड़ी अंगुरी सैं घी निकरै, करैं न सूदी राने।
लातन के जे भूत कबहुँ भी, बातन सैं न मानें।
दुरगा की अवतारी बनकें, ताकत परै दिखाने।

नारी कौन बात में कम है, सवई बरोबर दम है।
काम काज बुद्धि कौशल में, जग में आज प्रथम है।
करुणा के सागर में दावानल का भरा इलम है।
अब न सहेगी भेद भाव को, जो अक्षम्य जुलम है।।

अपने मनके नियम बनाये, भारी नाच नचाये।
डार बेड़ियाँ मरजादा की, अनुचित उचित कराये।
कबहुं अग्नि में लई परीक्षा, कबहूँ शिला बनाये।
पाँवों की ठोकर को भी ये, बड़े भाग बतलाये।
दै लइ भौत परीक्षा अबतौ, लैबे के दिन आये।।

दूशासन तुमसें का कइये, तुमें दोष का दइये।
धरमराज जब अधरम करबें, कैसें धरम बचइये।
प्रण की ओट पितामह पौरुष, तजे, देख पछतइये।
गांधारी पट्टी खोले तौ, उनखाँ दशा दिखइये।।

भैया बिना बात न मारौ, मन में तनक विचारौ।
तेरा मंडिया पूज पूज कैं, मन्नत करकें धारौ।
हाड़ मांस सैं बहै दूध कौ, अपने आप बनारौ।
बिटिया जान हांत सैं अपने, अपनी कौख उजारौ।।

जननी बिना बात न मारौ, अधरम धरम विचारौ।
दुष्टन की बातन में आकें, काटौ नहीं किनारौ।
गौड़ गुरइयाँ पूज पूज कैं, काहे गरभ में धारौ।
अपने हांतन पांव आपने, काये कुलारी मारौ।।

हो गये माता पिता कसइया, नइयाँ कोउ सुनइया।
चीन चीन कैं कुरा खुटक रये, दै रये खूब तसइया।
मगरमच्छ के आंसू ढारैं, ढौंगी सबइ बचइया।
मुख में राम बगल में दाबै, छुरी जतन सैं दइया।।

तुमने देखी न संसारी, का जानो लाचारी।
छिन छिन घूंट लहू के पीकै, जिये विचारी नारी।
देह धरैं सब अनुभव करकें, जुगती एक विचारी।
कन्या को पैदां सैं पैलऊँ, देबै मुक्ति खरारी।।

– सीताराम कॉलोनी, छतरपुर म.प्र. □

स्व. पं. गुलाबराय जी रचित –

कुछ बुन्देली–फाग गीत

प्रस्तुति – श्रीमती मणिकंचन शर्मा

आदर्श फाग

भैया ऐसी फाग रचइयो, आर्यादर्श जचइयो।
गोबर, मूत, गिलाए सें तुम, उन्ना–आँग बचइयो।
करिया और चमरया रँग सें, मों खों जिन चरचइयो।
गीत कबीर बुरए न गाइयो, हुल्लड़ नईं मचइयो।
जोरौं–गानों पैरा लोगन;, बनाँ न राई नचइयो।
पीरौ रँग प्रेम सें डारियो, भाल गुलाल खचइयो।
बैर–विरोद सबई विसरइयो, मन में खुन्स पचइयो।
'राय' सबई जें मिलियो–जुरियो, प्रेम–प्रीत परचइयो।
भैया, ऐसी फाग रचइयो, आर्यादर्श जचइयो।।

डँगई–लेद

खेलन अइयो घरै फाग, समलिया गैल चलत रँग ना डारौ।
अरे हाँ रे समलिया; गैल चलत रंग ना डारौ।।
अरे हाँ रे समलिया, तुम रँगियो चूली–चूनरिया,
मैं रंग हों परदनी–पाग, समलिया, गैल चलत रंग ना डारौ।
अरे हाँ रे समलिया, खेल परस्पर सुख पै है,
बड़है सांचौ अनुराग, समलिया, गैल चलत रंग ना डारौ।
अरे हाँ रे समलिया, हिलमिल भाँग छान छक हैं,
दई, बूरौ, पूरी–साग, समलिया, गैल चलत रँग ना डारौ।
अरे हाँ रे समलिया, 'राय' हमारी मानों तौ –
खुल जै है प्यारे भाग, समलिया, गैल चलत रंग ना डारौ।

आ गई आग लगी होरी

आ गई आग लगी जा होरी, फजियत करवा दै अब ओरी।
नई, पुराँनी, कारी, गोरी, चंचल, चपल, सूदरी, भोरी;
रंग में रंग जै है झकझोरी, एकऊँ नइं रै पै है कोरी। आ गई....
दारू, भाँग पिया मदमाती, छैलन सें छुलवा दै छाती,
फिर है राँड़ बनी ऐबाती, रसिया, फाग गवाऊत गोरी। आ गई....
नच है पींदा पैर घँघरियाँ, बज हैं ढुलकें और नगरियाँ,
लोगन, लठियँन मार लँगरियाँ, गुर की परिया जै है टोरी। आ गई....
करवा है अब ऊदम दौरा, बनवा दै सबरेंऊ, चमरौरा,
रँग के 'राम' बहा दै पौरा, रसिया लाज लूट बरजोरी।
आ गई आग लगी जा होरी.....।।

– कुण्डेश्वर, टीकमगढ़ म.प्र. ☐

बुंदेली रसोई

– लक्ष्मी प्रसाद गुप्त 'किंकर'

मो खौं तो मिठाइ सें लौ सतुआ लगत साजौ,
बिरचुन कौ स्वाद तौ तुम लौ का भूल हौ।
सौंदौ घोरुआ तिलाउर गुड़ला औ दूद खैव,
हिम्मत बनी रैहै बुढ़ापे में न कूल हौ।।
भैंस की तेली और भात मिल जाय खाँय खौं तौ,
खुशी होकें मन में गदूल घाँई फूल हौ।
फूले कुराने चना जो खैव अँदयाइ सैं तौ,
रोग भगै खुदई दबाई खैवौ भूल हौ।।१।।
जाड़न में तिली और मउवन के मुरका की,
तिली गुर के कूचे की अजब मिठास है।
जेठ मासन राते की बनी जूड़ी डुबरी कौ,
चौमासे में लटन की गुरुयाई खास है।।
चीला गुलगुला रसखीर के मिठास सैं लौ,
मीठी रस भरी ई बुंदेली की मिठास है।
दूद गुर डार वें तुम खाव जौं महेरौ तौ,
लगन लगत अमरतइ कौ बास है।।२।।
इतै मीड़ा लपसी कुदइ भँगरी बनत,
रोट सतनजा कौ अनंत जू लौ पाउ्त हैं।
दूद दई मठा सैं सबइ कौ समलगटा,
गैयन के गुन नँदलाल जू लौ गाउ्त हैं।।
सेव खुरमा सुरा इँदरसे बनत इतै,
लुचन कौ हलुआ तौ देवता मँगाउ्त हैं।
खीर अठवारी की मैं काँलौ करौं बड़वाई,
खीर पावे पुरखा लौ सुरग सैं आउ्त हैं।।३।।
जुनइ के पुआ और लगत ठडूला मीठे,
भटा टमाटर की लगत नोंनी तरकारी है।
भतुआ चँदूली की भाजी की दरभजिया में,
कुदवा की ताती रोटी की कला न्यारी है।
दार भात कड़ी बड़ा मगौरा घी शक्कर में,
समूदी रोटी बनें तौ लगत दिवारी है।
बुड़की खौं बन्न बन्न के बनत लडुआ लौ,
बुंदेली रसोई सें रसोई सब हारी है।।४।।

– ईशानगर, छतरपुर ☐

बुंदेली गीत

– **डॉ. अवध किशोर जड़िया,** ललपुर, छतरपुर

फाग में 'फाग' कहें फगुआरे दिवारी में मौनियाँ गावें 'दिवारी'।
क्वाँर में 'देवी के गीत' औ बौनी में गावत मीत फिरें 'बिलवारी'।
गावत साँवन में ''कजरी'' कजरी धरें आँखन की कजरारी।
टेरिवे राम कों गावत हैं 'रमटेरा' बुँदेल की रीति नियारी।।
चोप चढ़ायिवे गावत 'सैर' औ कोप बढ़ायिवे आल्हा हजारी।
गावत है विरहा 'विरहा' कोउ 'रांवला' कोउ नें 'लांवनी' प्यारी।
आवत ख्याल तौ गावत 'ख्याल' न आवत राई तौ 'राई' उचारी।
टेरिवे राम कों गावत हैं 'रमटेरा' बुँदेल की रीति नियारी।। ☐

नवल सिंह प्रधान कृत 'उरदू रामायन'

– के.बी.एल. पाण्डेय

बुंदेलखंड के अनेक देशी राज्यों में रहे प्रसिद्ध कवि नवल सिंह प्रधान अथवा नवल सिंह कायस्थ ने अनेक ग्रंथों की रचना की है 'उर्दू रामायण' उनमें से एक है। रामचन्द्र शुक्ल ने उनके २९ ग्रंथों के नाम दिये हैं।[१] बाबूलाल गोस्वामी ने उनके ३२ ग्रंथों की चर्चा की है।[२] आश्चर्य है कि शुक्ल जी को नवल सिंह के प्रसिद्ध ग्रंथ 'ब्रजभूमि प्रकाश' की सूचना नहीं मिली। तब उनके द्वारा रचित 'उर्दू रामायण' का उल्लेख न होना स्वाभाविक ही है क्योंकि यह ग्रंथ तो उतना चर्चित भी नहीं हुआ।

शुक्ल जी के अनुसार नवल सिंह झांसी के रहने वाले थे और समथर नरेश हिन्दूपत के आश्रित थे।[३] उनका सम्बन्ध टीकमगढ़ और दतिया राज्यों से भी रहा है। दतिया राज्य से उनका केवल सम्बन्ध ही नहीं बल्कि राज्य की विशेष कृपा का वर्णन 'ब्रजभूमि प्रकाश' से मिलता है। यह ग्रंथ दतिया नरेश पारीछत की ब्रजयात्रा के प्रतिदिन के वर्णन के रूप में रचित है जिसमें इतिहास भी है, काव्य भी है, ब्रज के विभिन्न देवस्थानों का वर्णन भी है और आध्यात्मिकता भी हैं उसमें कवि ने लिखा है –

मैं हूँ सुधि पाई इतै ब्रजहि जात नरनाथ।
चलिकैं पुर बलवंत तै भयेहु सेंहुड़े साथ।।
श्रीवास्तव कायस्थ कुल विदित कटेरावार।
सेवहुँ प्रभु दरबार कौं पालनहित परिवार।[४]

इस यात्रा में कवि राजा के साथ चलने वाले विशाल दल में शामिल था। इस आधार पर गोस्वामी जी ने माना है कि नवल सिंह प्रधान मूलतः कटेरा जिला झांसी के निवासी थे। बाद में दतिया के राजा पारीछत (१८०१–३९) से प्राप्त गाँव बलवंतपुर में रहते थे और उन्हीं के आश्रित थे। इस तर्क से इस बात का सर्वथा निषेध नहीं हो जाता कि कवि समथर राज्य में भी रहा है। कवि अनेक राज्यों में जाते रहते थे और वहाँ के राज्याश्रय में काव्य रचना करते रहते थे। पद्माकर इसके महत्वपूर्ण और सर्व–विदित उदाहरण हैं। नवल सिंह भी इसी तरह समथर राज्य में रहे हो सकते हैं। 'उर्दू रामायण' की समीक्ष्य हस्तलिखित प्रति की पुष्पिका से यह प्रमाणित भी हो जाता है। यह प्रति २० सेंमी. x१३ से.मी. (८ इंच x५ इंच)के आकार के ६१ पृष्ठों की है। पुष्पिका इस प्रकार है –

'जह तवारीष बतौर उरदू जवान मैं रामायन मेजर डंकिन मालकम साहिब बहादुर के हुकुमै मुख्यत्यारकार सिमथर के।। लाला नवल सींघ नै बनाई है।। सन अठारा सै चौअन सातही अवरैल मै मुताविक संवतु १९११ चैत्र सुदि ९ सुक्रे कौ तमाम हुई।। इति श्री सरन रामानुज दास प्रधान नवल सिंह विरचिते उरदू रामाईन संपूरन स्थापत।। मिती फागुन वदि ३, रववार संवतु १९१८।।'[५]

इस पुष्पिका से कई तथ्य स्पष्ट हो जाते हैं। कवि समथर में मुख्त्यार के पद पर रहा है। ग्रंथ का रचनाकाल सात अप्रैल अठारह सौ चौअन है और प्रस्तुत प्रति का लिपिकाल फाल्गुन वदी ३, रविवार संवत् १९१८ अर्थात् रचनाकाल से लगभग सात वर्ष बाद का है। कवि अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में रामानुज संप्रदाय में दीक्षित होकर श्रीशरण रामानुजदास के नाम से जाने जाते थे। उनके अनेक ग्रंथों में यही नाम रचनाकार के रूप में लिखा मिलता है। इसके अलावा यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने इसकी रचना मेजर डंकिन मालकम की आज्ञा से की है तथा वह स्वयं इसे रचनात्मक काव्य ग्रंथ न मानकर गद्य में रचित इतिहास अथवा तवारीख मानता है।

इस ग्रंथ से यह भी प्रमाणित होता है कि नवल सिंह प्रधान कवि के साथ ही गद्यकार भी थे। उन्होंने यह ग्रंथ कविता में और हिन्दी भाषा में संभवतः इसलिये नहीं लिखा क्योंकि अंग्रेज भारत में पहले से चल रही दरवारी भाषा फारसी के कारण उर्दू से जितने परिचित थे उतने हिन्दी काव्यभाषा से नहीं। यह ग्रंथ मेजर डंकन मालकम नामक अंग्रेज अधिकारी की इच्छानुसार लिखा गया, यह तो पुस्तिका में लिखा ही है, भले ही उसने इस रामकथा को कभी न पढ़ा हो।

लेखक के अनुसार इस उर्दू रामाण का उपजीव्य ग्रंथ 'रघुवंश' है। वैसे तो रामकथा पर तब तक संस्कृत और भाषा में अनेक ग्रंथों की केवल रचना ही नहीं हुई थी बल्कि वे प्रचलित भी हो गये थे जैसे बाल्मीकि और तुलसीदास के ग्रंथ, फिर भी राम के परवर्ती वंशजों में अग्निवर्ण राजा तक का नाम 'रघुवंश' में ही होने के कारण लेखक ने अपनी पुस्तक को उस पर आधारित माना।

'आषीर मैं एक अग्निवर्न नाम राजा हुआ।। उसकी रानी कै हमल रहा।। लड़का हौने न पाया।। अग्निवर्न का इंतकाल हौ गया।। तब कार परदा जौ ने उस रानी कौ गद्दी पर बैठारा।। इहा तक राम के वंस का हाल रामायन मैं रघुवंस मैं लिखा है।। आगै जो उस रानी के लड़का पैदा भया हौवेगा।। तिसका हाल जहां लिषा हौइ।। तिससै मालूम परै।।'[६]

यह 'रामायण' सिर्फ वर्णन शैली में लिखी गयी है। उसमें न विवेचन की स्थिति है, न चित्रण है। वर्णन भी ऐसा जिसमें कथा के प्रमुख स्थल ही आ पाये हैं। युद्ध जैसे स्थलों का वर्णन भी अत्यन्त संक्षेप में किया गया है। ग्रंथ का आरंभ शंकर से किये गये पार्वती के इस प्रश्न से होता है कि श्रीराम जी का अवतार किस वास्ते हुआ। तब शंकरजी ने बताया कि सनकादिक को श्री नारायण के दर्शनों से रोकने के कारण उन्होंने जय विजय पहरेदारों को शाप दिया कि वे तीन जन्म तक राक्षसों के वंश में जन्म लेते रहेंगे। तब दौनो दरवान सनकादिकौ कै पैरौ मै गिर पड़े।। तकसीर वार हो कर

हाथ जोर कहा जनाव आली हमारा उद्धार कैसे होईगा। तब उनने राजी हो कह दिया तुम्हारे वास्तै ऐही नाराइन अवतार लै कर अपनै हाथौ सै मार कै इसी फैज को पहचावेंगे।। [७]

यही जय विजय हिरणाक्ष और हिरण्यकशिपु हुए। फिर रावण और कुंभकर्ण हुए। इन्हें नारायण के अवतारों ने ही मारा। इसी तरह पुस्तक में सीता की उत्पत्ति का भी प्रसंग आया है। जब रावण ने अपने राज्य क्षेत्र में रहने वाले ऋषियों से किराया माँगा तो उन्होंने अपने रक्त से भरा एक घड़ा भिजवा दिया। रावण ने तात्पर्य समझ कर घड़ा दूर तिरहुत राज्य की जमीन में गड़वा दिया। राजा जनक ने जब यज्ञार्थ हल चलाया तो उस घड़े में से सीता का जन्म हुआ।

लेखक ने इस ग्रंथ को तवारीख कहा है। इसलिये उसने घटनाओं की तिथियाँ देकर उनकी प्रामाणिकता प्रकट की है। पौष कृष्ण पंचमी को राम ने समुद्र से रास्ता माँगा। पौष कृष्ण–चौदस को राम ने रामेश्वर महादेव की स्थापना की। पौष शुक्ल द्वितीया तक चार दिन में राम की सेना उस पार उतर गयी। तृतीया के दिन प्रातः से लंका की मोर्चा बंदी हुई। आठ दिन तक रावण अनभिज्ञ रहा। एकादशी को उसका एक गुप्तचर राम की सेना का पता लगाने आया। इसके बाद दो दिन सुग्रीव ने सभी मोर्चों पर अपनी सेना की हाजिरी ली। त्रयोदशी को राम ने रावण को अप्सराओं का नाच देखते देखा। माघ कृष्ण प्रथमा को राम ने अंगद को शान्तिदूत की तरह भेजा। द्वितीया से सात दिन तक भीषण युद्ध हुआ। नवमी को मेघनाद युद्ध में उतरा। हनुमान ने द्वादशी को धूम्राक्ष को और त्रयोदशी को अकंपन को मारा। माघ शुक्ल चतुर्थी से चार दिन चार रात कुंभकर्ण को जगाया गया। इस अवधि में युद्ध बंद रहा। वह नवमी के दिन युद्ध में आया। उसे मारने में राम को छः दिन लगे। राम और रावण का युद्ध अठारह दिन और अठारह रात तक चलता रहा। रावण की मृत्यु चैत्र शुक्ल चतुर्थी की रात में हुई। इसी तरह राम के वापस अयोध्या आने तक कई घटनाओं की तिथियां दी गयी है। अयोध्या में राम के पुनरागमन के बारे में लेखक ने लिखा है – 'हनुमान नै नंदीग्राम मैं ब्राह्मण के रूप सौ रांम के आनै की षवर सुनाही।। भरत सौ मुफ्फसल हाल रस्ता कौ वयान कर प्रागराज मैं भारद्वाज के आश्रम पर उतरे बताये।। कहा कै पाचे के रोज इहां दाखिल हौवेंगे।।' [८]

इस प्रकार लेखक ने बालकांड से उत्तरकांड तक की रामकथा का इस कृति में वर्णन किया है लेखक ने यह नहीं लिखा है कि उसने इन तिथियों की जानकारी कहां से प्राप्त की है।

नवल सिंह प्रधान तत्कालीन राज्यों के आश्रय में रह रहे थे। वह राज्यों की शासन–प्रणाली उनका वैभव तथा उनकी दरवारी संस्कृति देख रहे थे। अतः इस कृति में जब उन्हें इसी तरह का कोई वर्णन करना होता है तो वह राम के समय को अपने समय के उपादानों से चित्रित करते हैं, मथुरा के राजा लवणासुर का अत्याचार समाप्त करने के लिये शत्रुघ्न उसे मारते हैं। यहाँ लेखक कहता है – 'तिननै उस लवनासुर कौ मार प्रजा कौ सुख दिया। मथुरा की अबादी कर अपना थाना कर श्रीराम के पास आये।' [९]

लेखक ने स्वयं इसे उर्दूरामायण कह कर उसकी भाषा की घोषणा कर दी है। फिर भी उसे अमिश्रित या शुद्ध उर्दू नहीं कहा जा सकता। उसमें उर्दू भाषा के शब्द हैं तथा 'बमूजिव' और 'पेशतर' 'बाद' के साथ बनने वाले उर्दू के पदबन्ध भी हैं लेकिन उसमें उर्दू के साथ ही उस समय का प्रचलित गद्य रूप भी है जो काव्य कृतियों की टीकाओं में अथवा धार्मिक कथाओं के प्रवचन–लेखन में प्रयुक्त होता था। यह गद्यरूप प्रमुखतः ब्रजभाषा की प्रकृति से प्रभावित होता था। नवल सिंह प्रधान बुंदेलखंड में रहे हैं। इसलिये उनकी भाषा में 'निपकबौ' जैसे बुंदेली शब्द भी आये है, अधिकतर वाक्यों में उर्दू और तत्कालीन काव्यभाषा का मिला–जुला रूप मिलता है।

'तव रावन नै फरेव कर कालनैम कौ रस्ता छेड़ राषनै वास्तै भेजा।।' तिसनै हनूमान कौ फरेव सौ वातौ में लगाइ विलमाये चाहा।।'' [१०]

भक्ति और रीतिकाल के टीका ग्रंथों में तथा अन्य ग्रंथों में जो गद्य रूप मिलता है उसकी एक विशेषता सरल और छोटे वाक्यों का प्रयोग है। नवल सिंह प्रधान की इस कृति में भी मिश्रित और यौगिक वाक्यों की जगह अधिकतर सरल वाक्य ही है।

इस प्रकार राम कथा का यह ग्रंथ अध्यात्म, दर्शन अथवा काव्यात्मक चित्रण की दृष्टि से भले ही उत्कृष्ट न हो लेकिन एक अन्य भाषा में लिखी गयी रामकथा की दृष्टि से तो उसका महत्व है ही। भारतीय संस्कृति, साहित्य, वाड.मय से अपरिचित और विशेष रूप से विदेशी पाठक के लिये तो वह रामकथा को जानने का बहुत उपयोगी माध्यम है।

– ७०, हाथीखाना, दतिया म.प्र. ☐

सन्दर्भ –

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल, संस्करण सं. २०२२, पृ. ३६६
२. ब्रजभूमि प्रकाश – सं. बाबूलाल गोस्वामी,
३. हिन्दी साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र शुक्ल, संस्करण वही, पृ. वही
४. ब्रजभूमि प्रकाश – सं. बाबूलाल गोस्वामी, ५
५. उरदू रामायन – नवल सिंह प्रधान, हस्तलिखित प्रति, पृ. ६०–६१
६. वही, पृ. ६०
७. वही, पृ. १
८. वही, पृ. ४९
९. वही, पृ. ५४
१०. वही, पृ. ४४

☐

उनसें भओ जौ बतकाव : पाती–ऐना (दर्पण) की छांव

– वीरेन्द्र शर्मा ''कौशिक''

हमाई सबसे पैली पैचान सुकविवर स्व. गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' सें तवै भई ती जबै हमनें दादाजी स्व. पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के निर्देशानुसार उनें चिठिया लिखी ती जी कौ उत्तर हमें जौ मिलो तो –

श्री हरिः

शंकर निवास

झांसी, फा.शु. ३/२००५ वि.

बुद्धवार १९–२–६९

प्रियवर श्री शर्मा जी,

सस्नेह नमस्कार

आपका कार्ड प्राप्त हुआ प्रसन्नता हुई। आदरणीय दादाजी की यह कृपा है, जो वे समय–समय पर स्मरण कर लिया करते हैं।

आपको निबंध में उचित परामर्श मिलेगा श्री पं. सियाराम शरण शर्मा एम.ए, पत्रकार, ९७, टकसाल झांसी से। उनसे पत्रव्यवहार कीजिएगा। समय मिलने पर उनसे मिल लीजिएगा वे आवश्यक समझेंगे तो मुझसे परामर्श कर लेंगे। मैं आगामी मास में झांसी में ही रहूँगा।

आशा है आप स्वस्थ और सानन्द हैं।

सदैव शुभेच्छुक

ह. गौरीशंकर द्विवेदी

उनकौ जुवाब पा मोय इतनी खुशी भई कै मैं फूलो न समाओ। तब तौ औरई जादा खुशी भई जब मैं मित्रवर श्री सियाराम शरण शर्मा के संगै उनके घरै–शंकर निवास, गणेश मड़िया, झांसी, उनके दर्शन करबे के लाने पौंचो। भौतई दर्शनीय व्यक्तित्व हतो उनकौ– ऊंची–लम्बी कद–काठी, ऊँचौ अई ललाट, कद्दावर देंह पैसादा सुहावना लिवास, सरल–सीधौ बोलचाल –

'काए! शर्मा जी को आँय जे?'

'इनें नई जानत! जेई अपुन की चिठिया पा आए हैं मोरे पास। जे वीरेन्द्र जी आयें, निवाड़ी से पधारे–आपसें मिलवे।'' श्री शर्मा जी सें जा सुनतनई मोरो हाथ पकर वे भीतर लिवा लै गए। उनसें विलात देर तक अपने शोध–प्रबंध के बारे में बातें होती रईं। ऊदिना के बाद फिर संयोग ऐसो भओ कै उनकौ दरस–परस मोरे लानें अब तक दुर्लभ सौई रओ। हाँ! उन दिनन हम निवाड़ी में शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में प्रवक्ता हते। चिठियन कौ आबौ जाबौ निरंतर जारी रओ। उनसें चिठियन कौ बतकाओ भी भौत नौनो लगत तो, पै परिस्थितिवश जब हम निवाड़ी सें छतरपुर पोंच गए सो फिर चिठियन कौ आवौ–जावौ कम तौ गओ पै रुको नईयाँ। श्री शर्मा जी के संगे जब मैं सन् १९६९ के मार्च महीने मैं मिलबे गओ तो तब स्वल्पाहार और चाय–पान करते हुए एक कविता सोऊ उननें सुनाई ती आदरणीय द्विवेदी जी ने। लीजिए सब जनें सोऊ पढ़ लेब –

दीपक

पंचतत्वी पिण्डिका में, एक छोटा–सा दिया है।
क्षुद्र–मिट्टी, शीत जल, परिमल–पवन के मिलन से,
अवतरित मैं हुआ जग में, निज विधाता के सृजन से।
अग्नि के आवास का भी, संस्कार समाप्त करके,
हाथ–हाथ चला गया मैं, शीघ्र अपने सृजन घर से,
जहाँ पहुँचा वहाँ उनके इंगितों पर ही जिया रे।
पंचतत्वी पिण्डिका में एक छोटा सा दिया रे।
स्नेह से पूरित हृदय कर, तूल–बाती से जगाया,
कुशल–कर से फिर सजनि ने, स्नेह से मुझको जगाया,
बना मंगल–दीप मुझको, किया अति सम्मान मेरा,
ज्योतिमय बना पुजा सबसे, दूर कर जग का अंधेरा,
सतत सेवा–भाव ही में, देचुका अपना जिया रे!
पंचतत्वी पिण्डिका में, एक छोटा सा दिया!

ईके बाद जब हम निवाड़ी में हते तबई अपनी आदत – ''कुछ ऐसे साहित्यकार होते हैं, जो दूसरों को बढ़ाकर ही आप बढ़ते हैं। हिन्दी जगत में महावीर प्रसाद द्विवेदी एक ऐसे ही अग्रगण्य साहित्यकार हुये हैं। इस श्रेणी में यदि द्वितीय स्थान मैं पंडित गौरीशंकर द्विवेदी को दूं तो अनुचित न होगा। मेरा तो अपना कुछ ऐसा ही अनुभव है।'' के कारन ही मोय ऐसो लगत कै सुप्रसिद्ध साहित्यकार अम्बिका प्रसाद 'दिव्य' की जा वात मो पै सोऊ लागू होत काए सें कै जब मैंने उनकी ग्रंथ १८ अगस्त १९७२ की चिठिया के जुवाब में सुकवि मुंशी दामोदर खत्री स्मृति ग्रंथ के लानें जौन विषय देकें लेख मांगो तो ऊमें तनक मोसें हीला हवाली हो गई सो उनकी जा चिठिया फिर आई –

२२–१०–७२

प्रियवर श्री शर्मा जी,

अब तक आपने अपना लेख नहीं भेजा। यथा शीघ्र भेज दीजिए – अवधि दो सप्ताह की और ले लीजिएगा। आशा है आप सर्वसहित स्वरूप और सानन्द हैं।

सदैव शुभेच्छुक. ह. गौरीशंकर द्विवेदी

फिर का हमपै जैसो बनो तुरतंई समय निकाल एक लेख तैयार करो और भेज दओ। ऊकी मिलवे की फिर जा चिठिया आ गई –

श्री हरिः

शंकर निवास, झांसी नगर

कां.कृ. ११/२००९, बुधवार, १–११–७२

प्रिय श्री शर्मा जी,

सस्नेह नमस्कार।

कृपापत्र और लेख प्राप्त हुआ – प्रसन्नता हुई। यथा समय

स्मृति ग्रंथ में प्रकाशित हो जाएगा। आशा है आप सर्वसहित स्वस्थ और सानंद हैं। अपनी शुभकामनायें भी लिखिएगा।

सदैव शुभेच्छुक

ह. गौरीशंकर द्विवेदी

अपुन सें ऊचौ बढ़ावे के लाने अपनी अगली पीढ़ी के किशोरों, युवकों और नगरवासियों को जाँ जैसो बढ़ावो दैवे की जरूरत, लालसा और ललक होना चाहिए वैसी पं. बनारसी दास चतुर्वेदी और पं. गौरीशंकर द्विवेदी के अलावा और कहाँ मिल सकती थी? सो मोय इन दोऊ जनन की पातियों में निरंतर अच्छे सें अच्छौ मार्गदर्शन मिलत रओ। भौतऊ नौनी सीखें वे सदा मोय देत रए। २१ जुलाई ७४ के पत्र में उन्होंने मोय एक चिठिया लिख कै झांसी बुलाओ। उन दिनन वे कछु नई विलात अस्वस्थ से लग रए ते। मोरी इच्छा हती है कै उनसे कछु बतकाव बुंदेली में कर लेवें, सो एक प्रश्नावली बना कें मैं सोइ लै गओ। उननें हमाए प्रश्नन कौ जुआव अपने जीर्ण–शीर्ण होते स्वास्थ्य के बावजूद भी ऐसें दओ –

प्रश्न –अपुन कौ जनम्, कब, कितै और की कुल में भओ तो?

उत्तर – मोरो जनम् विजयादशमी सं. १९५३ विक्रमी खों ग्राम तालवेहट जिला झांसी (उ.प्र.) में भओ तो। ऊ दिना तारीख १६ अक्टूबर सन् १८९६ ई. हती। हम सनाढ्य ब्राह्मणकुल में स्व. पं. परशुराम जी द्विवेदी के घर भये ते। हमाए पूज्य पिता जी बड़े ही धर्मज्ञ, रामभक्त और रामचरितमानस मर्मज्ञ हते। ओई राह उनने मोय सोउ दिखाई ती।

प्रश्न –अपुन कौ प्रारम्भिक जीवन, शिक्षा–दीक्षा, जीविका, नौकरी, आदि कौ थोरौ–थौरो व्यौरो–का कैसो रओ?

उत्तर – हमाई प्राथमिक शिक्षा तालवेहट सें शुरू होकें मेट्रिक तक झांसी में पूरी भई। ऊ बखत् नौकरी मिलवौ तनकऊ, कठिन न हतो। मिडिल परीक्षायें, हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी में करवे के बाद मैकडानल स्कूल, झाँसी सें मैट्रिक पास करी अई हती सो डाकखाने में नौकरी में लग गए और धीरें–धीरें पोस्ट मास्टर के पद तक पौंच गए ते। ई बीच झांसी, मऊरानीपुर, टीकमगढ़, नौगांव आदि जगा पै गए और फिर रिटायर होकें झांसी में आ बसे।

प्रश्न– अपुन की साहित्य–साधना कब सें शुरू भई ती?
पैली रचना कौन सी हती, कब, कितै छपी ती?

उत्तर – मोरो कविता लिखवे कौ शौक तौ बचपनई से शुरू हो गओ तो–तुकवंदी १४–१५ साल की उमर सें करन लगो तो। संवत १९६८ विक्रमी में मोरी कवितायें छपवो शुरू हो गई ती और सं. १९७८ वि. सें पुस्तकें छपन लगीं ती। जाँ तक मोय याद आऊत मोरी पैली कविता 'शिब–ताण्डव स्त्रोत' हती। जौ सो मोय याद नई आऊत कै जा रचना कबै औ कितै छपी ती।

प्रश्न –अपुन ई बखत् लगभग अस्सी बरस के हो गए होंयगे, अपुन खों जौ तो याद हुइअई कै अबै तक अपुन की कित्ती किताबें प्रकाशित औ अप्रकाशित हैं?

उत्तर – अस्सी तक तौ अवै मैं नई पौंचो, पै जौ सन् ७४ आय तौ मोरे हिसाब सें अब मैं दो कम अस्सी कौ तौ होई गओ। भैया, वीरेन्द्र! अब मोय जौ कैसें याद रै सकत कै मोरी कै किताबें छपी औ कै अनछपी रै गई! बस मैं तौ अन्दाजन जौ कै सकत कै कम से कम अबै तक छोटी–बड़ी पच्चीस किताबें छप गई हुइयें और अनछपिन कौ का कै सकत। हजारन लेख–कविता यें फुटकर रूप से विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में छप चुके हैं।

प्रश्न –अपुन ने ठीक कओ। हमनें जब हम पृथ्वीपुर (टीकमगढ़) के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में सन् १९६३–६५ के दौरान प्रवक्ता हते तब विद्यावाचस्पति श्याम सुन्दर 'सुमन' रचित हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास' में पढ़ो तो –

'भारत की प्रमुख पत्र–पत्रिकाओं में आपकी दो सहस्त्र कवितायें, लेख और कहानियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आपके शोधकार्य और लोकसाहित्य विषयक लेखों को विशेष मान्यता मिली – आचार्य तुलसी और केशव विषयक शोध ने हिन्दी जगत् में युगान्तर उपस्थित कर दिया– कितने ही उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वानों को पीएच.डी. और डी.लिट् की थीसिस तैयार कराने में आप योगदान दे चुके हैं। तथा अनेकानेक पुस्तकालयों और साहित्य संस्थाओं के जन्मदाताओं में से एक हैं। अब तक आपके बीस ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं, जिनमें अधिकतर शोध–विषयक ग्रंथ हैं – विविध प्रकार के २२२३ छन्दों का महाकाव्य 'काम–रूप–कथा', बुंदेलखंड के २१०० कवियों पर 'बुंदेलवैभव', 'सुकवि सरोज' और 'गीता गौरव' आदि ग्रंथ हैं। प्राय: तीस ग्रंथों की पाण्डुलिपियां प्रकाशनार्थ तैयार हैं।'' – पृष्ठ संख्या १५२

.... लो आपई पढ़ लेव, जा है बा किताब। का कानें अपुन?

उत्तर – अपुन ठीक कै रए बेटा, बीरेन्द्र! इत्तौ सब 'सुमन' ने ठीक–अई तौ आय लिखो। जा सब भगवान की किरपा समुझौ।

प्रश्न –अपुन अपनी इतनी लम्बी साहित्य–साधना में कीखों अपनौ प्रेरणा स्रोत मानत? की कौ, कैसौ प्रभाव रओ अपुन पै?

उत्तर – हमाए सबसे पैले प्रेरणास्त्रोत हमाए तीर्थस्वरूप श्रद्धेय पूज्य पिताजी हैं, फिर गांधी जी। तब दद्दा स्व. मैथिलीशरण गुप्त, बड़े भैया वृन्दावन लाल वर्मा और दादाजी पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, जिनके प्रभाव और प्रेरणा ने हमें अपनी साहित्य–साधना में इतनो बढ़ा दओ।

प्रश्न –अपुन नें कविता, लेख, कहानी आदि पै अपनी कलम चलाई पै अपुन जौ बताऔ अपुन खों अपनी कौन सी रचना नौनी/प्यारी लगत?

उत्तर – हम का बतायें तुमें, वीरेन्द्र! अपनी बुरई सें बुरई संतान भी किये बुरई लगत! अपनी रचना, अपनौ सृजन संतानई जैसो तो होत, है न? कओ तुमई बताऔ, तुमनें तौ पढ़ी हुइयें मोरी रचनायें, कवितायें। तुमें कौन नौनी लगत? जौन पाठक, श्रोता खों नौनी लगे, बोई नौनी कहाय। तबई तौ बा जादा पढ़ी, सुनी–गुनी जै, का कात? तुमई चुनलो।

उनकी ऐसी मिठास भरी बातें सुन–सोंच कें मोय तौ ऐसौ

लगो जैसें हमाये घर कौ बड़ौ–बूढ़ो मोरे उत्साह खों बढ़ा रओ होय, सो मैंने स्व. गोपालसिंह नैपाली की स्मृति में सन् १९६४ ई. में बुंदेलखंड साहित्य परिषद, कुण्डेश्वर द्वारा सुकवि साहित्यकार श्री हरगोविन्द त्रिपाठी 'पुष्प' के सम्पादन में प्रकाशित 'बुंदेलवाणी' में संकलित अपुन की जा कविता भौतई नौनी लगत –

बुंदेलखंड के कवि

शस्य, श्यामला, शीतल जननी,
कविवर–वीर–विभूति–प्रसविनी,
है बुंदेलखंड की धरणी,
धरतीतल में धन्य,
कहाँ है कोई ऐसी अन्य....।
कर्त्ता अष्यादश पुराण के,
लेखक भारत के विधान के,
अधिपति विपुल पवित्र ज्ञान के,
बल, तप, तेज निधान,
यहीं थे, वेदव्यास भगवान।
बाल्मीकि वसुधा के भूषण,
कृष्ण दत्त कवि–कुल के पूषण,
मित्र मिश्र ने किया निरूपण,
ऐसा ग्रंथ विशेष,
पुज रहा है, जो देश विशेष।
द्वारिकेश, आनन्द मिश्र कवि,
सेवकेन्द्र, अंचल प्रतिभा रवि–
गुप्त मैथिलीशरण राष्ट्रकवि,
अब भी सर्व प्रकार,
भर रहे, भाषा का भण्डार।

जा कविता इतनी बड़ी हती कै ई में बुंदेलखण्ड के कवि–गौरव–व्यास, बाल्मीकि सें लेकें अब तक के अधिकांश कविगण इसमें अपुन ने सरल सरस सुंदर भाषा में बखान कर दए।

हमाव बतकाव कछु जादा लम्बौ और देर तक चल गओ सो श्री द्विवेदी जी की वृद्धावस्था हमाए आड़े आ गई औ हमें इतई अपनौ बतकाव रोक द्विवेदी जी के आराम की व्यवस्था कर–करा कें लौटने पर गओ। तबई से जौ सब जाँ कौ ताँ धरो रै गओ। ई के बाद उनकी अवस्था कौ ख्याल औ परिस्थितियों की मजबूरी के आगें हमाई तनकऊ न चली। जौ बतकाव फाइल में दवो कौ दवो धरो रओ।

अब कछु दिना पैलां बुंदेली बसंत–सम्पादक डॉ. बहादुर सिंह परमार की चिठिया की जे लैने – 'हमाई मनसा है कै ई पत्रिका में जो कछू छपै ऊ कऊँ और कभऊँ छबो न भओ चईये। जेऊ हम चाऊत हैं।'' हमाए जी खों ऐसी छू गईं कै अपनी फाइलें टटोलत–टटोलत हमें कछु ऐसी चिठियां, जो बुंदेलखण्ड के लोककवि गौरी शंकर द्विवेदी 'शंकर' ने मोय लिखीं ती, मोरे हाथ लग गईं। उनई के संगै बिलात वर्णन पैलां हमसें भये बतकाव के कछु पुर्जा सोऊ मिल गए। बस का हतो हमने जौ बतकाव ई तरां अपुन के सामें पढ़वे के लाने परस दओ कछु और चिठियाँ सोऊ रै गईं, जो प्रासंगिक हैं और उनकी भलमनसाहत की छाप छोड़ रईं। पढ़िए –

श्री हरिः

शंकर–निवास

झांसी नगर, भा.कृ. १३, २००१

प्रियवर श्री शर्मा जी,

स्नेह नमस्कार।

१३–८–७४ का कृपापत्र प्राप्त हुआ, प्रसन्नता हुई, स्मृति ग्रंथ आपको अब तक नहीं मिला यह जानकर आश्चर्य हुआ, मैंने आज पत्र लिख दिया है कि शीघ्र भेज दें। आप भी निम्न पते पर पत्र लिख दें –

श्री शंकर शरण लाल बत्ता एम.ए.एल.टी. राज. हायर सेके. स्कूल, कुम्भ राज, पी.ओ. कुम्भराज (गुना)

अवकाश मिलने पर आपके प्रश्नों का ब्यौरेवार उत्तर भेजूंगा।

आशा है सर्वसहित सानन्द हैं।

सदैव शुभेच्छुक – ह. गौरीशंकर द्विवेदी

और अब जा उनकी अन्तिम पाती –

गौरीशंकर द्विवेदी 'शंकर' — शंकर निवास
साहित्य वारिधि — १७२, गणेश मड़िया
झांसी नगर, उ.प्र.

दिनांक चै.शु. ८/२०३४ विं.
सोमवार २८–३–७७

प्रिय श्री गुप्त जी, शर्मा जी,

स्नेह शुभाशीष!

कविवर श्री गंगाधर व्यास जी की जयन्ती का निमंत्रण प्राप्त कर अतीव प्रसन्नता हुई, मेरी आंतरिक–अभिलाषा है कि समारोह सब प्रकार सफल रहे और उसको प्रति वर्ष आप सब दूने उत्साह से मनाने की आयोजना करते रहें।.

प्रायः साठ वर्ष पूर्व मैंने श्री गंगाधर व्यास पर लेख लिखा था। सन् १९२७ ई. में प्रकाशित 'सुकवि–सरोज' प्रथम–भाग में उनका संक्षिप्त जीवन–परिचय, ग्रंथों की नामावली, कविताओं और लोक–कविताओं के उदाहरण पृ. ११७ से १२५ तक दिए थे और उनको सिद्धहस्त सुकवि माना था। कितनी ही बुंदेली फागों में से एक फाग भी प्रकाशित की थी, जो इस प्रकार है –

''जौ तिल लगत गाल कौ नीकौ,
मनमोहत सब ही कौ।
कै पूरन पूने के ससि में, कुरा जमौ रजनी कौ।
कै निर्मल दर्पन के ऊपर, सुमन धरौ अरसी कौ।।
गरलें कण्ठ लै आय विराजौ, कै पति पारवती कौ।
गंगाधर मुख लखत सामरो, राधा चन्द्रमुखी कौ।।''

कविवर व्यास जी को पिंगल–शास्त्र का भरपूर ज्ञान था, यह उनके ग्रंथों से स्वतः सिद्ध होता है।

समस्या–पूर्ति करने पर राज दरवार में अवसर के अनुकूल

बात करने में वे सिद्धहस्त थे।

सुप्रसिद्ध लोक–कवि ईसुरी से भी कितने ही अंशों में उनकी बुंदेली–रचनायें विशेषता लिए होतीं थीं।

इस समारोह में यदि मैं उपस्थिति हो सकता तो मुझे अत्यधिक प्रसन्नता होती, किन्तु कतिपय कारणों से असमर्थ हूँ, सफलता की कामना करता हूँ।

सदैव शुभेच्छुक
ह. गौ. श. द्विवेदी

अब तौ उनके जे पत्र उनके विद्या–विनय–विवेक गुणों को भेंट करत भये उनकी जे पंक्तियाँ भी ई तरां उनें अर्पित कर रओ–

त्याग, फलाशा दृढ़ व्रत लेकर, जो विकास कर्म करते हैं।
कान्ति पताका फहरे उनकी, अमर बने बे कब मरते हैं।

और अन्त में उनके चरनन में विनम्र श्रद्धांजलियाँ समर्पित करत भओ स्व. अम्बिका प्रसाद वर्मा 'दिव्य' के इन शब्दन की हाँ में हाँ मिलाऊत – 'द्विवेदी जी ने 'सुकवि सरोज' एवं 'बुंदेलवैभव' लिखकर यहाँ के कवियों को, जिनकी कीर्ति धूमिल सी पड़ रही थी फिर से यथास्थान स्थापित कराने का प्रयास किया। उनकी रचनाओं पर, उनके जीवन चरित्रों पर एवं उनकी अन्य सेवाओं पर समुचित प्रकाश डाला। इस प्रकार द्विवेदी जी ने बुंदेलखंड की अपने साहित्य द्वारा जो सेवा की, वह स्तुत्य और अनुकरणीय है। मेरे मानस पटल पर उनकी जो जीवन झांकियों एवं मुखाकृतियाँ अंकित है वे आज तक जब कभी झलक दे जातीं हैं। कितनी ही बातें विस्मृत हो गई परन्तु न होगी विस्मृत उनकी वह सौम्य और सौजन्य से भरी हुई 'मुख–मुद्रा', जिसमें सदैव ही एक आनन्द, प्रसन्नता एवं उत्साह की उज्ज्वल रेखायें अपना विविध छवियों में रेखांकन करती रहतीं थी। वे धन्य हैं। वे बुंदेलखंड के स्वयं की गौरव है।''

– कुरैचा नाका, मऊरानीपुर, झांसी उ.प्र. □

संदर्भ –

१. हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास – सं. डॉ. श्याम सुंदर 'सुमन', प्रका. सुमन साहित्य मंदिर मथुरा (उ.प्र.) पृ. १५२
२. बुंदेलवाणी – हरगोविन्द त्रिपाठी 'पुष्प', पृथ्वीपुर (टीकमगढ़) म.प्र., पृ. ७३–७४
३. बुंदेलखंड बागीश – प्रचण्ड, बुंदेलखंड प्रांतीय कवि परिषद, झांसी पृ. ८३
४. बुंदेली बसंत–सं.प्रो. बहादुर सिंह परमार, छतरपुर, पृ. ११४
५. द्विवेदी जी के पत्र, आदि। □

एकता

– नवल किशोर सोनी 'मायूस'

और जनें चौपीं चड़वाकें सै दैकें लड़वाहैं।
अपने घर की न्याँव बैठकें अपुन इतइँ निपटाहैं।।
अपुन तपुन कर पाए न ईको मिलकें स्यात निनोरा।
दोइ जनन खौं आँगू ईमें परहै भौत विलोरा।
नाँय माँय के जनी मान्स सब अपनी हँसी उड़ाहै।।
औरन सें तनकउ नइँ कानें अपने घर की बातें।
मौका पाकें अपने संगै करन लगें बे घातें।
मिलकें सबइ पुरा पाले के अपनी लगी भँजाहैं।।
जिनखाँ कभउँ पुसातइ नइयाँ अपनो मिलकें रैबो।
बे चाहत हैं दोइ जनन सें अपनो बल्दो लैबो।
धँदकत राय इतै जा आगी बे तौ ऐसइ चाहैं।।
अपनो तपनो मिलकें रैबो उनखौं भौत अखर रओ।
साँमू बोलत हैं बे नौनें मन में कौंड़ो बर रओ।
और जरे पै नौंन भुरककें बे हमखौं किलपाहैं।।
नामी है असफेर भरे में अपनी तपनी बखरी।
वारे सें बँद रइ है ऐनँइ सो उनखाँ जा अखरी।
तिड़ी बिड़ी हो जाय जौन में बे बा गैल बताहैं।।
इन जरूवन सें अपुन तपुन खौं ऐंनइ बरको रानें।
कात कछू जे राँय अपुन खाँ इनके कयँ नईं आनें।
ऐक दूसरे के सुख दुख में अपनइँ कामें आहैं।।
ऐसइ रय बेभार अपुन में प्रैम जनम भर राबै।
ध्यान राय 'मायूस' अपुन की बात बिलुर नाँ पाबै।
ऐसइ मिलकें रैंय अपुन तौ दोइ जनें मुस्कयाहैं।।

– कोतवाली के पीछे छतरपुर □

करिओ न बटवारौ

– डॉ. शिवाजी चौहान 'शिवा'

माँ बाप को भइया करियो ना बटवारौ
सपनिन में नैनन सें करियो ना न्यारौ
नइँतर दुनियाँ के लोग तुमइँ खों थूकें
कैबे बारे कैबे में नेंक न चूकें
साँसऊँ कोनऊँ तो कुत्तन कैसे भूँकें
कानाफूसी करकें कानन खों फूकें
पितु माते कबऊँ बोल बान ना मारौ।
तुम सब खों उननें बड़े लाड़ सें पालौ
कैसे है अपने खों ना देखो भालौ
जैसे तैसें दुर्दिन कौ समै निकालौ
आँखन के आगे सें छिनभर ना टालौ
अब औसर आयौ उनकी ताईं निहारौ।
सतजुग की सुनतइ आए बात सुनाबें
इक कुए के जल सें चार कुए भर जाबें
जा बेरा की अचरज की बात बताबें
अब चार कुआ एकई खों ना भरपाबें
है हमाई सों इनसें ना करौ किनारौ।।
का फरज तुमारौ जाखों तुम पैचानों
माँ बाप की आज्ञा सबसें ऊपर जानों
ईसुर सें जादाँ इनखों पूजो मानों
सोइ मिलौ शिवाजी खों बैकुंठ ठिकानों
इनकी सेवा में तन चन्दन सो गारौ।।

– गुरसराय, झांसी उ.प्र. □

लोक कवि 'ईसुरी' को कुछ सिरफिरों ने लम्पट की संज्ञा दे डाली

– डॉ. एन.आर. चौरसिया

बुंदेलखंड के लोककवि 'ईसुरी' पर सर्वप्रथम मैंने शोधकार्य किया। अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय रीवा द्वारा सन् १९७७ में मुझे पीएच.डी. उपाधि प्रदान की गई। मैंने उनकी एक–एक फाग को पढ़ा, समीक्षा लिखी और बुंदेली के समर्थ लोक कवि की श्रेष्ठता स्वीकारी। इतना ही नहीं उनके समसामयिक अन्य लोक कवियों ने उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की। यथा– 'गंगाधर' ईसुर रसिया ने फाग कहै कै जादू।'' मध्यप्रदेश शासन उनके नाम से राज्य स्तरीय 'ईसुरी पुरस्कार' प्रति वर्ष प्रदान करता है। डॉ. हरिसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर 'ईसुरी' नामक शोध पत्रिका प्रकाशित करता है। इतना ही नहीं अनेक विश्वविद्यालयों के एम.ए. के पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। मध्यप्रदेश लोक सेवा आयोग की प्रतियोगी परीक्षा में उनका स्थान सुरक्षित है। इतना ही नहीं आकाश–वाणी और दूरदर्शन कार्यक्रमों में उनकी जयंती भी मनाई जाती है, परन्तु न जाने किस उधेड़बुन में राजकमल प्रकाशन समाचार बुलेटिन जून २००४ के अंक में मैत्रीयपुष्पा का उपन्यास 'कई ईसुरी फाग' में शुद्ध लम्पट कवि कहकर अपने सिरफिरेपन का उदाहरण प्रस्तुत किया। इस बचकानेपन का बुंदेली सुधी समाज ने यथा समय घोर भर्त्सना कर सम्पादक श्री अशोक माहेश्वरी को क्षमायाचना मागने का प्रस्ताव पारित किया।



बहुउद्देशीय व्यक्तित्व का नाम ईसुरी है। खेत, खलिहान, पनघट, चौपाल का नाम ईसुरी है। वर्षा, कजरी, विरहा, यौवन एवं वासंती वयार का नाम ईसुरी है। नख–शिख तक रोम–रोम में व्याप्त सौन्दर्य का नाम ईसुरी है। वेद, शास्त्र, पुराण एवं उपनिषद का संचित सार ही मानो ईसुरी की फागें हैं। अतः लोकरंजन, लोकजीवन एवं लोक लालित्य का लोक व्यापीकरण हमें इनकी फागों में मिलता है। कवीर की रमैया (माया) रूपी दुल्हिन ही ईसुरी की 'रजउ' है। रजउ के इर्द–गिर्द ही हंसन, बोलन, चलन, चितवन में ईसुरी की आसक्ति है। और अंत में अपने ब्रह्म बोध का ज्ञान, राम, कृष्ण, शिव, राधा एवं अल्लाह के रूप में देखने को मिलता है।

ईसुरी की आशक्ति जल में कमलपत्र (पुरेन) की भांति है। जल में रहते हुये जल से ऊपर। लगता है उनकी फागों में गहरी पैठ के अभाव में उन्हें शुद्ध लम्पट कह दिया गया है। इसे अल्पज्ञता की पराकाष्ठा ही कहा जायेगा। ज्ञान इतना थोथा है कि चार अंधों की भांति चार प्रकार का हाथी उन्हें दिखाई देता है अथवा खजुराहो के शिल्प महाकाव्य में मात्र मैथुन की शिल्पकला ही उन्हें अंधों की भांति परिलक्षित होती है। अन्य बहुआयामी कलाओं के बिम्ब जैसे–संस्कृति, दर्शन, धर्म, कर्म, युद्ध, प्रेमसाधना, ब्रह्मचर्य, आखेट, प्रकृति सौन्दर्य, नक्षत्र, ज्योतिष, श्रृंगार, विरक्ति, लौकिक, अलौकिक और सत्यम–शिवम्–सुन्दरम् के दर्शन न होकर मात्र रतियुक्त कोक शास्त्र ही दिखाई देता है। जब कि जीवन की विविधता में मैथुन का भी अनिवार्य महत्व एवं रति–श्रृंगार की हकीकी प्रासंगिकता है। रति से विरक्ति, सन्यास, त्याग, तपस्या, ब्रह्मचर्य, मनोयोग, ध्यान एवं परमहंस का स्रोत प्रस्फुटित होता है।

ईसुरी का जीवन बृहद अनुभवों की उत्तुंग सीढ़ियों पर चढ़कर विशाल उत्ताल तरंगों के महासागरीय थपेड़ों से जूझ, कर सुदृढ़ हुआ है। श्रृंगारपरक फागों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ईसुरी मूलतः संयोग श्रृंगार के कवि हैं। उनकी फागों में रूप सौन्दर्य के अंकन से लेकर सम्भोग के अश्लील चित्रों तक, संयोग का पूरा–पूरा आनन्द मिलता है। वस्तुतः लोक काव्य में जहाँ रूप सौन्दर्य, मिलन और क्रीड़ा के विविध प्रसंगों में तीव्र ऐन्द्रिक उत्तेजन मिलता है, ठीक उसी तरह सम्भोग और विलासपरक अनुभवों से अनावृत्त दृश्य मिलते हैं। यही कारण है कि अनेक फाग मुक्तकों में ऐसे खुले दृश्यों की अधिकता है। नगरीय संस्कृति से बोझिल एवं दमित वासनाओं से कुंठित, संयत, शालीन एवं नियंत्रित वासना के परिष्कृत वर्णनों को लोककाव्य में अवकाश कहाँ? इसलिये ईसुरी को विशुद्ध लम्पट कवि कहने वाले विद्वान से मेरा आग्रह है कि वे लोकवातावरण और लोकसंस्कृति की गहराई में पैठ करें, तब उन्हें लोक से तादात्म्य स्थापित होने पर उन पर लगाया गया आरोप स्वमेय असिद्ध हो जायेगा और आत्मलोचन के लिए प्रेरित करेगा।

– बुंदेलखंड शिक्षा महाविद्यालय, छतरपुर ☐

छोटई सो परिवार बसाने

– चन्द्रिका प्रसाद सक्सेना 'कीर्ति'

चढ़ गई बात जिहन में आपुन, छोटइ सो परिवार बसाने।
देखो न हरिया कड़ेर के सबइ चेनुवाँ गद्दी फद्दा।
पैंतीसे में डुकरा हो गओ, बन के दस बच्चन को दद्दा
एकइ बिसकत लेत कन्हइयाँ, एक उंगलिया पकर कढ़ोरै।
एकइ खाँ कम्मर सें बांधै, एकइ खाँ दपटै झकझोरै।
कोऊ कूबरो कोऊ दूबरो, कोऊ तूमरो सों लटकाये।
एक रहत रिरियात सुखट्टो, एक फिरत ऊसइ मुँह बाये।
एकइ खाँ खातन में गुलचै जा कुढ़िया खाँ परै भमानी,
फटे घुटन्ना खाँ सबरिन में, मची रात है ऐंचातानी,
अब जिर्याने से का होने, अपनो बओ और को बीने?
इन सब खाँ हरिया तोरी, घोंटी चचोर लोहू पी लेने।
कभ्भऊँ तात तवो ना होने, एक कमइया दस खाँ खाने।
चढ़ गई बात जिहन में आपुन छोटइ सो परिवार बसाने।।

– बांदा उ.प्र. ☐

संस्कार गीत

– कुन्ती व्यास

भारतीय जीवन से जुड़े सोलह संस्कारों में जन्मोत्सव और विवाह ये दो संस्कार बुंदेली मानस से जुड़े ऐसे सोपान हैं, जिनकी महत्ता उनके प्रत्येक आयोजन और इन आयोजनों में महकते प्राणों की गरिमा से गमकते अनुभवजन्य आध्यात्मिक पूर्णता लिए सामाजिक जीवन की नित्य की झांकी प्रस्तुत करके हमें आत्मिक आनन्द से भरके रस की रसभरी सृष्टि उपस्थित करते हैं।

भात मांगने बुंदेलखंड में चीकट मांगने गई वहिना के भाव भरे बोल –

''भतैया''

कांसे कौ बेला सवा सेर सतुआ ऊपर गुड़ की बटी
भतैया भारी भीर भई।
भात जौ मांगन चली है वहिन रानी वीरन की नगरी
भतैया भारी भीर भई।
असड़ा की गई बहना सवना में अइयो सो वन के बुबइया गये।
सवना की गई वहिना भदौआ में आइयो सो वन के निदइया गये।
भदवा की गई वहिना क्वार में अइयो कतिका में अइयो सो वन के बिनैया गये।
कतिका की गई वहिना अघना में अइयो सो वन के उहइया गये।
अघना की गई वहिना पूसा में अइयो सो बैना के कतन डरी।
पूसा की गई बहिना माघ में अइयो सो कुरिया के पुरिया चढ़ी।
माघ की गई बहिना फगुना में अइयो सो रंगिया के रंगन गई।
फगुना की गई बैना चैता में अइयो सो दरजी के सिलन गई।
खाट–पिढ़ी मेरे कछुअई नइयां – सो खूंटा पै बैठो लली।
भतैया भारी भीर भई।
कोऊ दीनौ लहंगा, कोऊ दीनौ लुंगरा अंगिया कौ ठिनक चली
भतैया भारी भीर भई।

''सोहर''

सरिया खेलते महाराज कहां सर खेलियो महाराज
अंगना में ठांढ़ी दुलैया कमल तन सूखियो महाराज।
सुगर दाई चाइये – महाराज।
हँस–हँस घुरवा पलोगे विहस राजा निग चले महाराज।
पौंचे दाई के अंगना तौ दाई नैना आंजे महाराज
वे धन हात की गाड़ी जीव की पतरी, गुनन की पूरी नेग मेरौ को दै है महाराज।
बड़न मोरो बड़ चलौ महाराज,
घर है मांय हमारी नेग तेरौ वे दैहै महाराज।
जो घर भये नंदलाल अगर गउवायेंगे महाराज
जौ लड़ैती घी अर कुसुम रंग चूनरी महाराज।
चार महीना के जाड़े तौ जाड़िन कौ मरै महाराज।
तुमकौ दाई सोरा सुपेती, सो ठंडन हम मरे महाराज।
चार महीना की गरमी सो गरमियन को मरै महाराज
तुमकौ तो विजना डुलैहैं तो गरमिन हम मरै महाराज।
चार महीना के चौमासे तो कीचन कौ चलै महाराज
दाई तुमकौ तो डुलिया राजा दैहैं तो कीचन हम चलैं महाराज।
दाई ने धरे दैरी पांव तौं सगुन से हो गये महाराज।
जाओ ल्याओ बेला भर तेल,
मलौं तेरे पेट पलौंटे तेरी पीड़री महाराज।
दाई रहौ मेरी माई हमैं निरवारियो महाराज।
भोर भये भुनसारे चतुरभुज औतरे महाराज।
दाई नै मांगौ नेग उसट–चट बोलिये महाराज।
दाई के लम्बे–लम्बे केस ललन मेरौ डरदिये महाराज।
सास कौ भाग ससुर कौ दाई तैने का करौ महाराज।
जेठ को भाग जिठानी कौ दाई तैनें का करौ महाराज।
जौरा देवर कर होते बिड़िनिया कर छोड़ते महाराज
जौरा राजा घर होते लौंड़िया कर छोड़ते महाराज
दुआरे में खाई खुदाऊं सो दाई जा में गिर परौ महाराज

(सहज बोलों से निकरे ये गीत मनुज स्वभाव की सटीक व्याख्या है। विवाह के हर प्रसंग में बुंदेली लोक स्वरों ने अपनी वानगी प्रस्तुत की है – जनेऊ, तेल, मण्डप से लेकर आगौनी भांवर विदा की बेला के गीत हमारी मार्मिकता के सटीक उदाहरण हैं)

जनेऊ गीत

काये के हरला काये के बखरला को राजा बऊत जनेऊ भलैं जू।
चाँदी कौ हरला सौने कौ बखरला आजुल राजा बऊत जनेऊ भलैजू।
काये को हंसिया काये की खुरपी को बेटी नींदन जायै भले जू।
सोने को हंसिया रूपे की खुरपी, बुआ बेटी नीदन जाये भलै जू।
काये कौ चरखा काये कौ तकुआ को रानी कातै जनेऊ भले जू।
सोने को चरखा रूपै को तकुआ आजी रानी कातै जनेऊ भले जू।
जौरा जनेऊ तुम सैयां, आजुल राजा नाती बम्मन कर जइयौ भले जू।

जनेऊ होने पर भीख के स्वर –

काशी के वरुआ चले आये आजुल दरवार।
आजी रानी हमैं भीख दैहैं, मेरौ जोग सफल हो जाये।
भीख दइयो आजी भीख दइयो, भीख न पूरै तो आशीष दइयो।

भीख के बाद मटयानौ वीदौरी तेल मण्डप अगवानी –

''कोट नवै परवत नवै सिर नवन न आयै,
माथौ अजुल जू कौ जब नवै जब साजन आये।''

उसी प्रकार सभी रिश्तों को जोड़ साजन गीत तिलक की पूरी रीति होने तक चलता रहता है।

कन्या दान

कौन् के हात गड्डआ सोये सो कोना के कुश की उगार।

बाबुल के हात गड्डुआ सोये मैया के कुश की उगार।
बाबुल को लोटा कंपन लागौ सो कंपी है कुस की उगार
तुम जिन कम्पौ राजा से बाबुल भई है धरम के बेर
धरम धरम पुकारौ मेरी बेटी सो धन बिन धरम न होय।
धन बिन धरम न होय मेरी बेटी पूत बिन सोहरे न होय।

कुँअर कलेवा

रघुवर संगै चारऊ भाई जू करन कलेवा आय।
सिद्ध नाम सरहज सुकुमारी भीतर गई लिवाई जू।
चरन धोये आसन बैठारे भीर हो गई भारी जू।
करौ कलेऊ राम ललाजू बोली सिद्ध कुमारी जू।
राम हंसे लछमन मुस्कयायें सखियां गायें गारी जू।

विदा गीत

जौ मेरी सगुन चिरैया तौ चुन चुन उड़ चली
ऐसी आजी रानी की लाड़ली राजा अजुल नै दई परदेस
निभाउन वे चलीं
(यहां सबके नाम लेकर विदा की पीड़ा की अनुभूति व्यापक होती चली जाती है।)
जौ मेरी सगुन चिरैया सुभ सुभ विचारियो
हम तौ बाबुल तेरे खूंटा की गैया जित हांको–हंक जाये।

इस प्रकार बुंदेली लोकगीतों की गरिमा संस्कार के हर पहलू को उजागर करती लोक जीवन की जीवन्त झांकी प्रस्तुत करती है। प्रत्येक संस्कार के ऊपर अनेकों गीत अनुभूतियों की ओज लिये सहज उभरते रहे हैं। उनमें छन्द की कसीदाकारी भले न हो पर हृदय के कोने से निकले बोलों ने समाज को सरावोर किया है विभिन्न रसों से।

ऐसे रससिद्ध स्वर सधे लोकगीत बुंदेली लोकजीवन के संस्कारित दस्तावेज हैं। बूढ़ी पुरानी मौसियों, दादी, नानी के कण्ठों से निकले गीत हंसने–रोने सामयिक आयोजनों को प्रभावित करते रहते जीवन के शाश्वत मूल्यों के प्रति आस्थावान बनाते रहे हैं।

आज उनका रुचि के अभाव या परिवर्तन के कारण लोप सा हो रहा है। नई पौद उथले या हलकी फिल्मी तर्ज पर रचे इन अवसरों के गीतों को गाकर अपना मन भले भरती हैं वे संस्कार नहीं दे पाती, न अवसरोंचित अनुभूतियों के आनन्द दे पाते हैं।

हजारों की संख्या में जनश्रुतियों में सजे इन गीतों को लिपिबद्ध करके सम्पादन और प्रकाशन की आवश्यकता है कि बुंदेली लोकजीवन की बहु आयामी ये विशेषतायें जीवित बनी रहके भावी पीढ़ियों को कलात्मकता की कोरों से प्रकाशित करती रहैं।

ये गीत गले की गायकी से सिद्ध रूप में स्वरबद्ध हैं। अवसरों के अनुकूल उनकी तानें है, उतार–चढ़ाव हैं हां ताल से मेल नहीं खाते सो आवश्यकता है उनके नुटेशन की।

वैसे आज भी ये गीत तंतुवाद्य को पृष्ठभूमि सहज गाये जाकर लोक गायकी की शास्त्रोक्त प्रस्तुति देते आ रहे हैं।

– नरसिंहगढ़पुरवा, छतरपुर □

दो कविताएँ

– रतनलाल नामदेव 'रत्नेश'

सैर

ये अली अलीवर सों कहौ, अलबेली के संग।
कलियाँ त्यागीं कुंज कीं, रंगो कूबरी रंग।।
कलिन कलिन से यह कहे, कल आवन कही कंत।
कल नहिं आवत एक पल, कल–कल करत बसंत।।
सैर – कसकत है अंग अँगिया, कीसें करैं जिकर
खामोश कैसे रहिए, उनकी गई अखर
गाँसी है प्रेम डोरी, दोऊ ओर सें अगर
घन छाये घन आये, घनश्याम आओ घर
चंचरीक भए चंचल, चंचल है चर अचर
छवि छायी छनयाई, नीर बह रओ छर–छर
जमुना जू अधिक बाढ़ीं, जहाँ तक करौ नजर
घन छाये घन आये, घनश्याम आओ घर,
टट पर करत किलोल न बोलत टर–टर
ठानी न ठीक उननें, ऊँसई बिदैई ठर
डग धरतन पग परतन, पर लागत है डर
घन छाये ....
ता दिन सें गए मथुरा, डारो नहिं अतर
थल पर न चलें पल भर, कँपती हैं थर–थर
दरसन करेंगे प्रभु के, न जैहें और दर
घन छाये....।।

बिलवारी

मोरीं बालें देव बचाव, बदरवा मोय डर लागै ओरन को
मैंने बाड़ी सें लओ बीज सुनौ, मो दीन–हीन की विपत गुनौ
दइयो इतनी नीत निभाय, बदरवा मोय डर लागै ओरन कौ
जो दीनबंद हैं लुर जैहे, गबुआरन चिथरा जुर जैहैं
तुमें पेट और पीठ दिखात, बदरवा मोय....।
घर नोंनों सौ दिन आवनें है, उर झूला चंगेर मंगावने है
ओरी कौ उर हरषाय, बदरवा मोय...।।
मोय भात भनेंजन कौ दैनें, कर–कर कर पीरे कर दैनें
दइओ कन्यादान कराय, बदरवा मोय...।।
तुम देस दसा सब जानत हौ, 'रतनेश' हिरदय पहचानत हौ
मोरौ जग भारत बच जाय, बदरवा मोय....।।

– गल्लामंडी, छतरपुर □

आज काल के लरका वारे, चाऊमीन खाँ रो रये।
पुरा परोस की का काबें, बुंदेलखंड की धो रये।
बुंदेलखंड की धो रये, जे जीन्स पैन्ट के रंग में,
फास्टफूड खां खा रये, प्यार से जे चटनी के संग में।
कहें आज कविराय, प्यारे चार साल के,
ईलू ईलू कै रये, लरका आज काल के।।

– रामकुमार अवस्थी 'आज', गंज, छतरपुर

रक्षाबंधन : कहानी, प्रथा या यज्ञ

– विंध्यकोकिल भैयालाल व्यास

रक्षाबंधन शब्द से ही स्पष्ट है कि यह दुर्बलता की, हीनता की रक्षा हेतु सामर्थ्यवान, सबल और श्रेष्ठ स्वरूपों के लिए एक पवित्र मंत्रयुक्त बंधन है।

हर पूजा, यज्ञ, हवन और कथाओं में पंडितों द्वारा रक्षाबंधन का जनसाधारण को बांधा जाना, तिलक का लगाया जाना ये दर्शाता है कि पूज्यों की प्रतिष्ठा की रक्षा करने के वचन में अपने को बांधना ही देवपूजन, आराधन का वास्तविक पुण्य और लाभ है।

गुरुजनों की, उनके शिष्यों द्वारा, उनकी योग्यता, कुशलता, तापस व्रत तथा साधनाओं की प्रतिष्ठा की रक्षा करना, उनके द्वारा आयोजित आयोजनों में शिष्य की श्रद्धा का संयोजन, संत समाज की सारगर्भित भूमिका के लिए आवश्यक होता रहा है। अपने शिष्यों को तिलक लगाकर, रक्षाकवच बांधकर, उनके पुरुषार्थ के स्थायीत्व के लिए आशीर्वाद देना गुरुजनों का कर्तव्य है, तो उनकी विशेषताओं के संरक्षण के लिए हर स्तर पर, हर दशा में प्राणपण से तत्पर रहना उनके शिष्यों, अनुयायियों और साधकों का परम कर्त्तव्य है।

सभी भारतीय त्यौहार, पर्व, मेले, व्रत, अनुष्ठान और सामाजिक, सांस्कृतिक संस्कारों के आयोजन भारतीय जीवन की जागृति के उदाहरण हैं और ये सभी इस देश की प्राकृतिक सुषमा के, दया के, करुणा के, अनंत उपकार की भावनाओं से जुड़े हैं, हिमालय की ऊँचाइयाँ हमारी शक्ति को दर्शाती हैं, उसके गर्भ से निकली समस्त सरिताओं के जीवन की गाथा हमारी संजीवनी बनी है। इनकी धारणाएं हर कदम पर हमें तीर्थों का आनंद देती आ रही है, सरिताओं की श्रृंखला पर्वतमालाओं को चारों ओर से अपनी शोभा से आवृत्त कर ऐसी लगती है जैसे इन बहनों ने अपने जीवन के ओज को संजो, पिरोकर अपने रक्षा प्रहरी का, देश की गरिमा के संरक्षण के लिए राखियां बांध दी हों।

इन प्राकृतिक दृश्यों से ऋषि कुलों, गुरुकुलों में नदी, नद, सर, सरिताओं में, सरोवरों में, झीलों, पोखरों में वृक्ष वल्लरियों ने हिल–मिल के वर्षा ऋतु के आगमन पर खुशियां मनाते अपने मन की मौजों के ममता भरे विचारों से सावन के त्यौहारों को राखी बांधने और पारस्परिक सहायता, सहयोग के सबल सरोकार स्थापित किए हैं। तभी तो आदि से अंत तक जहां देखें प्रकृति के कार्यकलापों में जनमानस के हितों के लिए उनके हाथों से अमर अनुदान बहते चले आ रहे हैं। सूर्य की किरणों की कलात्मकता को संजोकर श्याम बदरिया ने अपनी सतरंगी राखी आकाश को बांधी है जो हमें सुहाती, भाती है। इन्द्रधनुष का यह सतरंगी जीवन हमारे भाई बहनों के उत्साहों में झलकता है।

रक्षाबंधन इन्हीं पुरातन आदर्शों के प्राकृतिक आचरण से निकली कहानी है। भावनाओं द्वारा अपनाया गया वह जीवन है जो कालांतर में सबके लिए अमर कहानी सा बनता गया है, ये कथा, कहानियाँ हमारी चेतनाओं को नित नई प्रेरणा देती आ रही है, इन अर्थों में ये कथायें, ये कहानियां चरम सत्य हैं, कोरी गप्प नहीं, सत्यनारायण की कथा का प्रसंग भले मनुज के आचरणों से गुंथा लगता हो पर उसका निष्कर्ष एक ऐसा सत्य है जो सत्यनारायण बनके पौराणिक काल से आज के वैज्ञानिक युग तक भी अपनी वैचारिक विवेकशील धारणाओं से हमें प्रभावित करता आ रहा है।

रक्षाबंधन का आदर्श एक सनातन सत्य का जीवनदर्शन है। यह एक ऐसा दृष्टांत है जिसका दृष्टांत वास्तविक तथ्यों को सदा अनुप्राणित करता रहता है। ये न बद्धोबली राजा जैसे आशीर्वाद का अभिप्राय भी यही तो है। इस मंत्र के द्वारा आचार्य अपने यजमान के हाथों में रक्षाबंधन बांध के उससे अपने माता, पिता, आचार्य गुरुजनों की प्रतिष्ठा की रक्षा की कामना करता है। एक स्वर्गिक सोच की यह एक ऐसी चेतना है जो हमें अपने जीवन के आदर्शों का अंगीकार करने, उन पर आचरण करने को प्रेरित करती रहती है।

भगवान वामन द्वारा ब्रह्मसूत्र से राजा बली को बांधना उनसे दैत्यकुल की समस्त महता को समाप्त करके देवत्व की स्थिति को स्वीकार करते हुए कालांतर में दानव को देव बनाने में सहायक सिद्ध हुआ है।

रक्षाबंधन का ये अनोखा अनुष्ठान इतिहास के पन्नों में भी अपना प्रमाण स्थापित करता, आज के सामाजिक और पारिवारिक जीवन के एकत्व का अद्भुत आदर्श बन गया है।

हमारे संस्कारों सें सांसें पाकर हमारे व्यवहारों में बनती ये कथायें हमारी परंपराएं होकर आदर्श और व्यवहार की ऐसी प्रथाएं बनती जाती हैं जिन्हें हम जाने अनजाने, ज्ञात–अज्ञात रूप में अपने मन के हर सोच सामाजिक जीवन के हर चलन में अपनाकर इनको पारंपरिक प्रथाएं बना देते हैं, तब ये प्रथाएं भी हमारी ऐतिहासिकता की, हमारी सोच की सांची सिद्धि बनकर हमें प्रेरणा देती रहती है। प्रेरणाओं के ये रूप हमारी जाति, देश, धर्म के पक्के परिचायक हो जाते हैं हमारी कल्पना, चिंतन और उसकी प्रक्रिया से उपजी हमारी ऐतिहासिकता को संजोती आई हमारे रक्षाबंधन की ये पूजा अर्चना एक ऐसी ही प्रथा की प्रक्रिया है जो अब प्रथा न होकर हमारी सांसों की सच्चाई है। रक्षा बंधन एक सत्य है।

कहा गया है कि किसी मुस्लिम सूबेदार के अत्याचारों और आक्रमणों से अपने राज्य की रक्षा के लिए कर्मावती ने मुगल बादशाह हुमायुं को राखी भेजकर अपनी बहन के अस्तित्व की रक्षा के लिए प्रार्थना की थी और इस सामाजिक रीति का पूरे मन से पालन करते हुए मुस्लिम बादशाह हुमायुँ ने अपनी बहन कर्मा को बचाने के लिए प्रयाण किया था किन्तु हुमायु की सेना के पहुंचने

में कुछ विलंब हो जाने की वजह से कर्मा जौहर कर चुकी थी। और तब प्रायश्चित के आंसू बहाता वह मुस्लिम सम्राट अपनी बहन की चिता की भस्म अपने माथे पर लगाकर दुखी मन से लौटा था। हुमायुँ का, राखी बंधने पर भी बहन की रक्षा न कर पाने पर आजीवन प्रायश्चित करना हमारी जाति और सांप्रदायिक एकता की प्रथा का एक पवित्र उदाहरण आज भी जीवंत है, राष्ट्रीय चेतना है।

यज्ञ का अर्थ होता है अपना समर्पण, समाज के, राष्ट्र के, धर्म के प्रति कर्तव्य पालन के लिए अपना उत्सर्ग करना ही यज्ञ कहलाता है। यज्ञ की वेदियों में अपनी आहुतियों से हवन करने वाला हुतात्मा कहलाता है। यज्ञ की यह बलिदानी परिभाषा बहन–भाई के रिश्तों का संकल्प है। ये बहन के कन्यादान के बाद लाजा होम (जिसे आंचलिक भाषा में धान बुवाई कहते हैं) का संस्कार, भाई का बहन के लिए अपने सर्वस्व त्याग का यज्ञीय रूप है। इस होम में भाई बहन को धन, धान्य भेंट करता है। बहन उसको तत्काल अपने पति को सौंपकर गृहलक्ष्मी का उदाहरण प्रस्तुत करती है और तब वह पर उस भेंट को हवन कुंड में चढ़ा कर उसे समाज के कल्याण हेतु सौंप देता है। इस प्रकार यज्ञ का यह क्रमिक रूप आजीवन रक्षाबंधन के कर्तव्य का बोध प्रत्येक भाई को कराता रहता है। यह रक्षाबंधन का यज्ञ हमारी सामाजिक रीति और कुल की कीर्ति को रमणीक रूप में प्रस्तुत करके समाज को आनंदित करता रहता है।

इस प्रकार कोई भाई यज्ञ करता ही नहीं यज्ञमय हो जाता है, ऐसे ही यज्ञ हमारे रक्षाबंधन के संदेश, हमारे संस्कारों के आदर्श प्रस्तुत करते हैं। कवि की पंक्तियां हैं –

यज्ञ करना बड़ी बात है तो मगर
यज्ञ बन पाएं हम तो अधिक पुण्य हो

इस प्रकार कहा जा सकता है कि रक्षाबंधन एक अमर कहानी है, परिपूर्ण प्रथा है और हमारे जीवन का जीता जागता है सर्वस्व समर्पण का प्रेरक अद्‌भुत यज्ञ। बुंदेली के लोक जीवन का सर्वस्व यह राखी का रंग बिरंगा विभुतायुत त्यौहार हमारी बलिदानी रीति की रमणीय गाथा भी है।

– नरसिंहगढ़ पुरवा, छतरपुर □

कु. अवन्तिका को शुभाशीष

बुंदेली उत्सव मंच बसारी से निकली कलाकार कु. अवन्तिका दुबे ने द्वितीय विदेश यात्रा करके ताईवान का दौरा किया और वहां पर बुंदेली लोकसंगीत और संस्कृति की ध्वजा फहराई, इस पर बुंदेली विकास संस्थान परिवार उसके उज्ज्वल भविष्य की कामना करता है।

बुंदेली लघुकथा –

आय तौ हमाव बाप

– निहाल

जैसई लल्लू भइया झूमत–झामत आये, सोई सवई घरवारन ने सोची–समझी रांय से घर के किवारे भीतर सें बंद कर लये। लल्लू भइया द्वारे पै बड़बड़ात्–बड़बड़ात् चौंतरा पै ढेर हो गये।

घर के भीतर सन्नाटौ। सबई अपने–अपने बिस्तरा में दुबके रये। जैसई–जैसई रात बढ़त जा रई ती। वैसई–वैसई जाड़ौ अपनौ असर दिखा रओ तो।

राजू खां न रओ गओ, हरां–हरां अंदियारे में उठो, और हरैं से किवारे खोले और दद्दा के ऊपर हुरकें बुदबुदाओ 'दद्दा! ओ दद्दा! उठौ, भीतर चलौ'। मताई खाट पै परी परी गुर्राई ''ईखां चैन न परौ, डरो रानदै दारूखोरा खां।''

राजू बुदबुदाओ ''दारूखोरा है तौ का?, आय तौ हमाव बाप।''

– बेनीगंज, छतरपुर □

चौकड़ियाँ

– गुप्तेश्वर द्वारिका 'गुप्त'

बुंदेली के कवि निराले, रौबदार अलबेले
गुनी धुनी रये भक्ति भाव के, छतरपूर में मेले
अपनी कहन रहन अपनी संग, मंचन ऊपर छा कें
बुंदेली कौ राग ढार दओ, लमटेरा में गा कें
गुप्तेश्वर कवि कलम करम की, आन अनोखी मेली
संतोष सिंह बुंदेला गा गए, बांके बोल बुंदेली।

चीनें जुग की नबज खां, माधव शुक्ल मनोज
प्रकृति प्रतीक गढ़ते चलें, भरें काव्य में खोज
गुप्तेश्वर जू मंच सें, भाखें नोंने बोल
माहुर माधव नित भरें, कविता कौ तन कोल
अलंकार रस छंद संग, कहनातों की रीत
समै सिला पै टांकते, जे बुंदेली गीत।

दंगल के फड़ में सुनों, गंगाधर के ख्याल
गुप्तेश्वर ढप चंग पै, ऊंचौ रखवे भाल
रचे दादरे फाग संग, बुंदेली के छन्द
श्रृंगारिक अरु भक्ति के, रस में डूबे बन्द
पैनी नजर न चूकती, लखै समै की चाल
गंगाधर गरिमा बढ़ी, गुन गावैं भू–पाल

गोरे लाल सखा गुरु बांके, लाल कवि रओ नांव
रजधानी रई पन्ना प्यारी, छत्रसाल कौ ठांव
जिनके भये हैं राजकवि जे, रचे अनोखे ग्रंथ
राजा जू नें अपनाओ जां, प्राणनाथ कौ पंथ
गुप्तेश्वर कवि युद्ध में, बनकर उबरे काल
वीर बुंदेली सरसता, गढ़ गये गोरे गाल।

– ईडी २५, रामपुर, जबलपुर □

बुंदेलखंड का प्रथम समाचार पत्र : दैनिक प्रकाश

— डॉ. संतोष भदौरिया

बुंदेलखंड से प्रकाशित होने वाले दैनिक पत्रों में दैनिक 'प्रकाश' काफी लोकप्रिय और चर्चित अखबार था, जो कि सागर से प्रकाशित होता था। इसके संपादक मास्टर बल्देव प्रसाद थे। इसके प्रकाशन की शुरुआत ११ जून १९२३ से हुई। बुंदेलखण्ड में इसे प्रथम दैनिक समाचार के रूप में मान्यता प्रापत है। 'माधव राव सप्रे स्मृति समाचार पत्र' संग्रहालय में उपलब्ध दैनिक प्रकाश की पूरी फाइल देखने से पता चला है कि ११ जून से २० अक्टूबर १९२३ तक प्रकाश की प्रकाशन यात्रा १३३ दिन की रही और इस अवधि में प्रकाश के कुल ९८ अंक ही प्रकाशित हुए।[१] इसके प्रकाशक प्रेमनारायण शर्मा थे। मध्यप्रदेश का पहला सस्ता दैनिक पत्र के रूप में ख्यात इस पत्र का वार्षिक मूल्य शहर वालों के लिए सवा पांच रुपये और बाहर के ग्राहकें के लिए एक वर्ष का तीन रुपये था। 'प्रकाश' के मुख पृष्ठ पर नीतिवाक्य के रूप में निम्न दोहा अंकित रहता था —

देश दशा दर्शन देता यह, मनोभाव नित करे विकास।
राष्ट्रप्रेम स्वतंत्र भाव हित, पढ़िये दैनिक पत्र प्रकाश।।[२]

दैनिक 'प्रकाश' समाचार—पत्र में देश—दुनिया की खबरें प्रमुखतः से छपती थीं। पत्र के अंतिम पृष्ठ में अखबार के नियम प्रकाशित होते थे। उसके लेख और टिप्पणियां विचार प्रधान होते थे। संपादकीय के शीर्षक — 'देश की उन्नति कैसे हो' 'हम क्यों लड़ते हैं', भारत में स्त्रियों, अछूतोद्धार, असहयोग की सफलता देश की आर्थिक उन्नति जैसे गंभीर और प्रभावी थे। देश की दुर्दशा पर चिंता व्यक्त करते हुए प्रकाश ने लिखा — ''देश की उन्नति के लिए हर एक बच्चे तक के दिल में मुल्क की बनी चीजों के प्रति प्रेम होना चाहिए। हर एक के दिल में यह ख्याल होना चाहिए कि हम अपने देश की बनी चीजों के अलावा और चीजें कभी न बरतें। जब तक यह नहीं होगा, तब तक यहां के उद्योग धंधे नहीं चेत सकते और जब तक न हमारी आर्थिक अवस्था दुरस्त होती है और न हमको 'रोटी और पेट' की चिंता ही छोड़ती है। जब तक ऐसा नहीं होता तब तक देशोन्नति भी अदृश्य ही रहती है।''[३] बुंदेलखंड के स्वाधीनता आन्दोलन में 'प्रकाश' ने अपनी प्रभावी भूमिका निभाई।

दैनिक 'प्रकाश' समाचार—पत्रों के विचार स्वतंत्र्य का समर्थक था। १३ जून १९२३ के अंक में 'प्रकाश' ने सूचना प्रकाशित की, कि 'नवयुवक' के संपादक श्री कल्याण जी मेहता को दफा १२४ के अंतर्गत दो साल की कठोर कैद की सजा हुई है। १८ जून के अंक में वह पुनः लिखता है कि 'लाहौर' के सम्पादक प्रोफेसर गुलाम हुसैन को हिरासत में लिया गया है। 'अमृत बाजार' पत्रिका के पटियाला रियासत और 'हिन्दू' अखबार के निजामशाही द्वारा प्रवेश निषिद्ध की सूचनाएं 'प्रकाश' ने प्रमुखता से छापी। स्वराज आन्दोलन का भरपूर समर्थन दैनिक 'प्रकाश' ने किया, उसने हिन्दू—मुस्लिम की एकता पर जोर देते हुए संपादकीय लिखा — ''दोनों कौमों को सोचना चाहिए कि जिस स्वराज आन्दोलन के कारण हिन्दु—मुसलमानों का जलयानवाला बाग में खून बहा, जिसकी प्राप्ति के उद्योग में हजारों की तादात में हिन्दु—मुसलमान जेल गए, जिसके कारण महात्मा गांधी और अली बंधी आदि कृष्ण मंदिर की हवा खा रहे है, क्या उस आन्दोलन को अधूरा ही छोड़त्र दिया जाएगा और इनके कष्टों की कोई कीमत नहीं होगी।''[४]

दैनिक 'प्रकाश' ने साम्राज्यवादी शासन की आलोचना करके उनकी स्वार्थी अर्थव्यवस्था पर प्रहार किया। अकाल के समय उनकी उपेक्षा नीति का पर्दाफाश करके उसके खर्चीले प्रशासन और भारतीयों के प्रति रंगभेद का विरोध करके उन्हें लगातार इस बात का एहसास कराया कि वे पराई जमीन पर हैं और उनकी शोषण नीति ज्यादा दिन नहीं चलने वाली। पत्र के संपादक मास्टर बल्देव प्रसाद की 'प्रकाश की प्रांत वालों को सुपुर्दगी' नाम से चिट्ठी प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने लिखा है कि ''अब देश की पुकार सामने है, मैं 'प्रकाश' जो सिर्फ डेढ़ माह का मासूम बच्चा है, उसकी गोद में छोड़कर नागपुर जाता हूँ, चाहें तो आप इसे जिन्दा रख सकते हैं और प्रान्त को प्रकाशवान रख सकते है। मेरी एकमात्र प्रार्थना है कि मुझे भूल जाना मगर मेरे प्यारे 'प्रकाश' को न भूलना — वंदेमातरम् आपका नम्र सेवक — बल्देव प्रसाद मास्टर।''[५]

जेल—जब्ती और जुर्माना की कठिन यात्रा तय करते हुए २० अक्टूबर १९२३ तक 'प्रकाश' अनवरत प्रकाशित होता रहा। इस पत्र ने बुंदेली जनमानस को संघर्ष के लिए प्रेरित किया।

बुंदेलखंड की हिन्दी पत्र—पत्रिकाओं में प्रकाशित विभिनन संपादकीय लेखों एवं रचनाओं से राष्ट्रीय चेतना की विभिन्न प्रवृत्तियों का पता चलता है इस दौरान प्रकाशित दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक एवं त्रैमासिक पत्र—पत्रिकाओं से बुंदेली जनता के जागरण की जितनी अपेक्षा की जा सकती है, उससे ज्यादा उत्साह इन पत्र—पत्रिकाओं ने दिखाया। सागर से प्रकाशित होने वाले दैनिक समाचार पत्र 'प्रकाश' ने बुंदेलखंड की जनता को आजादी के संघर्ष हेतु उद्वेलित किया। 'दैनिक प्रकाश' में प्रकाशित पं. रामचरणलाल द्विवेदी, साहित्यभूषण की कविता की निम्नलिखित पंक्तियां जनता के लिए प्रेरणास्रोत रहीं —

डटे रहना संसार में तुम न मुँह पर उफ तनिक लाना,
अगर बरसें हजारो गोलियां, उनको भी सह जाना।
ये आरे से तुम्हें चीरे जो खूं की धार बह निकले,
निकर जावें तुम्हारे प्राण, तुम दिल में न घबराना।[६]

कविता की उपर्युक्त पंक्तियां राजनीतिक चेतना का पूर्ण बोध कराती है। 'दैनिक प्रकाश' के एक अन्य अंक में 'प्रताप की मनाई' शीर्षक से टिप्पणी तत्कालीन पत्र—पत्रिकाओं की ताकत का

एहसास कराती है – ''देशी रियासतों को 'प्रताप सांड को लाल झंडी का काम करता है। सात रियासत वालों ने तो पहले से ही 'प्रताप' का अपनी रियासतों में अना रोक दिया था, परन्तु आज आठवां नम्बर उदैपुर रियासत का हुआ है। उदेपुर रियासत में 'प्रताप' का अजाना एकदम बंद कर दिया गया है।'' [७] हिन्दी पत्र 'दैनिक प्रकाश' ने अपने लेखों एवं कविताओं के द्वारा बुंदेलखंड की जनता में क्रांतिमय विचारों को प्रवाहित करने और उन्हें क्रांतिकारी कार्यों की ओर उन्मुख करने में उत्साही भूमिका निभाई।

हिन्दी की पत्र–पत्रिकाओं में राजनीति से धीरे सरोकर रखने वाली रचनाओं की संख्या बहुत कम है। विश्व राजनीति की महत्वपूर्ण घटनाओं का विश्लेषण अवश्य प्रमुखता से किया गया है। पत्र–पत्रिकाओं के संपादकीय में राजनीतिक घटनाक्रम और स्वाधीनता आन्दोलन की समीक्षा की गई है। कांग्रेस की गतिविधियों की जानकारी प्रमुखता से छापी जाती थी। उसके वार्षिक अधिवेशनों के भाषण और उसमें पारित प्रस्तावों को समीक्षात्मक टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया जाता था। 'झण्डा आन्दोलन' पर 'दैनिक प्रकाश' की यह टिप्पणी उल्लेखनीय है – ''जबलपुर से मौलाना आजाद सुमानी, श्रीमती सुभद्रा कुमारी चौहान और ठाकुर लक्ष्मण सिंह बालाघाट पधारे, राष्ट्री झंडे पर प्रभावशाली व्याख्यान दिए और आपने बालाघाट और उसकी कुर्बानी पर कोटिशः धन्यवाद दिया। श्रीमती सुभद्रा कुमार जो अभी हवाहाल से रिहा होकर आई है, आपने लोगों को राष्ट्रीय झंडे की इज्जत बचाने पर बड़ा हृदयग्राही व्याख्यान दिया। आपने मर्दों से प्रार्थना की कि वे स्त्रियों को इस पवित्र युद्ध में शामिल होने की आजादी देवें। लक्ष्मण ने कहा कि मेरी अपील है कि काई भी आदमी सरकार को मदद न देवें और जुर्माने की रकम वसूल करना नामुमकिन कर देवें।''[८] इस प्रकार के अनेक समाचार तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं में खोजे जा सकते हैं, जिनसे बुंदेलखंड के स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को आजादी की लड़ाई को आगे ले जाने की प्रेरणा मिलती थी।

सागर से प्रकाशित होने वाले 'दैनिक प्रकाश' ने भारतीय जनता को आगाह करते हुए दुःख के साथ लिखा है कि ''भारतभूमि अनादिकाल से सर्वश्रेष्ठ कही जाती है, इसको विदेशियों ने स्वर्ण भूमि, देवताओं की निवासभूमि कहा हैं यह मान लिया गया है कि यह देश ज्ञान का भंडार धन–धान्य का घर और धर्म का जनक रहा है। यहां के निवासी बल, विक्रम, कला–कौशल में अतुलनीय थे, परन्तु आजकल हिन्दुस्तान की हालत देखने में अचरज मालूम होता है, कि जो देश किसी समय इतना उन्नावस्था में हो और जहां उन बातों का अब भी अभाव न हो, वह देश परतंत्रता में कैसे पड़ा और अब तक क्यों परतंत्रता में चला आ रहा है।'' [९]

भारतवर्ष के इतिहास से एक शिक्षा शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित उपर्युक्त पंक्तियां तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं की आर्थिक चिंता और भारत की अधोगति के लिए जिम्मेदार तत्वों को रेखांकित करती है। 'दैनिक प्रकाश' के एक अन्य अंक में प्रकाशित कविता 'विकलता' भारत की आर्थिक दुर्दशा का मार्मिक बयान करती है, इसके रचनाकार विश्वनाथ हैं।

हुआ अपना देश बिराना, तुम्हें माया मौज उड़ाना,
सारी लंदन सोने की हो गई, तुम हुए दाना–दाना।
अबहुं नीद तुमको प्रिय लागत, क्या मन में तुम ठाना,
परवशता की बेड़ी पहिनें, लाखों कष्ट उठाना। [१०]

बुंदेलखंड की सभी पत्र–पत्रिकाओं ने स्वदेशी एवं असहयोग आन्दोलन को आगे बढ़ाने में महती भूमिका निभाई। पूंजीवादी व्यवस्था का जमकर विरोध किया। अनेक रचनाएं प्रकाशित की। अंग्रेजों के आर्थिक शोषण का घिनौना रूप प्रस्तुत करने वाली अनेक रचनाओं के आधार पर पत्र–पत्रिकाओं के अंकों को जब्त कर लिया गया। उन पर जुर्माना लगाया गया और संपादक पत्रकारों को जेल भेजा गया।

बुंदेलखंड की पत्र–पत्रिकाओं ने क्षेत्रीय सांस्कृतिक चेतना एवं स्त्रियों में जागरूकता पैदा करने के लिए अनेक प्रयास किये। 'दैनिक प्रकाश' ने ''भारत की स्त्रियों'' संपादकीय में लिखा – ''दुनिया की तमाम स्त्रियां तुम्हारी हालत पर अफसोस की निगाह से देख रही हैं। तुम परदे का लम्बा कफन ओढ़े हुए पुरुषों के जुल्म के कबरस्तान में बंद पड़ी हो, तुम्हें दुनिया की कोई बात की नहीं, तुम्हें जलयान वाले की जिल्लतधारी बाल के अत्याचार और नागपुर के सत्याग्रह की खबर नहीं। तुम स्त्री संसार के क्षीर सागर में जिंदगी फैलाए हुए हो। तुम भी अपने जत्थे बना डालो। देश के नवयुवकों को सत्याग्रह संग्राम में जाने के लिए उत्तेजित करो। सामाजिक और धार्मिक बुराइयों को दूर कर भारत की सीता, सावित्री, दमयन्ती, अहिल और चाँदबीबी का नाम अमर कर जाओ।'[११] छुआछूत के प्रति पत्र–पत्रिकाएं विशेष रूप से सतर्क थीं। अछूतों का उद्धा भी उनका मुख्य उद्देश्य था। 'दैनिक प्रकाश' में लिखा – 'हिन्दुओं को हिन्दू सभाओं को चाहिए कि वे भंगी, बसोर आदि अछूत माने जाने वालों की सभा करें, उन्हें सफाई से रहने व शराब वगैरा नशीली चीजों को छोड़ने की नसीहत करें। उनको हिन्दू धर्म व विधा की महिमा बतलाएं, उन्हें मंदिरों में भगवान के दर्शन करने दें। उनसे प्रेम और सहानुभूति दरसावें, उनको स्कूलों में पढ़ने को भर्ती करें और उनको सब मनुष्योचित हक दें।'[१२]

– एम.एल.बी. अधीक्षक परिसर, झांसी रोड, ग्वालियर म.प्र. □

संदर्भ –

१. विजयदत्त श्रीधर – मध्यप्रदेश में हिन्दी पत्र–पत्रकारिता का उद्‌भव और विकास पृ. ७७
२. दैनिक प्रकाश, ११ जून १९२३ मुख पृष्ठ
३. दैनिक प्रकाश, ३० जून १९२३, संपादकीय
४. दैनिक प्रकाश, १५ जून १९२३, संपादकीय
५. दैनिक प्रकाश, २८ जुलाई १९२३
६. दैनिक प्रकाश, १४ जुलाई १९२३
७. दैनिक प्रकाश, १० जुलाई १९२३
८. दैनिक प्रकाश, १३ जून १९२३
९. दैनिक प्रकाश, १३ जून १९२३
१०. दैनिक प्रकाश, २४ जून १९२३
११. दैनिक प्रकाश, ३ जुलाई १९२३
१२. दैनिक प्रकाश, ६ जुलाई १९२३ □

बुंदेलखंड की बावड़ियाँ और चौपड़े

— **जगदीश प्रसाद रावत**

बुंदेलखंड एक जमाने में अपनी जलसमृद्धि परंपरा के लिये जगप्रसिद्ध रहा है। यहाँ के जलस्रोत चाहे नदी, नाले, तालाब, बावड़ी, कुयें और अन्य स्रोत रहे हों, सभी ने इस अंचल को अपने जल से रससिक्त किया है। प्राचीन जल परंपरायें बुंदेलखंड की धरोहर रही हैं। चंदेलकालीन तालाबों के मामले में यह क्षेत्र राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बना चुका है। सुप्रसिद्ध पर्यावरणविद और गांधी शांति प्रतिष्ठान पर्यावरण प्रकोष्ठ के श्री अनुपम मिश्र की ख्यातिनाम पुस्तक 'आज भी खरे हैं तालाब' में इसका उल्लेख इसकी प्रमाणिकता की पुष्टि करता है।

जल जीवन का अभिन्न अंग है, बुंदेलखंड में प्राचीन काल से जल स्रोतों के मामले में कुओं, बावड़ियों और चौपड़ों की संरचना को प्राथमिकता से महत्व दिया गया है। कदाचित यही कारण है कि राजशाही जमाने में महलों, गढ़ियों, बड़ी बखरियों, मंदिरों एवं सार्वजनिक महत्व के स्थलों के जल प्रबंधन के लिये कुआँ, बावड़ी और चोपड़े का निर्माण कर इन्हें बहुतायत में अंगीकार किया गया।

पूर्ववर्ती आचार्यों में वाराह मिहिर का स्थान असाधारण है। वे ज्योतिष के भी दैदीप्यमान रत्न थे। भूजल खोजने की प्राचीन प्रणाली वाराहमिहिर की वृक्ष प्रजातियों के आधार पर जल की खोज प्रचलित है। यह प्रणाली इस अंचल में कहीं–कहीं उपयोग में लाई जाती है। उन्होंने कुआं, बावड़ी, चोपड़ों आदि के उत्खनन के लिये शुभ मुहूर्त का भी निर्धारण किया है। उनका कहना है कि इनके जीर्णोद्वार के लिये भी कुछ निश्चित नक्षत्रों पर शुभ मुहूर्त में विचार करना चाहिए।

बुंदेलखंड में भूगर्भीय जल शोधन (खोज) के लिये विशेष वृक्ष प्रजाति की यष्टिका (लकड़ी) के टुकड़े एवं श्रीफल नारियल का उपयोग किया जाता है। इस विधा के मर्मज्ञों को जल गुनियां कहते हैं। इस प्रणाली की प्रक्रिया को विधि–विधान एवं पूजा–पाठ के साथ सम्पन्न किया जाता है। जहाँ भूगर्भीय जलस्रोत होता है, वहाँ यह लकड़ी की छड़ी या नारियल कंपन करने लगता है।

दस कूप समोवापी, दस वापी समोहृदः।
दस हृद समोपुत्रः, दस पुत्र समो द्रमः।।

दस कुओं के बराबर एक बावड़ी, दस बावड़ियों के बराबर एक तालाब, दस तालाबों के बराबर एक पुत्र तथा दस पुत्रों के बराबर एक वृक्ष होता है।

अनादिकाल से बुंदेलखंड प्राकृतिक जल श्रोतों के अलावा कुआं, बावड़ी और चोपड़ों का एक अच्छा जल श्रोत माना जाता था। लेकिन आधुनिकता की बयार के चलते इस अंचल के यह पारंपरिक अजश्र जलश्रोत दम तोड़ने लगे हैं और आज तो हालात यह है कि यह दम तोड़ते पारंपरिक जल श्रोत कूड़े दान बन गये हैं तो कहीं जमींदोज होकर आखों से ओझल हो गये हैं। जहाँ से इनकी उत्पत्ति हुई थी उसी धरती माता की कोख में सीता के समान ये समा गये हैं।

पतनशील होती पारंपरिक प्रणालियाँ –

बुंदेलखंड में भूगर्भीय जल संचयन की पारंपरिक प्रणालियाँ मृतप्राय एवं उपेक्षित हैं, कहीं उनका नामोनिशान नहीं है। कहीं वह कचरे से पटी पड़ी है तो कहीं बेहद प्रदूषण का शिकार है, इसलिये लोगों की पहुँच से इनका पानी दूर है। कई जगह तो इनको इसलिये इस्तेमाल नहीं किया जाता क्योंकि अमुक साल पहले किसी औरत या मर्द ने इसमें आत्महत्या कर ली थी या कोई जानवर इसमें गिरकर मर गया था। फलस्वरूप इसे तिरस्कृत कर दिया गया जबकि आज भी यह समृद्ध पेयजल श्रोत है। इतना ही नहीं विशाल जल भण्डार श्रोत तालाबों के तिरस्कार से भी कुंआं बावड़ी और चोपड़ा के जल श्रोत कम हुये और कहीं–कहीं ये सूख गये हैं। इस अनमोल भूजल के भण्डार अनेक जगह प्रभावित हुए हैं। इनका भूजल स्तर भी बहुत नीचे चला गया है इस कारण यह संरचनायें बदहाली का जीवन जी रही हैं और मानव जीवन भी दूभर हो गया है।

कारण और निवारण –

पारंपरिक प्रणालियों की बदहाली का प्रमुख कारण है – जनसंख्या वृद्धि, पानी की बढ़ती मांग, शासन द्वारा आधुनिक प्रणालियों को प्रोत्साहन, आधुनिक प्रणालियों से बिना झंझट और जोखिम के सहजता एवं सुलभ जल प्राप्ति प्राचीन प्रणालियों के रखरखाव में शासन एवं जन समुदाय की बेरुखी, खेती का व्यवसायीकरण, नकदी, बारानी तथा बोनी प्रजातियों एवं अल्पकालिक फसलों की खेती, सिंचाई की छोटी प्रणालियों की उपेक्षा और पानी को पर्यावरण के व्यापक प्रबन्धन की देन के रूप में देखने में सरकारी ऐजेन्सियों की असमर्थता।

टीकमगढ़ की बावड़ियाँ –

तीर सिंह जू देव के समय ५२ देवालय, ५२ बावड़ियां और ५२ छोटे–मोटे महलों का निर्माण किया गया था। इनकी नीव एक साथ एक ही दिन खुदवाई गई थी। यह इस बात का प्रतीक है कि धार्मिक, शुभ एवं कल्याणकारी कार्यों में जल श्रोतों के निर्माण को भी सम्मलित किया गया था।

रानी की बावड़ी टीकमगढ़ – निवाड़ी मार्ग पर १० कि. मी. दूर स्थित यह बावड़ी जल समृद्धि और भव्यता के लिये विख्यात है। यहाँ एक बगीचा भी है। यह बावड़ी रानियों के स्नान के लिये तैयार की गई थी। यह अतिप्राचीन बावड़ी है। यहां छोटी

सा आबादी भी रहती है। इस गाँव को भी बावड़ी कहा जाता है।

लोहा लंगर की बावड़ी – यह लोहा लंगर के व्यापारियों द्वारा तैयार कराई गई थी इस कारण इसका नाम लोहा लंगर की बावड़ी पड़ा।

बल्देवगढ़ की राजशाही बावड़ी – बूंद–बूंद पानी के लिए संघर्ष कर रहे बल्देवगढ़ के लोगों को कचरे से पटे पड़े कुयें की सफाई के दौरान राजशाही बावड़ी मिली है। ईट और चूने से बनी यह बावड़ी चौकोर बनावट की है। इसमें चारों ओर से पानी की झिर है। बावड़ी का पानी खाली होते ही भर जाता है। इसे १५ हार्स पावर का पंप भी खाली नहीं कर पाता है। बावड़ी में निकले पानी से इस मोहल्ले में पेय जल संकट नहीं होगा क्योंकि बावड़ी का पानी मीठा और प्रचुर मात्रा में है। इसका जल प्रबंधन आवश्यक है।

ओरछा की बावड़ी – ओरछा की भी राजशाही बावड़ी प्रसिद्ध है। राय प्रवीण के महल परिसर में एक नक्काशी और बेलबूटेदार कुआँ है जो जल प्रबंधन से श्रेष्ठ पेय जलश्रोत हो सकता था लेकिन यह कूड़ाघर बन गया है।

छतरपुर की बावड़ियां –

बिजावर का चोपड़ा – बिजावर में प्राचीन लक्ष्मीनारायण मंदिर के चोपड़े की सफाई में पंचमुखी शिवलिंग की प्रतिमा निकली जिसे पास के ही मंदिर में स्थापित कर दिया गया है। इस चोपरा की सफाई में अन्य पुरातात्विक वस्तुएँ भी मिलीं। इस चोपरा में गंदे पानी को आने से रोकने के लिए तीनों ओर से दीवाल बना दी गई है। यह विशाल बावड़ी है।

रानीगंज की बावड़ी – नया मोहल्ले के निकट स्थित रानीगंज में राजशाही विशाल बावड़ी में पानी की प्रचुरता है लेकिन साफ सफाई न होने से यह अनुपयोगी बनी हुई है। अगर इसका रख रखाव एवं उचित जल प्रबंधन पर ध्यान दिया जाये तो सूखे की साल में यह जल श्रोत जल जीवन के प्रदाता बन सकते हैं।

पुलिस लाइन की बावड़ी – छतरपुर के पुलिस लाइन परिसर में तीन साल पहले (२००५ में) खुदाई के दौरान निकली बावड़ी लगभग ५०० वर्ष पुरानी है। यह एक महत्वपूर्ण भूमिगत जल स्रोत है जो इस मोहल्ले की जलापूर्ति कर सकता है। लेकिन इन दिनों यह बावड़ी उपेक्षा की शिकार है। ज्ञातव्य है कि इसका जीर्णोद्धार तत्कालीन रेंज डी.आई.जी. एम.पी. द्विवेदी ने कराया था।

गांधी आश्रम की बावड़ी – छतरपुर स्थित गांधी आश्रम में विशाल कुआं है जो बावड़ीनुमा दिखता है यह प्राचीन कुआं है जिसमें गांधी आश्रम के पेयजल की पूर्ति होती है।

खजुराहो स्थित पश्चिम मंदिर समूह एवं आसपास कुछ विशाल बावड़ीनुमा कुआं है। राजनगर में भी यह देखने को मिलते हैं।

पन्ना की बावड़ियाँ/चोपड़े –

पन्ना शहर छतरपुर के राजशाही जमाने का प्राचीन स्थल है। वहाँ महलों में बावड़ियाँ हैं तथा महामति प्राणनाथ के पावन दार्शनिक स्थलों में भी चोपड़े हैं जैसे केशव कुण्ड, चोपड़ा जी, माईजूराज का हौजखास, गुम्मट जी का कुआँ आदि। अनेक जगह यह चोपड़े और बावड़ियां जमीदोंज होकर अपना पूर्ण अस्तित्व खो चुके हैं। लेकिन वकचुर गांव के पास विशाल कुआँ जो ज्यादा प्राचीन नहीं है यह दर्शाता है कि आज भी इन पारंपरिक जल स्रोतों के प्रति जन समूह का मोह भंग नहीं हुआ है।

सागर के चोपड़े –

बुंदेलखंड में सबसे प्रसिद्ध चोपड़े सागर के हैं। इस क्षेत्र में भूगर्भीय जल स्रोत संरचनाओं को कुआं, कुइयां, बेर, चोपड़ा और हौज खास के नाम से भी जाना जाता है। इनका वर्गीकरण भी तीन प्रकार से किया जाता है, ग्रे, डार्क और अतिदोहित श्रेणी।

सागर में लक्ष्मीपुरा स्थित लक्ष्मीबाई के चोपड़े, नरयावली नाका स्थित दुलीचंद के चोपड़े तथा गोपालगंज के चोपड़े लगभग २५० से ३०० वर्ष पुराने हैं।

लक्ष्मीपुरा स्थित चोपड़ा – यह चोपड़ा मराठा पेशवा द्वारा नियुक्त सूबेदारों ने सन् १७१० में बनवाया था। इस चोपड़े के सामने महालक्ष्मी का मंदिर है जो इसी कालखण्ड में निर्मित हुआ था।

इस चोपड़ा में जाने के लिए तीन मंजिला भवन है। कहते हैं कि लक्ष्मीनारायण मूर्ति के पार्श्व में चोपड़े में जाने के लिए एक भूमिगत मार्ग है जिसे राजशाही स्त्रियाँ उपयोग में लातीं थी। इसके आसपास आज भी सूबेदारों के वंशज रहते हैं मुख्यत: इन चोपड़ों का निर्माण मंदिरों के जल प्रबंधन की दृष्टि से किया गया था क्योंकि यह चोपड़ा इस मंदिर का ही एक प्रमुख अंग है। राजा रजवाड़ों का शासन समाप्त होते ही यह एक सार्वजनिक जलापूर्ति स्थल बन गया।

सेठ दुलीचन्द्र का चोपड़ा – यह चोपड़ा सागर में नरयावली नाका में स्थित है जिसे सेठ दुलीचन्द्र ने बनवाया था।

गोपालगंज का चोपड़ा – गोपालगंज का चोपड़ा आकार में चौकोर है इसके निर्माण का इतिहास मौन है। दो–तीन दशक पहले यह महत्वपूर्ण जलस्रोत दम तोड़ चुका है और इतिहास के पन्नों में भूतपूर्व सम्पत्ति के रूप में दर्ज हो गया है

सूखे से जूझते बुंदेलखंड में जल प्राप्ति के पारंपरिक भूगर्भ स्रोत कुआँ, बावड़ी और चौपड़ों का यदि जीर्णोद्धार कराया जाये तो इसमें राशि भी कम व्यय होगी और नये जल श्रोतों आधुनिक निर्माण की अपेक्षा यह कारगर भी अधिक है। हम जिन जलश्रोतों को भूल गये हैं, वह आपातकालीन स्थिति में ही काम आते हैं क्योंकि बुंदेलखंड में यह जल प्रणालियाँ यहाँ की भौगोलिक स्थिति के अनुसार अनुकूल है। अत: देशकाल की परिस्थिति के अनुसार हम इन्हें पुनर्जीवित कर अपनी परंपराओं को पुनर्जीवित करें।

– कमला कॉलोनी, छतरपुर

□

पुस्तक समीक्षा –

गुरीले बुंदेली संगीत रूपक – 'बरखा बसंत'

– समीक्षक : डॉ. श्रीमती विनोद तिवारी

क्रिया, गायन, भाव और चिन्तन को एकाकार करना प्रायः कठिन ही है, जैसे–आन्तरिक भाव को समझे बगैर बाह्य स्वरूप द्वारा अमिधा शक्ति द्वारा अनुभूति का आनन्द सम्भव नहीं है, उसी प्रकार सांस्कृतिक स्वानुभुति के वगैर लोक या लोक बोली के संदर्भ में कुछ भी कहना या लिखना व्यर्थ ही होगा क्योंकि वहां उस प्राणतत्व का अभाव होगा जिसे हम 'सूक्ष्म' अनुभूति की संज्ञा देते हैं। मैं यह बात किसी भी काव्य, गीत या लोक अभिव्यक्ति के संदर्भ में कह रही हूँ। 'बरखा बसंत' (संगीत रूपक) का संदर्भ है।

लोकगीतों के श्रवण और गायन दोनों का अलग–अलग अनुभूतिक आनन्द है। इसके गायन, वादन और नृत्य का सहजानन्द तो वही समझ सकता है, जिसने इस भावलोक की रसमय मंदाकिनी के जल में ''गहरे पानी पैठ'' वाला स्नान किया हो। लोकगीतों का व्यंजनार्थ उनके वाच्यार्थ से बिल्कुल अलग है और इस व्यंजनार्थ को तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता, जब तक इनकी लय, रागात्मकता और लोकधुनों का सही ज्ञान न हो। प्रसन्नता है कि बरखा–बसंत का लेखक इस सत्य को समझता है। लोकगीत गायन भी अपेक्षाकृत लोकगीत लेखन से सरल नहीं है। लोकशैली में लिखने के लिये लोक–आत्मा से एकाकार होना अनिवार्य है। बात बुंदेली की हो या अन्य किसी बोली के संदर्भ में, सत्य यही है। अतः लोकबोली में ''रूपक'' लिखना अभिजात्य रचना शैली में लिखे गए रूपकों से कठिनतर कार्य है, ऐसा मेरा मानना है।

लोकशैली में लिखे गए रूपकों की भाव प्रवणता, हर्ष–विषाद के क्षण एवं क्रियात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए लोक की आत्मा एवं उस सहजता में उतरना लेखक के लिए अनिवार्य है। मुझे प्रसन्नता है कि बटुक जी ने इसे पूर्ण रूप से निभाया है। भारतीय संस्कृति, लोक रंग एवं सरसता की दृष्टि से बुंदेली का अपना महत्व है, यह हम सब जानते हैं। श्रावण मास के प्रारम्भ में ही प्रकृति एवं नारी दोनों जैसे सहयोगिनी बन जाती है। पारम्परिक लोकगीतों से ताल–मेल मिलाते हुए मेघों के रिमझिम वातावरण के मध्य से बरखा रूपक जैसे स्वयं उद्‌भूत हो उठे हों, ऐसे ही हैं बटुक जी के वर्षा रूपक बिजरिया थिरकन लागी रे, धरा के कन–कन तक हरसे, बरस रओ बदरा और साउनकी झरियां। इन गीतों में जहां बुंदेली माटी की सुगंध भी है और लोकधुनों की मिठास भी। पावस के विविध चित्र प्रस्तुत करने के लिये लेखक ने ठीक लोकमानस की प्रवृत्ति और लोकरस से तादात्म स्थापित किया है। मुझे लगा आज इसकी बहुत आवश्यकता है क्योंकि लोकगीत और लोकसंगीत प्रायः या तो गुम सा है या उसमें बनावटीपन मिश्रित होता जा रहा है। बहुत आवश्यक है कि भावानुभूति और लोक संस्कृति की रक्षा हेतु ऐसे रूपकों और गीतों का सृजन हो, ताकि लोकरस की सरिता को जल मिलता रहे, वह कभी भी रसमयता से रिक्त न रहे।

बुंदेली का एक लोकगीत याद आ रहा है – असाढ़ मास का प्रारम्भ हो चुका है, दिन व्यतीत होते हैं, कृषक पत्नी परेशान है, कृषि कार्य की चिन्ता है परन्तु वह करे तो क्या? बादल आते हैं, चले जाते हैं वह कहती है –

बरसो नईं पापी एकउ झला, फिर–फिर बदरा ई दे गओ दगा।
पड़ोरी के सूख गए सबरे तला, बरसो नईं पापी एकउ झला।।

अब जरा 'पापी' शब्द पर ध्यान दें। खीज, दुःख, क्रोध समस्त भाव एकाकार हो रहे हैं। यह उदाहरण इसलिए आवश्यक लगा ताकि बटुक जी के गीतों का सरस रूप स्पष्ट हो सके। बटुक जी ने वर्षा रूपकों में जो गीत रचना की है वह पारम्परिक सांस्कृतिक दृष्टि से भी पूर्ण रूपेण सार्थक है –

बदरा इते आय न आवै, मन हमरों घबरावै।
बाट हेरतन दिन भर बीतै, रातें जी उकतावै।।

बुंदेलखण्ड की धरती भावनाओं की पवित्र और रस मयता की ऐसी भरी–भरी सोन गागरी है, जो हमेशा छलकती ही है। इसका जल कभी घटता नहीं है, क्योंकि इसका संबंध ब्रजभूमि से भी है। बटुक जी के नैपथ्य कथन या यूँ कहें कि रूपकों को साकार अभिव्यक्ति देने के लिए उनके बुंदेली बोली के वक्तत्व इतने सरस और स्वभाविक हैं कि गीतों के लिए स्वतः जमीन निर्मित हो जाती है। यही रूपक रचना के लिए आवश्यक भी होता है।

'बरखा बसंत' संग्रह में ग्यारह रूपक संग्रहीत हैं, वर्षा, बसंत और होली के संबंधित। वस्तुतः जनमानस में भावनाओं की उथल–पुथल का कारण यही ऋचाएं हैं। विशेष रूप से वर्षा और बसंत, जिसकी परिणति होती है। फागुन मास में बटुक जी ने फागुन गीत, लोक की मानसिकता के आधार पर ही लिखे हैं, इसीलिए वे लोकरूपक सार्थक लोकचित्र भी उतार सके हैं।

बुंदेली संस्कृति और लोकजीवन की प्रेम रसधार को लोकधुनों की सहज रसमयता के रूपक में बांधना एवं उस वातावरण को जीवन्त बना देना सहज कार्य नहीं है। रचनाकार के लिए आज बहुत बड़ी चुनौती भी है, क्योंकि अभिजात्य साहित्य के व्यवसायवादी लेखक जितना पोस्टरी प्रचार करते हैं, उतना लोकशैली के लेखक को प्रायः नहीं मिल पाता। लय और संगीत आदिम युग से ही लोक जीवन के श्रम और क्रिया से जुड़े हैं। लोक तो आज भी है किन्तु लोकशैली का लेखन और लोकधुनें प्रायः लुप्त हो रही हैं। अपसंस्कृति का विलास बहुत रंगीन और मायावी है। ऐसे माहौल के मध्य सुधीजन यदि 'बरखा बसंत' में निहित वातावरण और गीतों की समीक्षा करें तो बटुक जी के इन संगीत रूपकों का महत्व स्वतः स्पष्ट हो जाएगा।

पुस्तक – बरखा बसंत (संगीत रूपक), लेखक – बटुक चतुर्वेदी
प्रकाशक – म.प्र. लेखक संघ, भोपाल, मूल्य–सौ रुपये,
पृ. सं. ८८

बुंदेली उत्सव २००६ का प्रतिवेदन

— योगेन्द्र प्रताप सिंह 'गुड्डू राजा'

बसारी के महाराजा छत्रसाल स्टेडियम में निवाड़ी क्षेत्र के विधायक बृजेन्द्र सिंह राठौर के मुख्य आतिथ्य एवं म.प्र. शासन के पूर्व मंत्री मानवेन्द्र सिंह की अध्यक्षता में १७ फरवरी २००६ को दोपहर में दसवें बुंदेली उत्सव का शुभारम्भ हुआ। इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में स्वतंत्रता सेनानी व पूर्व विधायक श्री प्रताप सिंह नन्हे राजा गर्रोली, तिलक सिंह लोधी व कृषि उपज मंडी अध्यक्ष डीलमणि सिंह बब्बू राजा उपस्थित थे। बुंदेली विकास संस्थान के संरक्षक श्री शंकर प्रताप सिंह मुन्ना राजा, अध्यक्ष शोभालाल गुप्ता, सचिव जीतेन्द्र सिंह जित्तू व अन्य पदाधिकारियों ने अतिथियों का स्वागत किया। मुख्य अतिथि बृजेन्द्र सिंह राठौर ने इस अवसर पर सम्बोधित करते हुए कहा कि बुंदेलखंड का साहित्य, यहां की वीरता एवं कला बेजोड़ है। यहां महाराज छत्रसाल, महारानी लक्ष्मीबाई एवं आल्हा–ऊदल से पराक्रमी योद्धाओं ने जन्म लिया है और इसी शौर्य के उदाहरण स्वतंत्रता आन्दोलन में भी देखने को मिले। बुंदेलखंड की कलाओं को मंच देने हेतु यह प्रतिवर्ष बुंदेली उत्सव का आयोजन होता है। जो प्रशंसनीय है। कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे श्री मानवेन्द्र सिंह ने कहा कि बुंदेली उत्सव के माध्यम से बुंदेलखण्ड की कला और संस्कृति की विरासत को सँवारा जा रहा है। इस अवसर पर डिलाइट इंग्लिश स्कूल, महर्षि विद्या मंदिर, हायर सेकेण्ड्री बसारी तथा स्थानीय कलाकारों ने सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुतियाँ दीं। उद्घाटन के दिन ही अंचल के वरिष्ठ साहित्यकार श्रीयुत श्रीनिवास शुक्ल को राव बहादुर सिंह बुन्देला स्मृति सम्मान से सम्मानित किया गया। ततपश्चात दंगल संपन्न हुआ। जिसमें म.प्र. राजस्थान, बिहार, पंजाब, हरियाणा तथा छत्तीसगढ़ के पहलवानों ने दाव अजमाये।

बुंदेली उत्सव के दूसरे दिन १८ फरवरी को दिन में अश्वनृत्य प्रतियोगिता सम्पन्न हुयी। जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में जिला पंचायत अध्यक्ष वीर सिंह राजपूत तथा अध्यक्ष के रूप में श्री जगदीश शुक्ल उपस्थित रहे। प्रतियोगिता में म.प्र. तथा उत्तर प्रदेश के ५० घोड़ों ने भाग लिया। इस प्रतियोगिता में प्रथम स्थान ग्राम गंज के अर्जुन पाल के घोड़े ने प्राप्त कर ५१०० रुपये का पुरस्कार जीता। द्वितीय स्थान ग्राम सुरा के धूप सिंह के घोड़े ने तथा तृतीय स्थान नैंगुवां के प्रेमनारायण अवस्थी के घोड़े ने प्राप्त किया। इनको क्रमशः ३१०० व २१०० की राशि पुरस्कार स्वरूप प्रदान की गयी। अश्वनृत्य प्रतियोगिता का संचालन लोकपाल सिंह एवं जगदीश गंगेले ने किया। निर्णायक के रूप में श्री अजीमउल्लाह खां छतरपुर, श्री महेन्द्र सिंह राजनगर, तथा हशमत छतरपुरी रहे।

बुंदेली उत्सव के तीसरे दिन १९ फरवरी को दिन में रस्साकसी प्रतियोगिता तथा बुंदेली व्यंजन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया। जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में म.प्र. विद्युत मण्डल के अधीक्षण यंत्री एस.के. वर्मा उपस्थित रहे। रस्साकस्सी प्रतियोगिता के पुरुष वर्ग में परा की टीम विजयी रही तथा बसारी की टीम ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। सीनियर वर्ग महिला में लल्लाबाई व साथियों ने प्रथम व तिजिया अहिरवार व साथियों ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। बुंदेली व्यंजन प्रतियोगिता में विविध प्रकार के व्यंजनों का प्रस्तुतिकरण किया गया जिसमें प्रियंका एवं रुचि अग्रवाल ने प्रथम श्वेता अग्रवाल ने द्वितीय तथा कौशल्या देवी ने तृतीय स्थान प्राप्त किया। इस प्रतियोगिता के निर्णायक के रूप में डॉ. शकुन्तला सिंह, श्रीमती सुमन गुप्ता तथा डॉ. मालती घोष उपस्थित रहीं। इसी दिन शाम के समय स्कूली बच्चों ने बुंदेली आधारित सांस्कृतिक कार्यक्रमों की प्रस्तुतियां दीं। जिसमें मुख्य अतिथि के रूप में जिला पंचायत शिवपुरी के उपाध्यक्ष राजा प्रताप सिंह चौहान तथा अध्यक्ष के रूप में भगवान सिंह यादव उपस्थित रहे। बुंदेली आधारित बच्चों के समूह नृत्य कार्यक्रम में सतना रंगमण्डल बसारी ने प्रथम तथा मिली–नीलू राजनगर ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। एकल गायन की प्रस्तुति में बृजवासी कोरी छतरपुर ने प्रथम तथा रामकुंवर बसारी ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। समूह गायन में राजा बलवंत सिंह संगीत विद्यालय राजनगर को प्रथम पुरस्कार से नवाजा गया। बुंदेली पोशाक प्रतियोगिता में राजेश अग्रवाल को प्रथम तथा बैजनाथ नामदेव को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। बुंदेली मंच की कलाकार कुमारी अवंतिका दुबे ने इस अवसर पर विशेष प्रस्तुति दी। कार्यक्रम में निर्णायक के रूप में डॉ. एस.के. मेहरा, श्री ओ.पी. शर्मा, श्री दिनेश रजक आकाशवाणी छतरपुर एवं प्रो. बी.पी. सिंह गौर छतरपुर उपस्थित रहे।

बुंदेली उत्सव के चौथे दिन २० फरवरी को दिन में रोमांचक बैलगाड़ी दौड़ का आयोजन किया गया। जिसको देशी दर्शकों के साथ विदेशी पर्यटकों ने भी देखा। इस प्रतियोगिता में कुल आठ चक्र हुए जिसमें २३ प्रतियोगियों ने भाग लिया। इसके बाद सेमीफ़ाइनल के तीन चक्र तथा फाइनल दौड़ सम्पन्न हुई। बैलगाड़ी दौड़ में ग्राम निवारी के श्यामलाल नायक ने प्रथम स्थान, ब्रदी यादव ग्राम लुगासी ने दूसरा स्थान तथा भुजबल यादव ग्राम बंधियन ने तीसरा स्थान प्राप्त किया। इनको क्रमशः सुसज्जित बैलगाड़ी व २१०० रुपये, २१००रुपये एवं ११०० रुपये पुरस्कार स्वरूप दिये गये। प्रतियोगिता में निर्णायक के रूप में जगदीश अरजरिया, वीरेन्द्र सिंह व बालकृष्ण रैकवार उपस्थित रहे। प्रतियोगिता का संचालन डॉ. मुराद अली ने किया।

२० फरवरी की रात को बुंदेली उत्सव में बुंदेली नाटक कछियाई, तथा चमरयाई गायन की प्रतियोगिताएं सम्पन्न हुयीं। इस कार्यक्रम में अध्यक्ष नगर पालिका छतरपुर, सरदार प्यारा सिंह मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित रहे तथा अध्यक्षता विंध्यकोकिल पं.

भैयालाल व्यास ने की। मुख्य अतिथि के रूप में संबोधित करते हुए सरदार प्यारा सिंह ने कहा बुंदेली उत्सव कलामंच इस मुकाम पर पहुंच गया है जहां उसकी प्रतिष्ठा और सम्मान आम आदमी के मनमस्तिष्क में समाहित हो गया है। बुंदेली नाटक प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार लोकनृत्य नाट्य संस्थान पन्ना के नाटक 'बुधिया' को दिया गया। द्वितीय पुरस्कार सतना रंगमण्डल बसारी के 'दलुवा भओ दिल्ली में बरबाद' को प्रदान किया गया। कछयाई गायन में महोबा के छन्नूलाल कुशवाहा को प्रथम एवं नवदुर्गा कछियाई पार्टी भवानीपुरा को द्वितीय पुरस्कार मिला। चमरयाई बैठक में संसेरा फुटेरा जिला महोबा के रामलाल अहिरवार और साथियों को प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। बुंदेली के कवि पं. रतिभानु तिवारी 'कंज' नैगुवां, पृथ्वीपुर को रावबहादुर सिंह बुंदेली स्मृति सम्मान २००६ प्रदान किया गया। जिसमें सम्मानपत्र, शाल, श्रीफल तथा ११०० रुपये की नगद राशि दी गयी। उन्होंने इस अवसर पर अपनी कवितायें भी प्रस्तुत की। निर्णायक के रूप में श्रीमती वीणा निगम कलाकार, श्री रामप्रकाश जाटव कार्यक्रम अधिकारी आकाशवाणी तथा डॉ. अरविन्द सोनी उद्घोषक आकाशवाणी उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन डॉ. विष्णु अरजरिया एवं श्री आनन्द शर्मा ने किया।

बुंदेली उत्सव के पांचवे दिवस लोकनृत्य एवं लोकगायन की प्रतियोगिताएं सम्पन्न हुयी। इसी दिन छत्तीसगढ़ की पंडवानी गायिका पद्मश्री तीजन बाई ने विशेष प्रस्तुति दी। इस दिन मुख्यअतिथि के रूप में आयकर अधिकारी श्री सुभाषचन्द्र गुप्ता एवं अध्यक्ष के रूप में डॉ. गंगाप्रसाद बरसैंया उपस्थित रहे। दीवान प्रतिपाल सिंह स्मृति सम्मान सेंवढ़ा दतिया निवासी डॉ. श्यामबिहारी श्रीवास्तव को प्रदत्त किया गया। यह पुरस्कार बुंदेलखंड के इतिहासकारों को प्रदत्त किया जाता है। इसमें शाल, श्रीफल व ११०० रुपये की राशि प्रदत्त की गयी। इस दिन सम्पन्न हुयी प्रतियोगिताओं में ख्याल गायन में पचपहरा के ललन भास्कर ने प्रथम स्थान, छतरपुर के धनीराम ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। गारी गायन में घूरा के श्रीकृष्ण संकीर्तन मण्डल ने पहला स्थान एवं कबीर समहित कला मण्डल बसारी ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। रावला में बजरंग मंडल बसारी पहले स्थान पर रही। बनरा गायन में भी बजरंग मंडल बसारी ने प्रथम स्थान प्राप्त किया। एवं दूसरा स्थान रंजना सिंह एवं साथी झांसी ने प्राप्त किया। लमटेरा गायन में जय दुर्गा मां पार्टी भवानीपुरा ने प्रथम स्थान तथा सत्संग मण्डल परसौरिया दमोह ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। दलदल घोड़ी नृत्य में रमेश रजक बसारी ने पहला तथा गद्दू अहिरवार कर्री ने द्वितीय स्थान प्राप्त किया। कहरवा गायन में बजरंग मंडल बसारी प्रथम तथा गणेश कलामण्डल बकस्वाहा दूसरे स्थान पर रहे। दिवारी नृत्य में रमेश पाल पार्टी ग्राम बड़ोखर खुर्द जिला बांदा को प्रथम तथा बुंदेलखड दिवारी पार्टी खजुराहो को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। सैरा नृत्य में बजरंग मंडल सुनहरा पन्ना ने सबका मन मोह लिया। इस दिन निर्णायक के रूप में डॉ. दुर्गेश दीक्षित, कुण्डेश्वर, श्री नवलकिशोर सोनी 'मायूस' छतरपुर, व श्री चन्द्रभूषण तिवारी छतरपुर उपस्थित रहे।

२२ फरवरी को छठवें दिन बुंदेली उत्सव में ढिमरयाई, कार्तिक गीत, बहुरूपिया, गोटें, सोहरें, दादरे, बिलवारी, कांड़रा, फाग तथा आल्हा गायन की प्रस्तुतियां हुयीं। इस दिन मुख्यअतिथि के रूप में पूर्व मंत्री राजा पटैरिया पूर्व विधायक कपूरचन्द्र घुवारा, विधायक चंदला विजय बहादुर सिंह बुंदेला उपस्थित रहे। विशिष्ट अतिथि के रूप में आकाशवाणी के केन्द्र निदेशक डॉ. अशोक नगायच, दूरसचार प्रबंधक श्याम सिंह मुख्य प्रबंधक स्टेट बैंक, एस.एस. पॉल तथा वरिष्ठ साहित्यकार डॉ. शंकर लाल शुक्ल उपस्थित रहे। इस दिन टीकमगढ़ निवासी आचार्य दुर्गाचरण शुक्ल को रावबहादुर सिंह स्मृति सम्मान प्रदत्त किया गया। इस दिन सम्पन्न हुयी प्रतियोगिताओं में ढिमरयाई गायन में सत्संग कला मण्डल परसोरिया दमोह को प्रथम स्थान तथा गणेश कलामण्डल को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। सोहरे गायन में ग्वलियर की दिनेश स्वामी पार्टी को प्रथम, बजरंग कीर्तन मंडल रिछाई को द्वितीय स्थान दिया गया। दादरे गायन में वंदना लोककला मण्डल कनेरादेव सागर को पहला स्थान तथा रघुवीर सिंह यादव श्यामरीखुर्द झांसी को दूसरा स्थान प्राप्त हुआ। कार्तिक गीत में बजरंग कलामण्डल बसारी को प्रथम एवं रेखा पार्टी उरई को द्वितीय स्थान मिला। फाग गायन में बसारी के कबीर समहित समूह मण्डल को प्रथम तथा सूरज सिंह व साथियों सुनहरा पन्ना को द्वितीय स्थान मिला। आल्हा गायन में महोबा जिला के ग्राम खन्ना निवासी पहलवान सिंह यादव ने पहला स्थान तथा लल्लन भास्कर पचपहरा ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। इसी तरह गोट गायन में दौरिया की गोट पार्टी ने पहला स्थान तथा धन सिंह यादव आरी जिला महोबा को द्वितीय स्थान प्राप्त हुआ। बहुरूपिया कांड़रा एवं बिलवारी की प्रस्तुतियों ने दर्शकों के मन को मोह लिया। डॉ. नर्मदा प्रसाद गुप्त स्मृति सम्मान बुंदेलखण्ड के समर्थ लोककलाकार को प्रदत्त किया जाता है जो इस वर्ष ढिमरयाई के कलाकार श्री चुन्नीलाल रैकवार कर्रापुर जिला सागर को प्रदत्त किया गया। जिसमें शाल, श्रीफल व सम्मान पत्र के साथ नकद ११०० रुपये की राशि दी गयी। श्री चुन्नीलाल रैकवार ने मंच से अपनी कला का विशेष प्रदर्शन किया। निर्णायक के रूप में इस दिन श्री हरिविष्णु अवस्थी टीकमगढ़, डॉ. बलराम शुक्ला खजुराहो, श्री बद्री प्रसाद खरे निरंकार छतरपुर उपस्थित रहे। कार्यक्रम का संचालन डॉ. विष्णु अरजरिया, श्री प्रमोद त्रिपाठी ने किया।

२३ फरवरी को बुंदेली उत्सव के अंतिम दिन राई व बधाई के रस में अपार जनसमुदाय रातभर डूबा रहा। इस दिन मुख्य अतिथि के रूप में में पूर्व मंत्री व वर्तमान विधायक अजय सिंह राहुल व अध्यक्ष के रूप में वरिष्ठ पत्रकार श्री लज्जा शंकर हरदेनिया उपस्थित थे। विशिष्ट अतिथि के रूप में नेहरू युवा केन्द्र संगठन नई दिल्ली की उपाध्यक्ष मीनाक्षी नटराजन उपस्थित रहीं। कार्यक्रम के दौरान सर्वप्रथम अतिथियों का स्वागत पुष्पमालाओं व शब्द सुमनों से किया गया। बुंदेली उत्सव के अवसर पर प्रकाशित होने वाली पत्रिका बुंदेली बसन्त का विमोचन मुख्य अतिथि ने

किया। विमोचन सम्पादक मण्डल के सदस्य डॉ. बहादुर सिंह परमार, डॉ. कुन्जीलाल पटेल तथा डॉ. हरिसिंह घोष ने करवाया। इस अवसर पर सम्बोधित करते हुए मुख्य अतिथि अजय सिंह राहुल ने कहा कि यह उत्सव बिना किसी सरकारी मदद के जनसहयोग से आयोजित होता है। जिससे भारतीय संस्कृति के साथ बुंदेलखण्ड की लोकसंस्कृति को नयी दिशा प्राप्त हो रही है। अध्यक्ष श्री लज्जा शंकर हरदैनिया ने कहा कि मैंने बहुत कम राजनेताओं को सांस्कृतिक गतिविधियों को आयोजित करते देखा है। उनमें संरक्षक मुन्नाराजा भी शामिल हैं। कार्यक्रम की शुरुआत राई व बधाई की नृत्य प्रतियोगिता से प्रारंभ हुयी। राई प्रतियोगिता में जय माँ बघराजन राई पार्टी दौरिया पहले स्थान पर तथा आदिवासी राई पार्टी बसारी दूसरे स्थान पर रही। इसी तरह बधाई नृत्य में सपना रंगमण्डल बसारी ने प्रथम स्थान तथा लोकनृत्य कला संस्थान पन्ना ने दूसरा स्थान प्राप्त किया। दक्षिण मध्यक्षेत्र सांस्कृतिक केन्द्र नागपुर के कलामण्डल ने बरेदी नृत्य तथा शाहगढ़ के पूरण रैकवार ने ढिमरयाई की विशेष प्रस्तुतियां दीं। निर्णायक के रूप में डॉ. कैलाश बिहारी द्विवेदी टीकमगढ़, श्री सुरेन्द्र शर्मा 'शिरीष' छतरपुर, डॉ. अवध किशोर जड़िया ललपुर, उपस्थित रहे। संचालन सर्वश्री विष्णु अरजरिया, आनन्द शर्मा तथा मैथिलीशरण तिवारी ने किया। □

बुन्देली उत्सव २००७ हेतु समितियाँ

कार्यक्रम क्रियान्वयन समिति

१. श्री दिवान त्रिलोक सिंह बुन्देला
२. श्री भारत कृष्ण देव सिंह बुन्देला
३. श्री शारदा प्रसाद शुक्ला
४. श्री पर्वत सिंह बुन्देला
५. श्री लल्ली पाल
६. श्री हीरा पाल
७. श्री मन्नू पाल
८. श्री पंचम लाल विश्वकर्मा
९. श्री बलराम अहिरवार
१०.श्री सुनील वर्मा

स्वागत व्यवस्था समिति

१. श्री संतोष अग्रवाल
२. श्री केदार नाथ अग्रवाल
३. श्री राकेश अग्रवाल
४. डॉ. मुराद अली
५. डॉ. जगदीश अरजरिया
६. श्री वृन्दावन रैकवार
७. श्री सिब्बा रैकवार
८. श्री जगदीश रैकवार
९. श्री रामस्वरूप रैकवार (दद्दुवा)
१०.श्री सोनू रैकवार
११.श्री दिनेश रैकवार 'बब्बू'

भोजन व्यवस्था एवं कूपन वित० समिति

१. श्री महेश प्रसाद अग्रवाल (पंगू) प्रभारी
२. श्री अखिलेश्वर चौबे
३. श्री धर्मेन्द्र खरे
४. श्री संजय खरे

मंच सज्जा समिति

१. श्री शोभालाल गुप्ता
२. श्री अच्छेलाल यादव
३. श्री बारे लाल पाल
४. श्री मुल्ली यादव

चाय नाश्ता समिति एवं जल व्यवस्था

१. श्री सुरेश अग्रवाल 'पप्पू', प्रभारी
२. श्री सुधीर अग्रवाल
३. श्री अनिल रैकवार
४. श्री संतोष रैकवार
५. श्री झल्लन रैकवार
६. श्री रमेश रैकवार
७. श्री कल्लू रैकवार (खिलैयां)

स्टेडियम कार्यालय प्रभारी

१. श्री शारदा प्रसाद शुक्ला, प्रभारी
२. श्री नवल किशोर अग्रवाल
३. श्री जगदीश यादव, सहायक
४. श्री प्रभु यादव, सहायक

अश्वनृत्य व्यवस्था समिति

१. श्री पर्वत सिंह बुन्देला
२. श्री संजय सिंह
३. श्री मन्नू यादव
४. श्री भज्जू यादव
५. श्री मुकेश साहू
६. श्री खुमान रजक

बैठक व्यवस्था स्टेडियम में

(टेन्ट, कुर्सी, फर्श इत्यादि)

१. श्री शोभालाल गुप्ता
२. श्री सिराज खान
३. श्री कन्हैया लाल यादव
४. श्री लखन लाल यादव
५. श्री मथुरा यादव
६. श्री जस्सू सोनी
७. श्री स्वामीदीन कुशवाहा
८. श्री भागचन्द कुशवाहा
९. श्री विश्वनाथ कुशवाहा
१०.श्री भागीरथ यादव
११.श्री खन्जू कुशवाहा
१२.श्री जब्बार खान
१३.श्री राकेश अहिरवार
१४.श्री छन्नू हरिजन

अखाड़ा व्यवस्था समिति

१. श्री मातादीन पहलवान
२. श्री रामस्वरूप पटेल
३. श्री सिराज खान
४. श्री अजय बाल्मीक
५. श्री पंचा कौंदर छोटा
६. श्री महादेव कोंदर
७. श्री मुन्ना कौंदर

स्टेडियम सुरक्षा व्यवस्था समिति

१. श्री हीरालाल पाल
२. श्री रामू अहिरवार 'चौकीदार'
३. श्री मातादीन अहिरवार

४. श्री द्वारका अहिरवार
५. श्री टुड्डी कोंदर
६. श्री अमरा अहिरवार

मेला व्यवस्था एवं प्रदर्शनी समिति
१. श्री बाबूलाल खरे, प्रभारी
२. श्री कैलाश अग्रवाल
३. श्री केदार नाथ अग्रवाल
४. श्री सरजू यादव
५. श्री अनारी राजपूत
६. श्री पुन्ना अहिरवार
७. श्री छोटा अहिरवार
८. श्री दरवारी अहिरवार
९. श्री रमेश अहिरवार (हरजुआ)

आवास व्यवस्था समिति
(स्कूल के तीन कमरों में नीचे)
१. श्री लखन यादव, प्रभारी
२. श्री वृन्द्रावन राजपूत 'घस्सू'
३. श्री राजू रैकवार
४. श्री राजेश रैकवार भुम्मी
५. श्री मुकेश विश्वकर्मा
६. श्री राकेश अहिरवार 'पंचू'

आवास व्यवस्था समिति
(स्कूल के अन्य तीन कमरों में नीचे)
१. श्री युनिस खान (इद्दू खां), प्रभारी
२. श्री परमानन्द यादव
३. श्री कलन रैकवार
४. श्री सुखलाल अहिरवार
५. श्री कल्लू यादव
६. श्री जगदीश/पंचू रैकवार

आवास व्यवस्था समिति
(स्कूल के तीन कमरे ऊपर)
१. श्री रतन यादव, प्रभारी
२. श्री राजेश रैकवार, गुबन्दी
३. श्री सिब्बू रैकवार पुन्नू
४. श्री हरिश्चन्द्र कोरी
५. श्री छिद्दी अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(नया कार्यालय भवन गेट--२ के सामने)
१. श्री राजू कुशवाहा, प्रभारी
२. श्री विजय रैकवार
३. श्री भगवानदास अहिरवार

आवास व्यवस्था समिति
(आर.आई. क्वार्टर में)
१. श्री बाबू लाल यादव, प्रभारी
२. श्री कल्ला रैकवार
३. श्री रमेश अहिरवार हरजूआ

पंजीयन समिति
१. श्री महाराज सिंह प्राचार्य
२. श्री राममूर्ति नामदेव, प्रभारी
३. श्री कृपाराम पटेल, प्रभारी
४. श्री महेन्द्र शुक्ला
५. श्री महेश्वर रामभगत
६. श्री ग्यादीन अहिरवार

गेट व्यवस्था एवं झंडा बैनर समिति
१. श्री महादेव यादव, प्रभारी
२. श्री रामस्वरूप रावत
३. श्री रमेश अहिरवार
४. श्री मुल्ली अहिरवार
५. श्री आशाराम अहिरवार
६. श्री पप्पू अहिरवार
७. श्री हीरालाल अहिरवार/दुल्ला
८. श्री दीपेन्द्र अहिवार
९. श्री भगवानदास अहिरवार
१०.श्री घन्सू अहिरवार/मैयादीन

विद्युत व्यवस्था समिति
१. श्री रामचरण रैकवार
२. श्री लक्ष्मी रैकवार
३. श्री अजय रजक
४. श्री जयसिंह यादव
५. श्री रम्मू रैकवार
६. श्री परमलाल कौंदर
७. श्री बिहारी कोरी

चित्रकार एवं लेखन कार्य समिति
१. श्री प्रेमकिशोर खरे
२. श्री धीरज सिंह परमार
३. श्री राजू अहिरवार खुमना
४. श्री गज्जू अहिरवार, बिहारी
४. श्री सुनील बाल्मीक

बैलगाड़ी दौड़ व्यवस्था समिति
१. श्री राममिलन पाल, पटवारी
२. श्री मथुरा प्रसाद पटेल
३. श्री भुमानीदीन पटेल
४. श्री परसू कुशवाहा
५. श्री बन्दू यादव, गुटियां
६. श्री देशराज अहिरवार
७. श्री प्यारे लाल अहिरवार
८. श्री रजुआ अहिरवार
९. श्री पुन्ना अहिरवार

खेलकूंद व्यवस्था समिति (बालीबॉल)
१. श्री पर्वत सिंह बुंदेला, प्रभारी
२. श्री संजय सिंह,
३. श्री राममिलन पटेल
४. श्री महेन्द्र विश्वकर्मा
५. श्री अनिल पटेल
६. श्री भागवत पटेल, कर्री
७. श्री दुर्गा अहिरवार
८. श्री अशोक यादव
९. श्री दिनेश रैकवार, कुटू
१०.श्री अजय वाल्मीकि
११.श्री कमलेश कोरी
१२.श्री सुरेश हरिजन
१३.श्री फूलचन्द्र यादव
१४.श्री बली रैकवार (छिद्दू)

खेलकूंद व्यवस्था समिति (कबड्डी)
१. श्री पुष्पेन्द्र सिंह बघेल, प्रभारी
२. श्री आदित्य दुबे, प्रभारी
३. श्री खूबचन्द्र यादव
४. श्री रामसनेही यादव
५. श्री धर्मेन्द्र राजपूत
६. श्री कमलेश यादव/परमानन्द
७. श्री मुकेश रैकवार/सरीं
८. श्री रामकिशोर रैकवार/रामदास
९. श्री पंचू रैकवार, सिब्बू

मोटरसाइकिल/साइकिल स्टैण्ड व्यवस्था समिति
१. श्री ग्या प्रसाद साहू 'कल्लू'
२. श्री मनोज सोनी
३. श्री राकेश पटेल, कल्लू
४. श्री विमलेश जोशी

स्वर लिपियाँ

– डॉ. महेश चन्द्र शांडिल्य, पं. जयराम त्रिवेदी

यहां पर संगीत प्रेमियों के लिए, लोकप्रिय बुन्देली लोकगीतों की स्वरलिपि भी दी जा रही है। बुन्देलखण्ड का क्षेत्र विस्तृत है, अतः आंचलिक विशेषताओं के साथ लोकगीत के बोल, स्वर और उसकी धुन में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। लोकगीतों के मार्मिक भाव, उतार–चढ़ाव और विशिष्ट स्वर–समूह के कारण, लोकगीतों की स्वरलिपि तैयार करना, निःसंदेह जटिल और श्रमसाध्य है। यहां लोकगीतों की यथावत् स्वरलिपि प्रस्तुत करने का दावा तो नहीं, बल्कि इस दिशा में एक विनम्र प्रयास है।

चौकड़िया

स्थायी : नइयां ठीक जिन्दगानी को।
बनो पिण्ड पानी को।।

अन्तरा : चोला और दूसरो नइयां,
मानुष की सानी को।।

अन्तरा : योगी जपी–तपी सन्यासी
ना राजा रानी को।।

अन्तरा : ईसुर चाये जबै ले लेवें।
का बस है प्राणी को।।

ताल कहरवा – मात्रा ८

स्थायी –

ऩि सा ऩि ध	ऩि ऩि रे ग	प प रे गरे	सा – सा–
न इ यां ऽ	ठी ऽ क जि	ऽ द ऽ गाऽ	नी ऽ को ऽ
x	2	x	2
प– – प मे	पमे ग रे –	ग गप रे सा	ऩि सा नि ध
बनोऽ पिं ऽ	डऽ ऽ पा ऽ	नी ऽऽ को ऽ	न इ यां ऽ
x	2	x	2

अन्तरा –

सा ग मे प	– – प मे	पमे गरे ग– गा	रे सा प –
चो ला ऽ औ	ऽ र दू ऽ	सऽ रोऽ नई ऽऽ	याँ ऽ मा नु
ध मे पमे ग	रे ग गप रेसा	नि सा नि ध	
ष की ऽऽ सा	ऽ नी ऽऽ कोऽ	न इ यां ऽ	

शेष अन्तरे भी इस तरह गाये जायेंगे।

बनरा

स्थायी : लैके धनुष भवे ठाड़े री,
कोऊ छवि तो निहार लेव।

अन्तरा : अति सुकुमारी उमरिया वारी,
कोमल करन विच धारे री, कोऊ।।

अन्तरा : इक ऊंगली के सहारे उठाके,
घुमा–फिरा के ताने री, कोऊ।।

अन्तरा : कंचन कुँवर धन्य वे सजनी,
जिन ऐसे सुत जाये री, कोऊ।।

ताल–दादरा – मात्रा ०६

स्थायी –

ग रे ग	म रे ग	रे नि सा	सा – –
ले ऽ के	ध नु ष	ऽ भ ये	ऽ ऽ ऽ
x	0	x	0
ग रे ग	प म –	म ग रे	ग सा सा
ठा ऽ ड़े	ऽ री ऽ	ऽ को ऊ	ऽ छ वि
x	0	x	0
रे रे –	सा ऩि ध़	नि सा –	– – –
ऽ तो ऽ	नि हा ऽ	र लेवऽ	ऽ ऽ ऽ
x	0	x	0

अन्तरा –

सा नि ध	नि सा –	सा – –	रे ग ग
अ ति सु	कु मा ऽ	री ऽ ऽ	उ म रि
ग म ग	रे रे रे	सा सा रे	ग रे प
ऽ या ऽ	ऽ बा ऽ	ऽ री ऽ	ऽ ऽ को
प प प	ध प म	म ग रेग	सा – ग
ऽ म ल	क र न	ऽ वि चऽ	ऽ ऽ ध
रे ग प	म – –	ग रे ग	ग सा सा
ऽ रे ऽ	री ऽ ऽ	को ऊ ऽ	ऽ छ वि

शेष अन्तरे भी इस तरह गाये जायेंगे।

– आदिवर्त, जनजातीय कला संग्रहालय, खजुराहो म.प्र. □